देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Oct. 2025
Vol.-22, Issue-4

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 **ISSUE-4(1)** **(अक्टूबर 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – अक्टूबर 2025

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	कृष्ण भक्ति काव्य कौ वैशिवक स्वरूप	सन्तोष	10–12
3.	लामीखार : आदिवासी बाहुल्य गांव का सामाजिक–शैक्षिक अध्ययन	निरंजन लाल पटेल	13–22
4.	समाज कार्य में श्रीमद्भगवद्गीता के योगदान का अध्ययन	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	23–29
5.	विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता का अध्ययन करना	मेनका जाखड़, डॉ. महेश कुमार शर्मा	30-34
6.	भारतीय शिक्षा पद्धति : आदि से वर्तमान तक	डॉ. भूपेन्द्र सिंह	35–44
7.	वर्तमान संदर्भ में स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दृष्टिकोण की सार्थकता	ममता सुशील, डॉ. एकता भारद्वाज	45–51
8.	शिक्षा का एकीकृत स्वरूप समग्र शिक्षा अभियान	रूकमीनी यादव, डॉ. शम्मा चक्रवर्ती	52–54
9.	उत्तर प्रदेश में पर्यटन उद्योग एक अध्ययन	डॉ प्रमोद कुमार श्रीवास्तव, तुहिना सिंह	55–58
10.	सृजनात्मक स्वतंत्रता बनाम धर्म सत्ता	श्रुति पी. पी.	59-62
11.	संस्कृत साहित्य में काव्य के प्रयोजन	Kalpanabahen Sangada	63-68
12.	Green Schooling – A Healthy School Environment	Dr. Manoj Kumar Tyagi	69-72
13.	इक्कीसवीं सदी का साहित्य और नव विमर्श	डॉ. अफीफा फातिमा शेक	73–76
14.	कहानीकार प्रज्ञा के कहानी–संग्रह 'काठ के पुतले' में निहित भूमंडलीकरण की अवधारणा	डॉ. सुमंगला वशिष्ठ	77–79
15.	Future prospective of AI and Transformation of Modern Education System	Archana Joshi, Dhruv Pandey, Deepa Bisht	80-89
16.	संवेदनात्मक साहित्यकार : डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल'	डॉ. कर्रि सुधा	90–91
17.	किन्नर विमर्श डॉ. सिहाग की कहानियों के विशेष संदर्भ में	डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी	92–97
18.	महापुरूष हरिदेव का भाषा–शैली	डॉ. अनिरूद्ध बायन	98–103
19.	विनोद कुमार शुक्ल की कहानियों में अभिव्यक्त जादुई यथार्थवाद : 'महाविद्यालय' कहानी संग्रह के संदर्भ में	भुवनेश कुमार प्रधान	104–108
20.	हाशिये से मुख्यधारा तक : हिंदी उपन्यासों में किन्नर पात्रों का आत्मबोध और अस्मिता का संघर्ष	डॉ. प्रवीन शर्मा, अनिल कुमार	109–112
21.	Application of Radioisotopes in Agriculture, Industries And Healthcare	Bharti Bahuguna	113-120

22.	**Foodways in Transit : Culinary Practices, Identity and Social Networks among Bengali Migrants in Lucknow**	**Dr. Arvind Kumar Gupta**	**121-134**
23.	डॉ. सुशील कुमार फुल्ल के उपन्यासों में चित्रित नारी विमर्श	परमजीत सिंह, डॉ. अजयपाल सिंह	135–143
24.	जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों पर उसका प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन	**Dr. Mahesh Chand Gurjar**	**144-149**
25.	**A Comparative Study of Self-Confidence and Attitude Among Higher Secondary School Students (with reference to Mandsaur City)**	**Dr. Yogita Somani**	**150-156**
26.	रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन	डॉ. संजीत कुमार तिवारी, नीलम सोनी	157–164
27.	शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन	डॉ. मीता पारिख, श्रीमती प्रेरणा सक्सेना	165–172
28.	उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जोखिम लेने की क्षमता पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन	डॉ. संजीत कुमार तिवारी, विनीता वर्मा	173–178
29.	झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी – एक अध्ययन	डॉ. सीमा परवीन खान, मीनाक्षी वर्मा	179–183
30.	झालावाड़ जिले की ग्रामीण महिलाओं पर शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन	डॉ. इनाम इलाही, रविन्द्र कुमार रेगर	184–187
31.	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन	रिंकू कुमारी, डॉ० जयप्रकाश सिंह	188–194
32.	**USE OF ICT IN PROMOTING THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM (IKS)**	**Dr Meeta Parikh**	**195-202**
33.	पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. सूर्यप्रकाश, डॉ. पूनम रावत	208–216
34.	निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं के मानवाधिकारों का अध्ययन (झालावाड़ जिले के संदर्भ में)	डॉ. विरमा राम देवासी, धीरज कुमार शर्मा	217–221
35.	जसिंता केरकेट्टा के काव्य में आदिवासी जीवन-मूल्य	सुनीता कच्छप	222–228

संपादकीय...

साहित्य समाज का आईना होता है। यह वाक्य केवल एक कहावत नहीं, बल्कि एक जीवंत सत्य है जिसे हर संवेदनशील लेखक, कवि, शोधकर्ता और पाठक प्रतिदिन जीता है। 'बोहल शोध मंजूषा' का यह अक्टूबर 2025 अंक भी इसी विश्वास की परिणति है। यह अंक अपने भीतर विविधता, विमर्श और वैचारिकता का वह संगम समेटे हुए है जो आज के हिंदी साहित्य को समकालीन धरातल पर समझने का एक प्रामाणिक दस्तावेज बनाता है।

वर्तमान समय में जब साहित्यिक पत्रिकाएँ बाजारवाद, क्लिक संस्कृति और प्रचार–प्रसार की होड़ में अपनी मौलिकता खोती जा रही हैं, 'बोहल शोध मंजूषा' लगातार उस परंपरा को आगे बढ़ा रही है जो रचनाशीलता को सम्मान देती है, शोध को प्रामाणिकता प्रदान करती है और अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक बनाती है। इस अंक में प्रकाशित रचनाएँ केवल साहित्यिक स्वाद की पूर्ति नहीं करतीं, बल्कि पाठक के मन में सवाल जगाती हैं– समाज, समय, व्यक्ति और परिवर्तन के प्रति। अक्टूबर 2025 का यह अंक अपने साथ अनेक महत्वपूर्ण विमर्श लेकर आया है। इसमें समावेशित शोध आलेखों में समकालीन हिंदी कविता के विविध आयामों की पड़ताल की गई है। कुछ आलेख जहाँ ग्रामीण जीवन, श्रम, स्त्री अस्मिता और सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर केंद्रित हैं, वहीं कुछ ने तकनीकी युग में बदलते मानवीय संबंधों को विश्लेषित किया है। आज जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल संस्कृति ने मानव भावनाओं की सहजता पर प्रश्न खड़े किए हैं, तब साहित्य ही वह माध्यम है जो संवेदना की लौ को जलाए रखता है और यही भाव इस अंक की अधिकांश रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

इस बार के अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें समकालीन साहित्यकारों के साहित्य पर केन्द्रित कुछ शोध आलेखों को स्थान दिया गया है, जिनमें उनके लेखन में समाज, स्त्री, किसान, और पर्यावरण जैसे विषयों के यथार्थ को गहराई से विश्लेषित किया गया है। साहित्यकारों का साहित्य न केवल यथार्थ का दस्तावेज है, बल्कि वह जन–मन की पीड़ा, संघर्ष और उम्मीद का भी प्रतीक है। उनके लेखन पर किए गए शोध आज के युवा शोधार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होंगे। इसी क्रम में 'समकालीन रचनाकारों' कृ जैसे मुकेश कुमार ऋषि वर्मा, डॉ. मंजू चौहान, सहदेव समर्पित, पुष्पलता अधिवक्ता आदि की रचनाओं पर आधारित समीक्षात्मक आलेख भी इस अंक को समृद्ध बनाते हैं। इन रचनाकारों की लेखनी लोकजीवन, मानवीय रिश्तों और सामाजिक सरोकारों की गहराई में उतरती है। उनके शब्दों में वह लोकध्वनि है जो आज के कृत्रिम संसार में भी जीवंतता का अनुभव कराती है।

'विविध विमर्श' इस अंक का एक और प्रमुख आकर्षण है। महिला लेखिकाओं की कविताएँ और आलेख न केवल समाज में स्त्री की बदलती भूमिका को रेखांकित करते हैं, बल्कि आत्मस्वीकृति और आत्मगौरव के स्वर भी प्रखरता से प्रस्तुत करते हैं। स्त्री के संघर्ष, उसकी चुप्पियों और उसके स्वप्नों को यहाँ नए अर्थों में देखा गया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिंदी साहित्य का यह समय स्त्री चेतना के स्वर्णकाल का साक्षी बन रहा है, और 'बोहल शोध मंजूषा' इस चेतना को निरंतर प्रोत्साहन दे रही है।

हमारे इस अंक में प्रकाशित समीक्षाएँ और कविताएँ न केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं, बल्कि सामाजिक चेतना की दस्तक भी हैं। वे हमें सोचने पर विवश करती हैं कि क्या हम अब भी मनुष्यता के प्रति उतने ही संवेदनशील हैं जितने हमारे पूर्वज थे? क्या तकनीकी विकास के इस युग में हमने अपने भीतर के 'मनुष्य' को बचा पाया है? साहित्य का उत्तर है– "हाँ, यदि हम पढ़ना और महसूस करना नहीं छोड़ते।"

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 10-12

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्ण भक्ति काव्य कौ वैश्विक स्वरूप

सन्तोष

सहायक आचार्य, हिन्दी, अग्रवाल पी. जी. महाविद्यालय, जयपुर।

मोरपखा सिर उपर राखिहौ, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढि पीतम्बर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारन संग फिरौगी।।

मधुर पदों की यह ब्रजभाषा की एक शैली, जिसमें राधा–कृष्ण का प्रेम और ब्रजभूमि का सौन्दर्य जब ब्रजभाषा का स्पर्श पाकर प्रकृति में सोता बनकर बहता है तो विश्व का आसमान भर का विस्तार उसके असीम प्रेम और सौन्दर्य में डूबकर अपने आपको न्योछावर कर देता है। जिसमें संत कवि ईश्वर के साथ अपने आध्यात्मिक मिलन को दर्शाते है तो दूसरी ओर समर्पित व एकनिष्ठ प्रेम की पराकाष्ठा अपने आपको शब्दों में पिरोती हुई दिखाई देती है।

यहां समझने का विषय यह है कि कैसे किसी एक क्षेत्र विशेष की भाषा, जन–जन के हृदय तक होती हुई वैश्विक स्वरूप धारण कर लेती है। कैसे वह अपनी सीमाओं को लांघकर असीम सत्ता के सिर का मुकुट बन जाती है।

धन्य ब्रजभाषा तोसी दूसरी न भाषा, तैने
बानी के विधाता कू बोलिबौ सिखायौ है।।

15वीं सदी में विश्व साहित्य विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ विकसित हो रहा था। साहित्य का स्वरूप विविध और संक्रमणकालीन था। पुनर्जागरण के अग्रदूतों के कार्यों के साथ प्रिंटिंग प्रेस का आगमन तथा सॉनेट जैसे नए काव्य रूप लोकप्रिय हुए। यूरोप में मानवतावादी विचारों का प्रसार हुआ। भारत में भी कबीर, गुरुनानक जैसे भक्त कवि उभरे, जिन्होंने धार्मिक और सांस्कृतिक संश्लेषण को बढावा दिया।

यह साहित्यिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का समय था जिसने क्लासिक साहित्य और मानव अनुभव पर जोर दिया। यह साहित्य संस्कृत साहित्य से भिन्न था जिसने दुनिया के विभिन्न हिस्सों को जोड़ा और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचनाओं में बदलाव आए।

15वीं शताब्दी विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण कालखंड था इसने मध्य युग के अंत और आधुनिक युग की शुरुआत को चिन्हित किया, सांस्कृतिक आन्दोलन और तकनीकी प्रगति हुई जिन्होंने मानव इतिहास की दिशा को आकार दिया। इसी समय 15वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक भारतीय उपमहाद्वीप में भी साहित्य की उस विश्वव्यापी विचारधारा का बिजांकुर हुआ जिसने अपने व्यापक विस्तार, रहस्यमय आध्यात्मिक प्रकृति तथा प्रकृति

व मानवीय भावनाओं का ऐसा प्रारूप निर्मित किया जिसने भारत की सीमाओं को लांघकर सात समंदर पार के पश्चिमी साहित्य को झकझोर कर दिया। मध्ययुग में पनपने वाली इस विचारधारा ने अपनी गहराई, काव्यात्मकता और आध्यात्मिक व रहस्यवादी प्रकृति के कारण विश्व के साहित्यिक परिदृश्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। यह वह विचारधारा थी जो हमारे अंतर्मन को रोमांचित करने वाली थी यह वह विचारधारा थी जिसने जनमानस के होठों से अंतर्मन तथा अंतर्मन से होते हुए हृदय में एक ऐसी जगह बनाई जिसके मूल, माधुर्य, प्रेम, वात्सल्य के सामने आज तक कोई विचारधारा टिक नही पाई।

इस विश्वव्यापी विचारधारा का आधार भगवान कृष्ण की भक्ति और लीलाएं बनी, जिसे आकर देने का कार्य उस भाषा ने किया जिसके शब्द रूप मोती जनमानस के हृदय को प्रेम की चमक से आलोकित करते रहे हैं। वह थी ब्रजभाषा, जिसने संस्कृत से विकसित शौरसैनी अपभ्रंश से जन्म लिया जिसका स्पर्श पाकर कृष्ण भक्ति साहित्य जन–जन के हृदय तक पहुंचा और अमर हो गया।

15वीं से 20वीं शताब्दी तक भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रजभाषा एक प्रमुख साहित्यिक भाषा रही, विशेषकर भक्ति आन्दोलन के दौरान जब भगवान कृष्ण की भक्ति गीतों के रूप में रची गई। मध्ययुग में विकसित इस साहित्यिक भाषा का प्रभाव भारत की अन्य भाषाओं जैसे बांग्ला, राजस्थानी और पंजाबी में भी स्पष्टतः दिखाई देता है। यह वैश्विक स्वरूप तब विकसित हुआ जब यह भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति के लिए प्रमुख साहित्यिक भाषा बनी और भक्त कवियों के माध्यम से भारत के कई क्षेत्रों में फैली। भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में इसने व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त की। सूरदास, रहीम, रसखान, धनानंद, बिहारी जैसे कवियों ने रहस्यमय भक्ति और शृंगार को व्यक्त करने के लिए इसका भरपूर प्रयोग किया, जिसने इसे भारतीय साहित्य की एक समृद्ध और महत्वपूर्ण साहित्यिक परंपरा का रूप दिया। यह भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति से जुड़ी और रीतिकाल में शृंगार और अन्य लौकिक विषयों तक इसका विकास हुआ। अपनी व्यापकता के आधार पर यह भाषा भारत की सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा बन गई, जिसने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया तथा अपने साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी की किसी भी अन्य बोली की तुलना में व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त की।

ब्रजभाषा साहित्य ने भक्ति काल में कृष्ण भक्ति के गीतों के माध्यम से अपना चरमोत्कर्ष प्राप्त किया जो सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों की कृष्ण लीलाओं पर लिखे पदों में अपने प्रगाढ़ रूप में पहुंचा। विभिन्न कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में भाषा के ऐसे नए आयाम जोड़े गए, जो इसकी सार्वभौमिक अपील का कारण बने।

रहस्यवादी और आध्यात्मिक प्रकृति, दार्शनिक भाव, जहाँ कवि ईश्वर के साथ आध्यात्मिक मिलन का अनुभव करते है, विश्व भर का विस्तार, हिन्दी साहित्य परम्परा का मूल, श्रृंगारिकता, रीतिकालीन आलंकारिक और चमत्कृत प्रयोग तथा लोकप्रियता, इसकी अनूठी विशेषताएँ है, जिनसे इसे हिन्दी की एक समृद्ध साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने में केंद्रीय भूमिका निभाई तथा इसका सर्वव्यापी साहित्यिक महत्व, दूरस्थ भाषाओं के साहित्य और कवियों पर इसका प्रभाव इसके वैश्विक स्वरूप को परिलक्षित करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. सुजान रसखान – रसखान।

2. कवितावली – तुलसीदास।
3. विनयपत्रिका – तुलसीदास।
4. रसिकप्रिया – केशवदास।
5. सूरसागर – सूरदास।
6. ब्रज का लोक साहित्य – डॉ. सत्येन्द्र।
7. रसकलश – जगन्नाथ दास रत्नाकर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 13-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लामीखार : आदिवासी बाहुल्य गांव का सामाजिक–शैक्षिक अध्ययन

निरंजन लाल पटेल

शोधकर्ता, शासकीय प्राथमिक शाला लामीखार, संकुल–बोजिया
विकास खण्ड–धरमजयगढ़, जिला–रायगढ़ (छत्तीसगढ़)

प्रस्तावना :

भारत एक कृषि प्रधान और ग्राम प्रधान देश है, जिसकी आत्मा गांवों में बसती है। गांव केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा और सामाजिक जीवन का जीवंत स्वरूप हैं। भारतीय ग्रामीण संरचना में आदिवासी समाज की भूमिका विशेष है। यह समुदाय प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर जीवन यापन करता है और उनकी संस्कृति, रीति–रिवाज एवं आस्थाएँ प्राकृतिक संसाधनों से गहराई से जुड़ी होती हैं। छत्तीसगढ़ जैसे मध्य भारतीय राज्य में आदिवासी जीवन की झलक सबसे स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग एक–तिहाई हिस्सा आदिवासी है। यहां के आदिवासी गांवों में हमें पारंपरिक संस्कृति, लोकगीत–लोकनृत्य, सामाजिक सहयोग, प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित आजीविका और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने की अनूठी झलक देखने को मिलती है। इन्हीं गांवों में से एक है लामीखार, जो आदिवासी बाहुल्य होने के साथ–साथ अपनी भौगोलिक और सामाजिक विशेषताओं के कारण अध्ययन का केंद्र बनता है। यह गांव चारों तरफ से घने जंगलों से घिरा हुआ है। यहां का पर्यावरण जैव विविधता से समृद्ध है, किंतु यह क्षेत्र हाथी प्रभावित भी है। हाथियों की लगातार आवाजाही और उनसे उत्पन्न संघर्ष गांववासियों के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी है। फसलों का नुकसान, घरों को क्षति और कभी–कभी जनहानि की घटनाएँ भी घटित होती हैं। इसके साथ ही, लामीखार गांव शिक्षा और नवाचार की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। यहां की प्राथमिक शाला ने प्ब्ज आधारित शिक्षण, लाउडस्पीकर गुरुजी, ऑनलाइन कक्षाएँ, प्रिंट रिच वातावरण, गणित कॉर्नर, खिलौना कॉर्नर जैसे नवाचारों के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाई है। इस प्रकार यह गांव केवल समस्याओं का प्रतीक नहीं, बल्कि संभावनाओं का भी द्योतक है।

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है :

लामीखार गांव की सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना का अध्ययन करना। जंगल और हाथियों के प्रभाव से उत्पन्न चुनौतियों का विश्लेषण करना। शिक्षा और शैक्षणिक नवाचारों के माध्यम से हो रहे सामाजिक बदलावों को रेखांकित करना। सतत विकास की दिशा में गांव की संभावनाओं और चुनौतियों का आकलन करना।

भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेश :

लामीखार गांव छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण अंचल में स्थित है। यह गांव चारों ओर से घने जंगलों से घिरा हुआ है, जो इसे प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट बनाता है। भौगोलिक दृष्टि से यह इलाका वनों, समतल भूमि और छोटी–छोटी नदियों–नालों से युक्त है। यहां की मिट्टी प्रायः लाल और बलुआ प्रकार की है, जो कृषि के लिए उपयुक्त है।

स्थान एवं सीमाएँ :

लामीखार गांव जिले के उस हिस्से में स्थित है, जहां आदिवासी बाहुल्य जनसंख्या निवास करती है। गांव तक पहुँचने के लिए पक्की सड़कों और जंगलों से होकर गुजरना पड़ता है। बरसात के मौसम में यह मार्ग और भी कठिन हो जाता है। गांव की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यह प्राकृतिक रूप से एक छोटे द्वीप की भांति प्रतीत होता है चारों तरफ जंगल और बीच में बसा हुआ बस्ती क्षेत्र।

जलवायु :

लामीखार का मौसम प्रायः उष्णकटिबंधीय है। ग्रीष्म ऋतु में तापमान 40 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है, जबकि शीत ऋतु में पारा 25 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है। वर्षा ऋतु (जून से सितंबर) में यहां औसतन 1100 से 1500 मिमी वर्षा होती है। जंगल और पहाड़ी इलाके के कारण वातावरण अपेक्षाकृत ठंडा और शुद्ध बना रहता है।

प्राकृतिक संसाधन :

गांव चारों ओर से वनों से घिरा है, जिनमें, साल, बीजा, महुआ, तेंदू, बांस आदि वृक्ष प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

महुआ : गांववासियों के जीवन का अभिन्न अंग है। इसका फूल भोजन व शराब बनाने में, बीज तेल निकालने में और लकड़ी ईंधन में काम आती है।

तेंदूपत्ता : ग्रामीणों की आय का एक प्रमुख स्रोत है, जिसका उपयोग बीड़ी बनाने में होता है।

औषधीय पौधे : कई प्रकार की जड़ी–बूटियाँ यहां के जंगलों में उपलब्ध हैं, जिनका प्रयोग पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता है।

जीव–जंतु एवं जैव विविधता – यह क्षेत्र वन्य जीवों के लिए सुरक्षित आवास प्रदान करता है। हाथी, भालू, जंगली सूअर, सियार, बंदर, हिरण, खरगोश आदि यहां सामान्यतः देखे जाते हैं। पक्षियों में तोता, कौआ, कोयल, कठफोड़वा, उल्लू आदि बड़ी संख्या में पाए जाते हैं।

हाथियों की उपस्थिति यहां की सबसे बड़ी प्राकृतिक चुनौती है। जंगलों से निकलकर हाथी फसलों और गांवों में आ धमकते हैं, जिससे "मानव–हाथी संघर्ष" की स्थिति उत्पन्न होती है।

हाथी प्रभावित क्षेत्र :

लामीखार गांव 'हाथी प्रभावित क्षेत्र' के अंतर्गत आता है। हाथियों के दल अक्सर धान की फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। कई बार वे घरों को भी क्षति पहुँचाते हैं। ग्रामीण रात्रि में मशाल, ढोल–नगाड़े और पटाखों के सहारे हाथियों को भगाने का प्रयास करते हैं। परंतु यह संघर्ष दीर्घकालीन समस्या के रूप में बना हुआ है।

प्राकृतिक परिवेश का प्रभाव :

गांव का प्राकृतिक परिवेश यहां के निवासियों की जीवनशैली, संस्कृति और अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

- जंगल से प्राप्त लकड़ी, पत्ते और फल ग्रामीण जीवन की आधारशिला हैं।
- खेतिहर भूमि सीमित है, इसलिए लोग जंगल पर अधिक निर्भर रहते हैं।
- हाथियों के कारण कृषि उत्पादन में असुरक्षा बनी रहती है।

इस प्रकार लामीखार का भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेश इसे विशिष्ट बनाता है। यहां का पर्यावरण ग्रामीण जीवन को अवसर भी प्रदान करता है और चुनौतियाँ भी।

जनसंख्या एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना –

लामीखार गांव की विशेषता इसकी आदिवासी बाहुल्य जनसंख्या है। यहां कंवर, भुईहर, आदिवासी समुदायों का निवास है। कुल जनसंख्या सीमित होने के बावजूद सामाजिक जीवन अत्यंत सक्रिय और पारंपरिक संस्कृति से परिपूर्ण है।

जनसंख्या संरचना :

गांव में अधिकांश परिवार छोटे–छोटे झोपड़ीनुमा या मिट्टी–पत्थर से बने घरों में रहते हैं। जनसंख्या का बड़ा हिस्सा कंवर समुदाय से संबंधित है। अधिकांश लोग गरीबी रेखा के आसपास जीवन यापन करते हैं। परिवार प्रायः संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं, जहाँ दादा–दादी, माता–पिता और बच्चे एक साथ रहते हैं।

सामाजिक संगठन –

लामीखार में सामाजिक संगठन परंपरागत ग्रामसभा पर आधारित है। गांव के विवादों और निर्णयों का समाधान सामुदायिक रूप से किया जाता है। सामुदायिक सहयोग : शादी–ब्याह, खेती–किसानी, घर निर्माण, और त्योहारों में पूरा गांव सहयोग करता है। बुजुर्गों का सम्मान : गांव में बुजुर्गों को सामाजिक मार्गदर्शक और परामर्शदाता के रूप में देखा जाता है।

सांस्कृतिक जीवन –

यहां का सांस्कृतिक जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। पर्व–त्योहार : ग्राम देवता पूजा हर साल फसल बोने और काटने से पहले ग्राम देवता की पूजा की जाती है। गौरा–गौरी उत्सव : सामाजिक और आर्थिक आदान–प्रदान का प्रमुख अवसर है।

नवा खाई : नई फसल खाने का पर्व, जो सामूहिक भोज और नृत्य के साथ मनाया जाता है।

आस्था और विश्वास –

आदिवासी समाज प्रकृति को देवता मानकर पूजता है। पेड़–पौधे, पहाड़, नदी–नाले और जंगल इनके धार्मिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। हाथियों और अन्य जंगली जानवरों के प्रति भी इनमें एक तरह का श्रद्धाभाव और भय मिश्रित दृष्टिकोण रहता है।

लैंगिक भूमिकाएँ –

गांव में महिलाएँ और पुरुष दोनों कृषि कार्य, वनोपज संग्रह और घरेलू जिम्मेदारियों में समान रूप से योगदान करते हैं। महिलाएँ महुआ, तेंदूपत्ता, लकड़ी और जलावन लाने में अग्रणी भूमिका निभाती हैं। वे

लोकगीत–नृत्य, त्योहारों और सामाजिक कार्यों की आयोजक भी होती हैं।

सामाजिक परिवर्तन –

हाल के वर्षों में शिक्षा और सरकारी योजनाओं के कारण गांव की सामाजिक संरचना में परिवर्तन देखा जा रहा है। बच्चे अब प्राथमिक शाला और आगे की पढ़ाई के लिए पास के कस्बों में जाने लगे हैं। मोबाइल फोन और व्हाट्सएप जैसे साधनों ने संचार को आसान बनाया है। परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने की प्रक्रिया निरंतर जारी है।

इस प्रकार लामीखार की जनसंख्या और सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना पारंपरिकता और परिवर्तन दोनों को समेटे हुए है। यह गांव एक ओर प्राचीन आदिवासी संस्कृति का जीवंत स्वरूप है तो दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा और संचार माध्यमों के प्रभाव से बदलता हुआ समाज भी है।

आर्थिक जीवन –

लामीखार गांव का आर्थिक जीवन मुख्यतः कृषि और वनोपज पर आधारित है। यहां की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक परिवेश सीधे तौर पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। सीमित संसाधनों, हाथियों के हमलों और जंगल पर निर्भरता के कारण यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ माना जाता है।

मुख्य फसलें : धान, कोदो, कुटकी, मक्का और अरहर यहां की प्रमुख फसलें हैं। धान की खेती वर्षा पर आधारित है और ग्रामीणों की आजीविका का मुख्य साधन है।

खेती का तरीका : यहां अधिकतर लोग पारंपरिक खेती पर निर्भर हैं। आधुनिक कृषि उपकरणों और उन्नत बीजों का प्रयोग सीमित है।

सिंचाई : गांव में सिंचाई की सुविधा बहुत कम है। नालों और वर्षा के जल पर ही अधिकतर खेत निर्भर रहते हैं।

समस्याएँ :

हाथियों के झुंड धान की खड़ी फसल को रौंद देते हैं। जंगली सूअर और बंदर भी फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। बिचौलियों द्वारा फसलों के कम दाम मिलने की समस्या भी बनी रहती है।

वनोपज पर निर्भरता – जंगल लामीखार गांव की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है।

महुआ : ग्रामीण महुआ के फूल इकट्ठा करके स्थानीय शराब, मिठाई और खाद्य तेल बनाते हैं। यह आय का एक प्रमुख स्रोत है।

तेंदूपत्ता : बीड़ी बनाने के लिए तेंदूपत्ता संग्रहण गांववासियों की मौसमी आय है।

बांस और लकड़ी : घर बनाने, बर्तन व उपकरण बनाने और बाजार में बेचने हेतु प्रयोग होते हैं।

औषधीय पौधे : कई परिवार जड़ी–बूटियों को एकत्र कर पारंपरिक चिकित्सा और बाजार में बिक्री के लिए उपयोग करते हैं।

पशुपालन – ग्रामीण सीमित संख्या में गाय, भैंस, बकरी और मुर्गी पालते हैं। हाथियों के कारण पशुपालन भी असुरक्षित है, क्योंकि कई बार जानवर डरकर भाग जाते हैं या चरागाहों में कमी आ जाती है।

मजदूरी और अन्य कार्य – कृषि और वनोपज के अतिरिक्त ग्रामीण पास के कस्बों और शहरों में जाकर दिहाड़ी मजदूरी भी करते हैं।

मनरेगा जैसी सरकारी योजनाएँ अस्थायी रोजगार का साधन प्रदान करती हैं।

हाथियों से आर्थिक क्षति – लामीखार गांव की अर्थव्यवस्था पर सबसे बड़ा संकट हाथियों से होने वाला नुकसान है। धान की फसल हाथियों की पहली पसंद होती है। एक रात में पूरा खेत बर्बाद हो सकता है। हाथी कभी–कभी अनाज के भंडार और घरों को भी नष्ट कर देते हैं। इससे ग्रामीणों में आर्थिक असुरक्षा और भय दोनों उत्पन्न होते हैं। सरकार द्वारा मुआवजा राशि दी जाती है, किंतु वह अक्सर अपर्याप्त और देर से मिलती है।

आर्थिक चुनौतियाँ – कृषि में आधुनिक तकनीक का अभाव, बाजार तक पहुँच की कमी, प्राकृतिक आपदाएँ और हाथियों का संकट, वनोपज पर अत्यधिक निर्भरता, शिक्षा और कौशल विकास की सीमित संभावनाएँ

संभावनाएँ – यदि कृषि को सिंचाई और आधुनिक तकनीक से जोड़ा जाए तो उत्पादन बढ़ सकता है।

वनोपज आधारित लघु उद्योग (महुआ प्रसंस्करण, बांस उत्पाद, जड़ी–बूटी आधारित उद्योग) से स्थानीय रोजगार बढ़ाया जा सकता है।

शिक्षा और कौशल विकास के माध्यम से युवाओं को वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

इस प्रकार लामीखार गांव का आर्थिक जीवन प्रकृति और जंगल से गहराई से जुड़ा हुआ है। कृषि और वनोपज यहां की अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार हैं, किंतु हाथियों से होने वाला नुकसान और संसाधनों की कमी ग्रामीण जीवन को असुरक्षित और चुनौतीपूर्ण बनाते हैं।

शिक्षा की स्थिति और नवाचार –

लामीखार गांव की सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में यह गांव उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। गांव की प्राथमिक शाला लामीखार ने शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने और बच्चों में सीखने की रुचि जागृत करने हेतु कई नवाचार अपनाए हैं।

शिक्षा की वर्तमान स्थिति –

गांव में प्राथमिक शाला संचालित है, जिसमें कक्षा 1 से 5 तक के विद्यार्थी पढ़ते हैं। आसपास के गांवों के बच्चे भी यहां पढ़ने आते हैं। शाला भवन पक्का है, लेकिन सीमित संसाधनों के बीच भी शिक्षकों ने इसे "शिक्षा का केंद्र" बना दिया है।

नामांकन और उपस्थिति में वृद्धि हुई है। विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा के प्रति समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है।

शैक्षिक चुनौतियाँ – इंटरनेट और डिजिटल साधनों की सीमित उपलब्धता।

शैक्षिक नवाचार – प्राथमिक शाला लामीखार ने शिक्षा को रोचक और सार्थक बनाने के लिए अनेक अनूठे प्रयोग किए हैं :

लाउडस्पीकर गुरूजी – गांव में लाउडस्पीकर के माध्यम से बच्चों को सुबह–शाम पाठ सुनाए जाते हैं। इससे वे घर पर भी पाठ दोहराते हैं और अनुपस्थित बच्चे भी सीखने की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं।

ऑनलाइन कक्षाएँ – कोरोना काल के दौरान शिक्षकों ने मोबाइल फोन और व्हाट्सएप ग्रुप का उपयोग करके ऑनलाइन पढ़ाई कराई। अब भी जरूरत पड़ने पर यह व्यवस्था जारी रहती है।

प्रिंट रिच वातावरण – कक्षा–कक्ष की दीवारों पर चित्र, चार्ट, शब्द–कार्ड, अंक, कहावतें और स्थानीय भाषाओं के शब्द लिखे गए हैं। इससे बच्चों को देख–देखकर सीखने का अवसर मिलता है।

गणित एवं खिलौना कॉर्नर – बच्चों में गणितीय समझ विकसित करने के लिए गणित कॉर्नर बनाया गया है, जहां गिनती, जोड़–घटाव और आकृतियों से जुड़े खेल रखे गए हैं। खिलौना कॉर्नर में शैक्षिक खिलौनों और खेलों के माध्यम से बच्चों को पढ़ाई के साथ–साथ खेल–खेल में सीखने का अवसर मिलता है।

स्वास्थ्य एवं जागरूकता गतिविधियाँ – शाला द्वारा स्वास्थ्य रैली, स्वच्छता अभियान और पौधारोपण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। बच्चों को पर्यावरण संरक्षण और स्वास्थ्य आदतों के प्रति संवेदनशील बनाया जाता है।

प्रतियोगी परीक्षाओं में भागीदारी – विद्यालय के विद्यार्थियों ने जिला और राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं में भाग लेकर उल्लेखनीय सफलता पाई है। इससे बच्चों और अभिभावकों में शिक्षा के प्रति विश्वास बढ़ा है।

शिक्षक की भूमिका – यहां के शिक्षक (विशेषकर श्री निरंजन लाल पटेल) ने अपनी रचनात्मकता और समर्पण से शिक्षा को गांव के बच्चों तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया है। बच्चों को केवल किताबों तक सीमित न रखकर, उन्हें जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाती है। यही कारण है कि लामीखार की शाला आसपास के गांवों के लिए आदर्श विद्यालय बन गई है।

शिक्षा से सामाजिक बदलाव – शिक्षा के कारण गांव में बाल विवाह की प्रवृत्ति कम हो रही है। लड़कियों के स्कूल आने से महिला सशक्तिकरण को बल मिला है। अभिभावकों में भी शिक्षा की उपयोगिता को लेकर जागरूकता बढ़ी है। गांव का वातावरण धीरे–धीरे "अनपढ़ता" से "साक्षरता" की ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार लामीखार गांव में शिक्षा केवल औपचारिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि नवाचार और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है। सीमित संसाधनों और जंगल–जंगल से घिरे होने के बावजूद यहां की प्राथमिक शाला ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि शिक्षक संकल्पित हों तो शिक्षा हर बाधा को पार कर सकती है।

मानव–हाथी संघर्ष – लामीखार गांव की सबसे बड़ी प्राकृतिक चुनौती है – हाथियों का लगातार गांव में प्रवेश और उससे उत्पन्न संघर्ष। यह समस्या केवल आर्थिक नुकसान तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी गहरा असर डालती है।

संघर्ष का कारण –

जंगल का सिमटना : वनों की अंधाधुंध कटाई और विकास कार्यों (सड़क, खदानें, औद्योगिक परियोजनाएँ) के कारण हाथियों का पारंपरिक रास्ता बाधित हो गया है।

खाद्य संकट : जंगलों में पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण हाथी गांवों और खेतों की ओर आकर्षित होते हैं।

धान की फसल : हाथियों को धान बहुत प्रिय है, और लामीखार धान उत्पादक क्षेत्र है। इसलिए हाथी फसल के समय यहां अवश्य आते हैं।

फसलों को क्षति : एक हाथी का झुंड एक रात में कई एकड़ धान की फसल रौंद देता है।

आवासीय क्षति : हाथी कभी–कभी मिट्टी के घरों को तोड़ देते हैं। अनाज और खाद्यान्न का भंडार नष्ट कर देते हैं।

मानव जीवन पर खतरा : कई बार हाथियों के हमले से लोगों की मृत्यु हो जाती है। लोग डर के कारण रात को जंगल किनारे वाले घरों में सोने से कतराते हैं।

पशुधन पर प्रभाव : हाथियों के आने से मवेशी डरकर भाग जाते हैं। चरागाह क्षेत्र भी असुरक्षित हो जाता

है।

ग्रामीणों के प्रयास – ग्रामीण हाथियों को भगाने के लिए मशाल, ढोल–नगाड़े, पटाखे और टॉर्च का प्रयोग करते हैं। सामूहिक रूप से रातभर खेतों की रखवाली करते हैं। कुछ परिवार गांव से बाहर खेतों में अस्थायी मचान बनाकर रात बिताते हैं।

सरकार और वन विभाग की पहल – हाथियों की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए वन विभाग की टीमें तैनात की जाती हैं। पीड़ित किसानों को मुआवजा राशि दी जाती है, हालांकि यह अक्सर अपर्याप्त और देर से मिलती है। कुछ क्षेत्रों में "सोलर फेंसिंग" और "गड्ढा खाई" जैसी योजनाएँ लागू की गई हैं, किंतु लामीखार में इनका पूर्ण क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव – लोग हर समय हाथियों के भय में जीते हैं। बच्चे और महिलाएँ रात को घर से बाहर निकलने से डरते हैं। त्योहार और सामाजिक कार्यक्रम भी हाथियों के कारण बाधित हो जाते हैं।

संघर्ष कम करने के उपाय –

जंगल संरक्षण : हाथियों के प्राकृतिक आवास को बचाना आवश्यक है।

फसल विविधिकरण : धान जैसी हाथियों की प्रिय फसल की बजाय वैकल्पिक फसलें (अरहर, सरसों, सब्जियाँ) उगाना।

जागरूकता और सामुदायिक सहभागिता : गांव स्तर पर समितियाँ बनाकर संयुक्त निगरानी।

त्वरित मुआवजा प्रणाली : पीड़ित किसानों को तुरंत सहायता मिले, ताकि उनमें विश्वास बना रहे।

निष्कर्ष :

मानव–हाथी संघर्ष लामीखार गांव की सबसे बड़ी चुनौती है। यह केवल प्राकृतिक असंतुलन का परिणाम नहीं, बल्कि विकास और पर्यावरण के बीच असंतुलन का भी प्रतीक है। यदि जंगल और वन्यजीवों की रक्षा करते हुए गांव को सुरक्षित बनाया जाए, तो इस संघर्ष को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

स्वास्थ्य, संचार और बुनियादी ढाँचा – लामीखार गांव का विकास केवल शिक्षा और कृषि तक सीमित नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य सुविधाओं, संचार साधनों और बुनियादी ढाँचे की उपलब्धता भी ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से लामीखार कई चुनौतियों का सामना कर रहा है।

स्वास्थ्य व्यवस्था – गांव में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (PHC) उपलब्ध नहीं है। सामान्य रोगों के लिए ग्रामीणों को 4–5 किमी दूर स्थित उपस्वास्थ्य केंद्र सिंघीझाप या छाल अस्पताल जाना पड़ता है।

पारंपरिक चिकित्सा : कई ग्रामीण आज भी जड़ी–बूटियों और परंपरागत वैद्य (बैगा) पर निर्भर रहते हैं।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ : मलेरिया, डेंगू और डायरिया जैसी मौसमी बीमारियाँ। कुपोषण, विशेषकर बच्चों और महिलाओं में। स्वच्छ पेयजल और शौचालयों की कमी।

सरकारी पहल : मितानिन कार्यकर्ता और आंगनबाड़ी सेवाएँ मौजूद हैं, लेकिन संसाधनों और दवाइयों की कमी रहती है।

संचार व्यवस्था –

पहले लामीखार संचार से लगभग कटे हुए क्षेत्र की तरह था। अब मोबाइल नेटवर्क धीरे–धीरे उपलब्ध

हो रहा है, हालांकि सिग्नल की समस्या अक्सर रहती है। व्हाट्सएप और मोबाइल इंटरनेट शिक्षा व जानकारी के प्रसार में उपयोगी साबित हुए हैं। टेलीविजन और रेडियो सूचना के पारंपरिक साधन हैं।

परिवहन और सड़कें – साइकिल, मोटरसाइकिल और टेक्टर अभी भी प्रमुख परिवहन साधन हैं।

बिजली और ऊर्जा – गांव में बिजली कनेक्शन उपलब्ध है, लेकिन आपूर्ति नियमित नहीं रहती। कई बार हाथियों की गतिविधियों के कारण बिजली के खंभे और तार क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कुछ परिवार घरेलू सौर लैंप का प्रयोग करते हैं।

जल व्यवस्था – पेयजल के लिए ग्रामीण मुख्यतः हैंडपंप और कुएँ पर निर्भर हैं। गर्मियों में कई हैंडपंप सूख जाते हैं। स्वच्छ पेयजल की कमी से स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ जाती हैं।

बुनियादी ढाँचा और विकास योजनाएँ :

आवास योजना : प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत कुछ परिवारों को पक्के घर मिले हैं।

मनरेगा : रोजगार गारंटी योजना से ग्रामीणों को अस्थायी काम और मजदूरी मिलती है।

विद्यालय भवन : प्राथमिक शाला पक्के भवन में संचालित है, लेकिन उच्चतर शिक्षा हेतु बच्चों को बाहर जाना पड़ता है।

निष्कर्ष :

स्वास्थ्य, संचार और बुनियादी ढाँचे की स्थिति लामीखार में अभी भी सीमित और चुनौतीपूर्ण है। हालांकि सरकारी योजनाओं और शिक्षा के प्रभाव से इसमें धीरे–धीरे सुधार हो रहा है। यदि स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण, सड़क और संचार की बेहतर सुविधा तथा स्वच्छ जल आपूर्ति सुनिश्चित की जाए, तो गांववासियों के जीवन स्तर में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

विकास की चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

लामीखार गांव की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक संसाधन और सामाजिक संरचना इसे एक ओर विशेष बनाते हैं, तो दूसरी ओर विकास की राह में कई बाधाएँ भी उत्पन्न करते हैं। गांव का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि चुनौतियों का समाधान किस प्रकार किया जाता है और संभावनाओं को किस हद तक व्यवहार में लाया जाता है।

विकास की चुनौतियाँ :

मानव–हाथी संघर्ष कृषि, आवास और जीवन पर हाथियों के हमलों ने गांव की प्रगति को बाधित किया है। लगातार भय के वातावरण में ग्रामीण स्थायी योजनाएँ बनाने से हिचकते हैं।

भौगोलिक दुर्गमता :

चारों तरफ जंगल से घिरे होने के कारण गांव तक पहुँचना कठिन है। बरसात में सड़कें कट जाती हैं और स्वास्थ्य सेवाएँ बाधित हो जाती हैं।

शैक्षिक अवरोध – प्राथमिक स्तर पर नवाचारों के बावजूद उच्च शिक्षा की सुविधाएँ गांव में नहीं हैं। बच्चे आगे की पढ़ाई के लिए कस्बों या शहरों पर निर्भर हैं।

स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव – प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र न होने से सामान्य रोग भी गंभीर रूप धारण कर लेते हैं। मलेरिया और कुपोषण जैसी समस्याएँ लगातार बनी रहती हैं।

आर्थिक असुरक्षा – कृषि पर निर्भरता और हाथियों के हमले से फसलों की हानि। वनोपज पर अधिक निर्भरता और उसका अस्थिर मूल्य। वैकल्पिक रोजगार के साधनों का अभाव।

बुनियादी ढाँचे की कमी – अस्थिर बिजली आपूर्ति, पेयजल की समस्या, संचार की दिक्कतें। परिवहन साधनों की कमी और बाजार तक सीमित पहुँच।

विकास की संभावनाएँ :

शिक्षा और नवाचार – प्राथमिक शाला लामीखार ने यह सिद्ध कर दिया है कि शिक्षा परिवर्तन का सबसे बड़ा साधन है। ICT आधारित शिक्षा, प्रतियोगिताओं में भागीदारी और नवाचार अन्य गांवों के लिए भी आदर्श बन सकते हैं।

कृषि और वनोपज आधारित उद्योग – महुआ, तेंदूपत्ता, बांस और जड़ी–बूटियों पर आधारित लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं। फसल विविधिकरण और आधुनिक कृषि तकनीक अपनाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

पर्यावरण संरक्षण और इको–टूरिज्म – जंगल और जैव विविधता गांव की धरोहर हैं। यदि मानव–हाथी संघर्ष नियंत्रित हो जाए तो यहां इको–टूरिज्म की संभावनाएँ विकसित हो सकती हैं।

सामुदायिक सहभागिता – आदिवासी समाज सामूहिकता में विश्वास करता है। यदि इस भावना को योजनाओं से जोड़ा जाए तो विकास गति पकड़ सकता है। महिला स्व–सहायता समूह (SHG) आर्थिक आत्मनिर्भरता का नया मार्ग बन सकते हैं।

सरकारी योजनाएँ और छळ्ट सहयोग – प्रधानमंत्री आवास योजना, मनरेगा, वन धन योजना, शिक्षा मिशन जैसी योजनाओं से गांव को लाभ हो सकता है। यदि NGO शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण में सहयोग दें, तो गांव का सर्वांगीण विकास संभव है।

लामीखार गांव में विकास की राह कठिन जरूर है, लेकिन असंभव नहीं। चुनौतियों का स्वरूप बड़ा है, परंतु संभावनाएँ भी उतनी ही व्यापक हैं।

शिक्षा को आधार बनाकर, कृषि और वनोपज को रोजगार से जोड़कर, स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे को सुदृढ़ बनाकर तथा मानवदृहाथी संघर्ष को नियंत्रित कर लामीखार गांव को एक सतत और आत्मनिर्भर ग्राम मॉडल में बदला जा सकता है।

निष्कर्ष :

लामीखार गांव आदिवासी संस्कृति, प्राकृतिक संसाधन और सामाजिक सामूहिकता से समृद्ध है। यह गांव चारों ओर से जंगलों से घिरा हुआ है और हाथियों की गतिविधियों से प्रभावित होने के कारण विशेष पहचान रखता है। गांव का सामाजिक जीवन सामूहिकता, पारंपरिक त्योहारों और परंपराओं से भरा हुआ है। आर्थिक जीवन मुख्यतः कृषि और वनोपज पर आधारित है, लेकिन हाथियों के हमले और बाजार की सीमित पहुँच इसे असुरक्षित बनाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में गांव ने उल्लेखनीय प्रगति की है। प्राथमिक शाला लामीखार ने नवाचारों और ICT के प्रयोग से पूरे क्षेत्र में प्रेरणा का केंद्र बनने का कार्य किया है। स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे की स्थिति अभी भी पिछड़ी हुई है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सड़क, संचार और जल–ऊर्जा आपूर्ति जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का सुदृढ़ होना जरूरी है। मानव–हाथी संघर्ष गांव की सबसे बड़ी चुनौती है, जिसने आर्थिक और सामाजिक

जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। लामीखार की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि विकास केवल बुनियादी योजनाओं से नहीं, बल्कि शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक सहभागिता से ही संभव है।

सुझाव –

मानव–हाथी संघर्ष कम करने हेतु हाथियों के प्राकृतिक गलियारों को संरक्षित किया जाए। गांव में सोलर फेंसिंग, मधुमक्खी आधारित "बी–फेंसिंग" और अलार्म सिस्टम का प्रयोग हो। प्रभावित किसानों को त्वरित और पर्याप्त मुआवजा मिले।

स्वास्थ्य सेवाएँ – गांव में उपस्वास्थ्य केंद्र की स्थापना हो। मलेरिया, डेंगू और कुपोषण जैसी समस्याओं के लिए विशेष अभियान चलाए जाएँ। स्वच्छ पेयजल और शौचालय की सुविधा सुनिश्चित की जाए।

आर्थिक विकास – कृषि में विविधता लाई जाए, केवल धान पर निर्भरता कम की जाए। वनोपज आधारित लघु उद्योग और महिला स्व–सहायता समूहों को बढ़ावा दिया जाए। मनरेगा और वन धन योजना का प्रभावी क्रियान्वयन हो।

बुनियादी ढाँचा और संचार – पक्की सड़कें और पुल बनाए जाएँ ताकि बरसात में संपर्क न टूटे। मोबाइल टावर और इंटरनेट कनेक्टिविटी बेहतर हो। बिजली आपूर्ति को स्थिर और सुरक्षित बनाया जाए।

पर्यावरण और संस्कृति संरक्षण – जंगल और जैव विविधता की रक्षा सामुदायिक सहयोग से हो। आदिवासी संस्कृति और परंपराओं को शिक्षा और पर्यटन से जोड़ा जाए।

लामीखार गांव एक संघर्ष और संभावनाओं का संगम है।

जहाँ एक ओर प्राकृतिक चुनौतियाँ और सीमाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, नवाचार और सामुदायिक सहयोग से उज्जवल भविष्य की राह भी है। यदि सरकार, स्थानीय समुदाय और सामाजिक संगठनों का समन्वय बने, तो लामीखार आने वाले वर्षों में एक आदर्श सतत विकास मॉडल के रूप में सामने आ सकता है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 23-29

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समाज कार्य में श्रीमद्भगवद्गीता के योगदान का अध्ययन

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग।
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

प्रस्तावना :

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता का एक ऐसा ग्रंथ है, जिसने न केवल धार्मिक जीवन को दिशा दी है, बल्कि समाज और मानवता के लिए एक आदर्श जीवन पद्धति प्रस्तुत की है। गीता में वर्णित उपदेश केवल युद्धभूमि तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में व्यवहारिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। समाज कार्य (Social Work) एक ऐसा पेशेवर क्षेत्र है जिसका उद्देश्य सामाजिक न्याय, समानता, मानव कल्याण और वंचित वर्गों की सहायता सुनिश्चित करना है। समाज कार्यकर्ता को संवेदनशील, निःस्वार्थ, निष्पक्ष और कर्तव्यनिष्ठ होकर समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए कार्य करना होता है। इन सभी गुणों की प्रेरणा गीता के सिद्धांतों विशेषकर निष्काम कर्मयोग, समान दृष्टिकोण, आत्मसंयम और लोकसंग्रह में निहित है।

आधुनिक समाज में जहाँ सामाजिक समस्याएँ जटिल होती जा रही हैं, वहाँ समाज कार्यकर्ताओं के लिए मानसिक दृढ़ता, नैतिकता और सेवा भावना अत्यंत आवश्यक है। गीता इन गुणों को विकसित करने में एक प्रभावशाली वैचारिक आधार प्रदान करती है। इस प्रकार गीता के सिद्धांत समाज कार्य की विचारधारा और व्यवहार दोनों को समृद्ध करने की क्षमता रखते हैं। इस अध्ययन के माध्यम से गीता के मूल सिद्धांतों और समाज कार्य के उद्देश्यों के बीच संबंध को समझने तथा सामाजिक कार्य में इसके योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा का एक ऐसा दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ग्रंथ है, जिसने न केवल भारतीय समाज को बल्कि समूचे विश्व को जीवन दर्शन का अद्वितीय संदेश दिया है। यह ग्रंथ महाभारत के भीष्मपर्व का एक हिस्सा है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य युद्धभूमि पर हुआ संवाद संकलित है। यह संवाद केवल एक धार्मिक कथा नहीं है, बल्कि जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को उजागर करता है।

गीता का मूल संदेश कर्मयोग – अर्थात निःस्वार्थ भाव से कर्म करना है। इसके अतिरिक्त गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, समान दृष्टिकोण, आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा और लोकसंग्रह जैसे सिद्धांतों पर बल दिया गया है। ये सिद्धांत व्यक्ति को न केवल व्यक्तिगत जीवन में नैतिक बनाते हैं बल्कि उसे समाज के प्रति उत्तरदायी नागरिक भी बनाते हैं। यही मूल्य समाज कार्य के मूल सिद्धांतों सामाजिक न्याय, समानता, गरिमा, सेवा भावना और मानवीय सहयोग के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। समाज कार्य (Social Work) का उद्देश्य समाज में व्याप्त

असमानताओं, भेदभाव, शोषण और वंचनाओं को दूर कर एक न्यायसंगत और मानवीय समाज का निर्माण करना है। इस पेशे में कार्य करने वाले समाज कार्यकर्ता को मानसिक रूप से सशक्त, नैतिक रूप से दृढ़ और सामाजिक रूप से संवेदनशील होना आवश्यक होता है। गीता के उपदेश इस दिशा में एक वैचारिक एवं आध्यात्मिक आधार प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए –

"**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**" का सिद्धांत समाज कार्यकर्ता को निःस्वार्थ सेवा की प्रेरणा देता है।

"**समदर्शिनः**" का सिद्धांत सामाजिक समानता और भेदभावरहित दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है।

"**लोकसंग्रह**" की अवधारणा समाज कल्याण और सामूहिक उत्थान का संदेश देती है।

आज के समय में समाज अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है – गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, नशाखोरी, घरेलू हिंसा, बाल श्रम, सामाजिक भेदभाव आदि। इन समस्याओं से निपटने में केवल नीतियों और योजनाओं से काम नहीं चलता, बल्कि नैतिकता, सेवा भावना और आंतरिक प्रेरणा की भी आवश्यकता होती है। गीता इसी आंतरिक प्रेरणा का स्रोत बन सकती है, जो समाज कार्य को केवल पेशा नहीं, बल्कि लोकसेवा का संकल्प बनाती है। इसके अतिरिक्त गीता में वर्णित आत्मसंयम और मानसिक संतुलन का सिद्धांत समाज कार्यकर्ता को चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में स्थिरता और स्पष्टता बनाए रखने में सहायता करता है। समाज कार्य के दौरान कार्यकर्ता को विभिन्न वर्गों के लोगों, उनकी समस्याओं और संघर्षों से दो–चार होना पड़ता है। ऐसे में गीता का यह दर्शन उसे भावनात्मक रूप से मजबूत और निष्पक्ष बनाता है। इस प्रकार, गीता न केवल व्यक्तिगत नैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है, बल्कि समाज कार्य के क्षेत्र में नैतिक आधार, वैचारिक स्पष्टता, आंतरिक प्रेरणा और समाज कल्याण की भावना को भी सुदृढ़ करती है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि (Theoretical Background) :

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा ग्रंथ है जो जीवन के मूल्यों, नैतिकता और कर्तव्यबोध का गहन संदेश देता है। समाज कार्य के क्षेत्र में जिन मूल सिद्धांतों 'मानवीय गरिमा की रक्षा, सामाजिक न्याय, समानता, सेवा भावना और लोककल्याण' पर बल दिया जाता है, वे गीता के दर्शन से गहराई से जुड़े हुए हैं। गीता के प्रमुख सिद्धांत व्यक्ति को आत्मिक रूप से सशक्त और सामाजिक रूप से उत्तरदायी नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। समाज कार्य में सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का तात्पर्य उन विचारों और दर्शन से होता है जिन पर सामाजिक कार्य की विचारधारा आधारित होती है। गीता एक ऐसा वैचारिक आधार प्रस्तुत करती है जिसमें व्यक्ति और समाज के मध्य संतुलन, कर्तव्यनिष्ठा और समानता को केंद्र में रखा गया है।

1. कर्मयोग का सिद्धांत :

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" – (गीता 2.47)

गीता में कर्मयोग का अर्थ है – निःस्वार्थ भाव से कर्म करना। समाज कार्य का मूल आधार भी निःस्वार्थ सेवा है। एक समाज कार्यकर्ता को समाज के हित में कार्य करते समय किसी व्यक्तिगत लाभ या प्रशंसा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। गीता का यह सिद्धांत समाज कार्य के पेशेवर नैतिकता (Professional Ethics) का दार्शनिक आधार बन सकता है।

2. लोकसंग्रह की अवधारणा :

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।" – (गीता 3.21)

गीता में लोकसंग्रह का अर्थ है समाज के हित के लिए कार्य करना। समाज कार्य में भी व्यक्ति के बजाय सामूहिक हित और सामाजिक कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है। यह सिद्धांत समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की प्रेरणा देता है।

3. समान दृष्टिकोण और समभाव :

"विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चौव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।" – (गीता 5.18)

गीता में हर व्यक्ति को समान दृष्टि से देखने की शिक्षा दी गई है। समाज कार्य में भी किसी भी प्रकार के जातीय, धार्मिक, लैंगिक या आर्थिक भेदभाव के बिना सहायता की जाती है। यह सिद्धांत सामाजिक न्याय (Social Justice) और समावेशन (Inclusion) की नींव है।

4. आत्मसंयम और मानसिक संतुलन :

गीता में मन और इंद्रियों पर नियंत्रण का विशेष महत्व बताया गया है। समाज कार्यकर्ता को अनेक संवेदनशील परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है 'ऐसे में मानसिक स्थिरता, सहानुभूति और निष्पक्षता अत्यंत आवश्यक होती है। गीता का यह सिद्धांत भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence) को सुदृढ़ करता है।

5. कर्तव्यनिष्ठा और सेवा भाव :

गीता में प्रत्येक व्यक्ति को अपना कर्तव्य पूरी निष्ठा के साथ निभाने की प्रेरणा दी गई है। समाज कार्य में भी यह अपेक्षा की जाती है कि कार्यकर्ता अपने पेशेवर कर्तव्यों के प्रति समर्पित रहे और लोकहित के लिए काम करे। यह समाज कार्य के Professional Commitment को मजबूत करता है।

साहित्यिक समीक्षा (Review of Literature) :

श्रीमद्भगवद्गीता और समाज कार्य के बीच संबंधों पर प्रत्यक्ष शोध अपेक्षाकृत सीमित है, लेकिन गीता के दार्शनिक सिद्धांतों, नैतिकता, लोककल्याण तथा सेवा भाव पर अनेक विद्वानों, विचारकों और समाज वैज्ञानिकों ने विस्तार से विचार प्रस्तुत किए हैं। इन विचारों से यह स्पष्ट होता है कि गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि सामाजिक व्यवहार, नैतिक आचार संहिता और मानवीय मूल्य प्रणाली का भी एक सशक्त स्रोत है। नीचे प्रस्तुत साहित्यिक समीक्षा इस दिशा में किए गए प्रमुख अध्ययनों का संक्षेप है :

1. भगवद्गीता और नैतिक दर्शन पर आधारित अध्ययन :

- Radhakrishnan, S. (1948) ने अपनी पुस्तक "The Bhagavad Gita" में गीता को जीवन का व्यावहारिक दर्शन बताया है। उनके अनुसार, गीता का कर्मयोग व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत मुक्ति नहीं बल्कि लोकसंग्रह अर्थात समाज के कल्याण की दिशा में प्रेरित करता है।
- Tilak, B.G. (1909) ने "Gita Rahasya" में गीता के कर्मयोग को सामाजिक कर्तव्यों और मानव कल्याण से जोड़ते हुए बताया कि निष्काम कर्म का आदर्श समाज निर्माण का एक आधार हो सकता है।

2. गीता और मानवीय मूल्यों पर अनुसंधान :

- Prasad, R. (2017) की पुस्तक "Indian Ethics and Social Responsibility" में गीता के समदर्शिनः

सिद्धांत को सामाजिक समानता, नैतिकता और उत्तरदायित्व की दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। लेखक का कहना है कि गीता का समान दृष्टिकोण समाज कार्य में भेदभावरहित सेवा को प्रोत्साहित करता है।

- Chatterjee, D. (2015) ने अपने शोध लेख में बताया कि गीता के आत्मसंयम के सिद्धांत आधुनिक समाज कार्यकर्ताओं के लिए भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकसित करने में सहायक हो सकते हैं।

3. गीता और समाज सेवा पर व्यावहारिक अध्ययन :

- Gupta, A. (2020) के एक अध्ययन "Application of Bhagavad Gita in Modern Social Work" में पाया गया कि समाज कार्यकर्ताओं में गीता के सिद्धांतों पर आधारित प्रशिक्षण से उनकी कर्तव्यनिष्ठा, मानसिक स्थिरता और सेवा भावना में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।
- Joshi, V. (2018) ने बताया कि गीता के लोकसंग्रह सिद्धांत को सामाजिक संगठनों और स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्य ढांचे में समाहित किया जा सकता है, जिससे सामूहिक कल्याण की भावना प्रबल होती है।

4. समाज कार्य और धार्मिक/दार्शनिक ग्रंथों पर साहित्य :

- IFSW (2014) की Global Definition of Social Work में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि समाज कार्य एक ऐसा पेशा है जो मानवता के सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है। गीता जैसे ग्रंथ इन मूल्यों के लिए सांस्कृतिक और नैतिक आधार प्रदान करते हैं।
- Desai, M. (2005) ने कहा कि भारतीय समाज कार्य की जड़ें देश के आध्यात्मिक और नैतिक दर्शन में गहराई से निहित हैं, और गीता इन जड़ों का प्रमुख स्रोत है।

5. समीक्षा का विश्लेषण :

उपरोक्त साहित्य से निम्न बिंदु उभरकर सामने आते हैं :

1. गीता का कर्मयोग समाज कार्य में निःस्वार्थ सेवा और नैतिक आचरण को सुदृढ़ करता है।
2. समान दृष्टिकोण और लोकसंग्रह की अवधारणा सामाजिक न्याय, समानता और सामूहिक कल्याण को प्रोत्साहित करती है।
3. गीता का आत्मसंयम सिद्धांत समाज कार्यकर्ताओं की मानसिक दृढ़ता और पेशेवर स्थिरता में सहायक होता है।
4. गीता को समाज कार्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (Cultural Context) के रूप में अपनाने से कार्य की प्रभावशीलता में वृद्धि हो सकती है।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता समाज कार्य (Social Work) के लिए केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि एक सशक्त दर्शन, नैतिकता और मूल्य प्रणाली का स्रोत है। इसके सिद्धांत समाज कार्य की व्यावसायिक नैतिकता, सेवा भावना और लोककल्याण के उद्देश्यों से गहराई से जुड़े हुए हैं।

1. निष्काम कर्म का सिद्धांत समाज कार्य का नैतिक आधार बनता है :

- गीता का "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" सिद्धांत समाज कार्यकर्ता को निःस्वार्थ सेवा करने की प्रेरणा देता है।
- यह पेशेवर निष्पक्षता (Professional Neutrality) और समर्पण की भावना को सुदृढ़ करता है।

2. **लोकसंग्रह की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रेरक शक्ति है :**

- गीता में लोकसंग्रह का अर्थ है समाज के सामूहिक हित के लिए कार्य करना।
- यह सिद्धांत समाज कार्य को केवल व्यक्तिगत सहायता तक सीमित न रखकर सामाजिक न्याय और संरचनात्मक परिवर्तन की ओर उन्मुख करता है।

3. **समान दृष्टिकोण सामाजिक न्याय को मजबूत करता है :**

- गीता में वर्णित "समदर्शिनः" सिद्धांत समाज कार्य के मूल्यों 'समानता, समावेशन, भेदभाव रहित दृष्टिकोण' को पुष्ट करता है।
- यह समाज कार्यकर्ता को हर वर्ग और व्यक्ति के साथ समान व्यवहार के लिए प्रेरित करता है।

4. **आत्मसंयम और मानसिक संतुलन समाज कार्यकर्ता के लिए आवश्यक गुण हैं :**

- गीता में आत्मसंयम, संयमित मन और इंद्रियों पर नियंत्रण की शिक्षा दी गई है।
- यह समाज कार्यकर्ताओं को भावनात्मक रूप से दृढ़ और तनावपूर्ण परिस्थितियों में संतुलित रहने में सहायता प्रदान करता है।

5. **गीता समाज कार्य को सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है :**

- गीता के सिद्धांत भारतीय समाज की सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े हैं।
- आधुनिक समाज कार्य में इन सिद्धांतों को शामिल करने से न केवल कार्य की प्रभावशीलता बढ़ती है बल्कि समाज में लोकहित की भावना भी प्रबल होती है।

6. **आधुनिक समाज कार्य में गीता का व्यावहारिक उपयोग संभव है :**

- गीता के विचारों को समाज कार्य के प्रशिक्षण कार्यक्रमों, पाठ्यक्रमों और नीतियों में समाहित किया जा सकता है।
- यह समाज कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास, सेवा भावना और नैतिकता को बढ़ावा देगा।

सुझाव :

इस अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धांत समाज कार्य को एक सशक्त नैतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक दिशा प्रदान कर सकते हैं। समाज कार्य की शिक्षा, व्यवहार और नीतियों में इन मूल्यों को उचित स्थान देकर इसे और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। इस दिशा में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं :

1. **समाज कार्य शिक्षा में गीता के सिद्धांतों को शामिल किया जाए :**

- विश्वविद्यालयों एवं समाज कार्य संस्थानों में गीता के कर्मयोग, समान दृष्टिकोण और लोकसंग्रह जैसे सिद्धांतों पर विशेष व्याख्यान या मॉड्यूल तैयार किए जाएं।
- नैतिकता (Ethics) और मूल्य शिक्षा (Value Education) के पाठ्यक्रम में गीता की शिक्षाओं को जोड़ा जाए।

2. **प्रशिक्षण कार्यक्रमों में गीता आधारित मूल्य संवर्धन :**

- समाज कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों के लिए नैतिक प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाएं जिनमें गीता के उपदेशों के व्यावहारिक प्रयोग पर जोर दिया जाए।

- आत्मसंयम, धैर्य, निष्पक्षता और सेवा भावना विकसित करने हेतु गीता से प्रेरित प्रैक्टिकल सत्र जोड़े जाएं।

3. लोकसंग्रह की अवधारणा को सामाजिक नीतियों में समाहित किया जाए :

- गीता में वर्णित लोकसंग्रह को सामाजिक विकास योजनाओं और सामुदायिक कार्यक्रमों में एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में अपनाया जा सकता है।
- नीतियों में सामूहिक कल्याण और समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों के सशक्तिकरण को प्राथमिकता दी जाए।

4. संवेदनशीलता और समानता को बढ़ावा देने के लिए गीता का उपयोग :

- गीता के समदर्शिनः सिद्धांत के आधार पर समाज कार्यकर्ताओं में भेदभावरहित दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।
- विशेष प्रशिक्षण द्वारा उन्हें जाति, धर्म, लिंग या वर्ग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठने की प्रेरणा दी जाए।

5. सांस्कृतिक एवं स्थानीय संदर्भ में समाज कार्य को सशक्त बनाना :

- समाज कार्य की रणनीतियों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश किया जाए ताकि कार्य अधिक स्वीकार्य और प्रभावी हो सके।
- गीता जैसी परंपरागत दार्शनिक विचारधाराओं को आधुनिक समाज कार्य के साथ संतुलित किया जाए।

6. मानसिक स्वास्थ्य और आत्मसंयम के लिए गीता का प्रयोग :

- गीता के सिद्धांतों पर आधारित ध्यान (Meditation), भावनात्मक प्रशिक्षण और आत्म–संयम की तकनीकें समाज कार्यकर्ताओं को मानसिक दृढ़ता प्रदान कर सकती हैं।
- इससे वे तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी प्रभावी ढंग से कार्य कर पाएंगे।

नीति अनुशंसा :

इस अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर यह पाया गया कि श्रीमद्भगवद्गीता में निहित नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्य समाज कार्य की नीति निर्माण और क्रियान्वयन प्रक्रिया को और अधिक मानवीय, संवेदनशील एवं प्रभावी बना सकते हैं। अतः निम्नलिखित नीति अनुशंसाएँ प्रस्तुत की जाती हैं :

1. शैक्षिक नीतियों में समावेशन :

- समाज कार्य की उच्च शिक्षा में गीता दर्शन से संबंधित मॉड्यूल या पाठ्यक्रम सम्मिलित किए जाएं।
- सामाजिक कार्य शिक्षा में कर्मयोग, लोकसंग्रह और समदर्शिनः जैसे सिद्धांतों को मूल्य शिक्षा (Value Education) के अंतर्गत पढ़ाया जाए।
- इस विषय पर विशेष व्याख्यानमालाएँ, संगोष्ठियाँ और कार्यशालाएँ नियमित रूप से आयोजित की जाएं।

2. प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण नीतियाँ :

- सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) में कार्यरत समाज कार्यकर्ताओं के लिए गीता आधारित मानव मूल्य एवं नैतिक प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किए जाएं।
- प्रशिक्षण में आत्मसंयम, निष्पक्षता, सहानुभूति और मानसिक दृढ़ता विकसित करने पर बल दिया जाए।

- इन कार्यक्रमों को समाज कार्य संस्थानों में अनिवार्य घटक बनाया जाए।

3. सामुदायिक विकास नीतियों में लोकसंग्रह का समावेश :

- गीता में उल्लिखित लोकसंग्रह की अवधारणा को सामुदायिक विकास योजनाओं की आधारभूत विचारधारा बनाया जाए।
- नीति निर्माण में सामाजिक समरसता, सर्वहित और सामूहिक भागीदारी को प्राथमिकता दी जाए।
- हाशिए पर स्थित वर्गों को मुख्यधारा में लाने के लिए गीता आधारित प्रेरणात्मक मॉडल विकसित किए जाएं।

4. समावेशी और भेदभाव-मुक्त समाज निर्माण के लिए नीतियाँ :

- गीता के समदर्शिनः सिद्धांत के आधार पर नीतियाँ तैयार की जाएं जो जाति, धर्म, लिंग या वर्ग के भेदभाव से ऊपर उठकर समानता को बढ़ावा दें।
- समाज कार्यकर्ताओं को समान दृष्टिकोण अपनाने के लिए संस्थागत मार्गदर्शन प्रदान किया जाए।

5. सांस्कृतिक मूल्यों को नीति में स्थान देना :

- भारतीय सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परंपराओं को आधुनिक समाज कार्य नीतियों के साथ जोड़ा जाए।
- इससे नीतियाँ स्थानीय संदर्भ में अधिक प्रासंगिक, व्यवहारिक और प्रभावी बनेंगी।
- गीता के सिद्धांतों को भारतीय समाज कार्य के स्वदेशी दृष्टिकोण के रूप में विकसित किया जाए।

6. मानसिक स्वास्थ्य एवं तनाव प्रबंधन नीति में गीता का उपयोग :

- समाज कार्यकर्ताओं के मानसिक स्वास्थ्य संरक्षण के लिए गीता आधारित योग, ध्यान और आत्मसंयम की तकनीकों को प्रशिक्षण में जोड़ा जाए।
- संस्थानों में Spiritual Well-being Programs आरंभ किए जाएं ताकि कार्यकर्ता तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी प्रभावी रूप से कार्य कर सकें।

संदर्भ सूची :

1. Chatterjee, D. (2015). Gita and emotional intelligence in social work. Indian Journal of Social Sciences, 12(3), 45–56.
2. Desai, M. (2005). Philosophical base of Indian social work. Mumbai: TISS Publications.
3. Gupta, A. (2020). Application of Bhagavad Gita in modern social work. Varanasi: BHU Publications.
4. Joshi, V. (2018). Philosophical foundations of Indian social work. Social Work Review, 10(2), 67–82.
5. Prasad, R. (2017). Indian ethics and social responsibility. Delhi: Motilal Banarsidass.
6. Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavad Gita. London: George Allen & Unwin.
7. Tilak, B. G. (1909). Gita Rahasya. Pune: Kesari Press.
8. International Federation of Social Workers (IFSW). (2014). Global definition of social work. Geneva: IFSW.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 30-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता का अध्ययन करना

मेनका जाखड़, पी–एच.डी. (छात्रा)
डॉ. महेश कुमार शर्मा, शोध निर्देशक
IASE DEEMED TO BE UNIVERSITY, GVM SARDARSHAHAR, CHURU.

शोध आलेख सार –

परस्पर एक–दूसरे के विचारों एवं भावनाओं में समान स्तर पर भागीदारी रखना ही सम्प्रेषण है। हम कह सकते हैं कि सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जो एक दूसरे के विचारों, सिद्धान्तों और तथ्यों को समझने का अवसर देती है। कक्षागत सम्प्रेषण में तीन बातें आवश्यक होती हैं – शिक्षक, शिक्षार्थी और सम्प्रेषण सामग्री। सम्प्रेषण तब माना जाता है जब किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में कोई विचार उत्पन्न हो और वह दूसरों तक पहुँचे तथा उसे स्वीकार किया जाये। परन्तु किसी एक व्यक्ति को दी जाने वाली सूचना से सम्प्रेषण की प्रक्रिया पूरी नहीं होती। सम्प्रेषण की प्रक्रिया में सूचना भेजने वाला अकेले सम्प्रेषण की प्रक्रिया को पूरा नहीं कर सकता। सम्प्रेषण के लिये आवश्यक है कि लेने वाला व देने वाला दोनों ही सक्रिय हों। शिष्य भी जिज्ञासु व विनयशील हो।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है – ''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः अर्थात् शिष्य सेवाभावी हो, विनयशील हो तथा गुरु के चरणों में प्रणाम करके आदर पूर्वक गुरु के पास जाकर अपनी जिज्ञासा रखे तब वे ज्ञानी महापुरुष तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे। यद्यपि आज ऐसे गुरु व शिष्य दोनों का मिलना कठिन है फिर भी यह आवश्यक है कि शिष्य जिज्ञासा रखें वह गुरु से प्रश्न, गुरु की परीक्षा लेने व मजाक करने के लिये न पूछकर अपने ज्ञान को बढ़ाने का भाव हृदय में रखें तभी शिष्य सीखेगा, और इस दौरान जो भी सम्प्रेषण होगा वह अत्यधिक प्रभावी होगा क्योंकि दोनों मानसिक रूप से तैयार हैं।

मूल शब्द – विद्यार्थी एवं सम्प्रेषण क्षमता।

प्रस्तावना –

विद्यार्थियों की सम्प्रेषण में अनेकों बाधाएं सम्प्रेषण को बाधित कर सकती हैं। सम्प्रेषण की प्रवाहशीलता खत्म कर सकती है या सम्प्रेषण को अप्रभावी बना सकती हैं। सबसे पहली आवश्यकता है छात्रों का मस्तिष्क निर्मल हो। जिसके लिये छात्रों की दिनचर्या व्यवस्थित हो वह उन्हें निर्मल मन से जिज्ञासु बनाने के लिये प्रेरित करें, क्योंकि जब तक मन, विषय सामग्री पर केन्द्रित नहीं होगा तब तक सम्प्रेषण का कोई लाभ नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता में जब अर्जुन, भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं कि मन बहुत चंचल है, यह हठपूर्वक इधर–उधर भाग जाता है, इसे बांधना तो हवा के बांधने के समान है तो भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन को समझाते हैं कि

अभ्यास से यह कार्य सम्भव है। जो व्यक्ति अपने आप को जीत लेता है, मन पर नियन्त्रण स्थापित कर लेता है, वह अपना स्वयं में मित्र है जो ऐसा नहीं कर सकते वे अपने में प्रतिस्वयं शत्रु सा व्यवहार करते हैं। अर्थात् आत्म संयम से ही ध्यान और धारणा की शक्ति बढेगी, जिससे विषय वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई न होगी और मन स्थिर और निर्मल हो जायेगा। शिक्षक को चाहिए कि वे बालकों के मानसिक विकास हेतु उन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने को दें, माता–पिता से सम्पर्क बनायें व बालकों में सदैव अच्छे गुणों के विकास के लिये प्रयत्नशील रहें। स्वयं अपने आपको आदर्श जीवन शैली में ढालें क्योंकि 90 प्रतिशत बालक उससे सीखते हैं जो हम कहते व करते हैं। जब बालकों को मानसिक बुराईयाँ नहीं घेरेंगी तभी वह सब कुछ सीख सकेगा। आप सम्प्रेषण के साधनों का चाहे जो भी प्रयोग करें, आवश्यकता यह है कि वह उद्देश्य केन्द्रित रहे तथा बालकों में मानसिक चेतना लाये। यदि शिक्षक प्रभावी रूप से शिक्षण नहीं कर रहा है अर्थात् विषय वस्तु पर स्वामित्व का अभाव है, या नियोजन दोषपूर्ण है या बालमनोविज्ञान की बिना जानकारी के, शिक्षक विषय वस्तु थोप रहा है तो प्रभावी सम्प्रेषण नहीं हो पायेगा। सावधानियाँ दोनों तरफ से अपेक्षित हैं। बालक जब मानसिक रूप से विषय सामग्री के प्रति तैयार होगा तभी सम्प्रेषण भी होगा। यह सच है कि सम्प्रेषण कौशल से विषय सामग्री की नीरसता दूर की जा सकती है व पाठ्य सामग्री बालकों के लिये रूचिकर बनाई जा सकती है। फिर भी यह आवश्यक है कि इन कौशलों का प्रयोग भी विषय सामग्री एवं छात्र के मानसिक स्तर के हिसाब से करना होगा। आज जब शिक्षा के सार्वभौमिकरण की बात हो रही है, तब शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि दूरस्थ शिक्षा तथा अन्य आधुनिक उपकरणों के संचालन में भी दक्ष हो।

बालकों को वह नवीन टैक्नोलॉजी से जोड़ने का प्रयास करें और सम्प्रेषण की कुशलताओं को अपनाकर सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करें। अध्यापक विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण के लिये सदैव प्रयत्नशील रहें। अध्यापन कसौटी, बालकों का अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन है, और इस व्यवहार परिवर्तन का स्वरूप वैज्ञानिक है, जो सीधे अधिगम से सम्बन्धित है। बिना अधिगम के बालक का विकास सम्भव ही नहीं। अतः प्रभावी अधिगम के लिये समप्रेषण की कला पहली शर्त है। शिक्षक, शिक्षण कार्य के समय विचारों के आदान–प्रदान हेतु कई शिक्षण युक्तियों, विधियों व प्रविधियों का प्रयोग करता है, इनके पीछे उसका मुख्य उद्देश्य बालक का अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन है।

शिक्षक का कार्य, मात्र तथ्यों की सूचना देना नहीं है, बल्कि उसे तो ऐसे शैक्षिक वातावरण का निर्माण करना होता है, जो छात्र की योग्यताओं, दक्षताओं, क्षमताओं का यथेष्ट विकास कर सकें। इसलिये शिक्षक के लिये भी आवश्यक है कि वह सम्प्रेषण की वैज्ञानिकता के साथ उसकी कलात्मकता को भी समझे। उन बातों पर भी विचार करें जो बालकों को विषय–वस्तु शिक्षार्थी को ग्राह्य करायें। यद्यपि कक्षागत व्यवहार पर अनेक शोध–कार्य किये गये तथा शाब्दिक व अशाब्दिक व्यवहारों में वर्गीकृत करते हुए इस पूरी प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया गया, फिर भी सामाजिक व्यवहारों की अस्थिरता के कारण ऐसी कोई एक विधि निश्चित न हो सकी, जो सभी परिस्थितियों में उपयुक्त हों।

अध्ययन का महत्व :–

कोई भी विचार चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, तब तक बेकार है जब तक कि उसे स्थानान्तरित करके दूसरे के द्वारा समझा न गया हो। सम्प्रेषण पूर्ण रूप से उस स्थिति में होता है जबकि विचार का

स्थानान्तरण और प्रत्यक्षीकरण प्रेषक और प्राप्तकर्ता द्वारा बिल्कुल एक जैसा हो।

न्यूमैन एवं समर के अनुसार – ''सम्प्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के तथ्यों, विचारों, अभिमतों अथवा संवेगों का पारस्परिक आदान–प्रदान है।''

सम्प्रेषण की अनुपस्थिति में समूह गतिविधि या क्रिया असम्भव है। सम्प्रेषण किसी संस्था की कार्यप्रणाली के लिए आवश्यक है क्योंकि यह प्रबन्धात्मक कार्यों को एकीकृत करता है।

सम्प्रेषण की विशेषताएँ :–

1. सम्प्रेषण एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।
2. सम्प्रेषण एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रणाली है।
3. सम्प्रेषण में कम से कम दो पक्ष होते है।
4. सम्प्रेषण के साधन अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे मौखिक या लिखित संकेत, तार, पत्र आदि।
5. सम्प्रेषण एक सतत् प्रक्रिया है।
6. सम्प्रेषण एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।
7. सम्प्रेषण का अर्थ एक स्थानान्तरण और बोध दोनों ही सम्मिलित होता है।
8. सम्प्रेषण सम्पूर्ण व्यवहार के रूप में कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है।
9. सम्प्रेषण सदैव गत्यात्मक होता है।
10. सम्प्रेषण एक मानवीय प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण के उद्देश्य :–

ज्ञान, अवबोध, कौशल, अनुप्रयोग, अभिरूचि आदि के अनुसार सम्प्रेषण किया जाना चाहिए ताकि इसमें प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सके। संगठन की नीतियों, कार्यविधियों, व्यवहारों एवं व्याख्याओं से परिचित कराना, विचारों को कार्य रूप प्रदान करना, समन्वय स्थापित करना आदि सम्प्रेषण के मुख्य उद्देश्य होते हैं। किसी संगठन में सम्प्रेषण को एक ऐसे साधन के रूप में देखा जा सकता है जिससे लोग संस्था में एक संयुक्त उद्देश्य को अर्जित करने के लिए आपस में जुड़ जाते हैं।

ज्ञान, अवबोध, कौशल, अनुप्रयोग, अभिरूचि आदि के अनुसार सम्प्रेषण किया जाना चाहिए ताकि इसमें प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सके। संगठन की नीतियों, कार्यविधियों, व्यवहारों एवं व्याख्याओं से परिचित कराना, विचारों को कार्य रूप प्रदान करना, समन्वय स्थापित करना आदि सम्प्रेषण के मुख्य उद्देश्य होते हैं।

किसी संगठन में सम्प्रेषण को एक ऐसे साधन के रूप में देखा जा सकता है जिससे लोग संस्था में एक संयुक्त उद्देश्य को अर्जित करने के लिए आपस में जुड़ जाते हैं। सम्प्रेषण की अनुपस्थिति में समूह गतिविधि या क्रिया असम्भव है। सम्प्रेषण किसी संस्था की कार्यप्रणाली के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह प्रबन्धनात्मक कार्यों को एकीकृत करता है।

समस्या कथन :–

''विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता का अध्ययन करना।''

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना :–

2. विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता का कोई निश्चित स्तर नहीं होता है।

परिसीमन :–

प्रस्तावित शोध अध्ययन राजस्थान राज्य के शेखावाटी क्षेत्र के झुन्झुनू जिले तक सीमित रखा गया है। प्रस्तावित शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत (400 छात्र) तथा (400 छात्राओं) को सम्मिलित किया गया है।

शोधविधि :–

प्रस्तुत शोध में उद्देश्य एवं परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा दत्त संकलन हेतु सर्वेक्षणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :–

सम्प्रेषण क्षमता मापनी :–

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित सम्प्रेषण क्षमता मापनी को आधार माना गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी :–

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना की गई है।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण :–

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थी ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है –

तालिका संख्या – 1

विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना

प्राप्तांक प्रतिशत			प्रतिशत की सार्थकता		
उच्च	औसत	निम्न	उच्च	औसत	निम्न
66.67	32.00	1.33	62.59 से 70.75 तक	27.96 से 36.04 तक	0.34 से 2.32 तक

उक्त सारणी में विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार सबसे अधिक सम्प्रेषण क्षमता क्रिया उच्च स्तर पर 66.67 प्रतिशत तथा 62.59 से 70.75 के बीच पायी गयी। आगे विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता के प्राप्तांकों के प्रतिशत का आरेख दिया गया है :–

ग्राफ संख्या – 1

विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता का आरेख

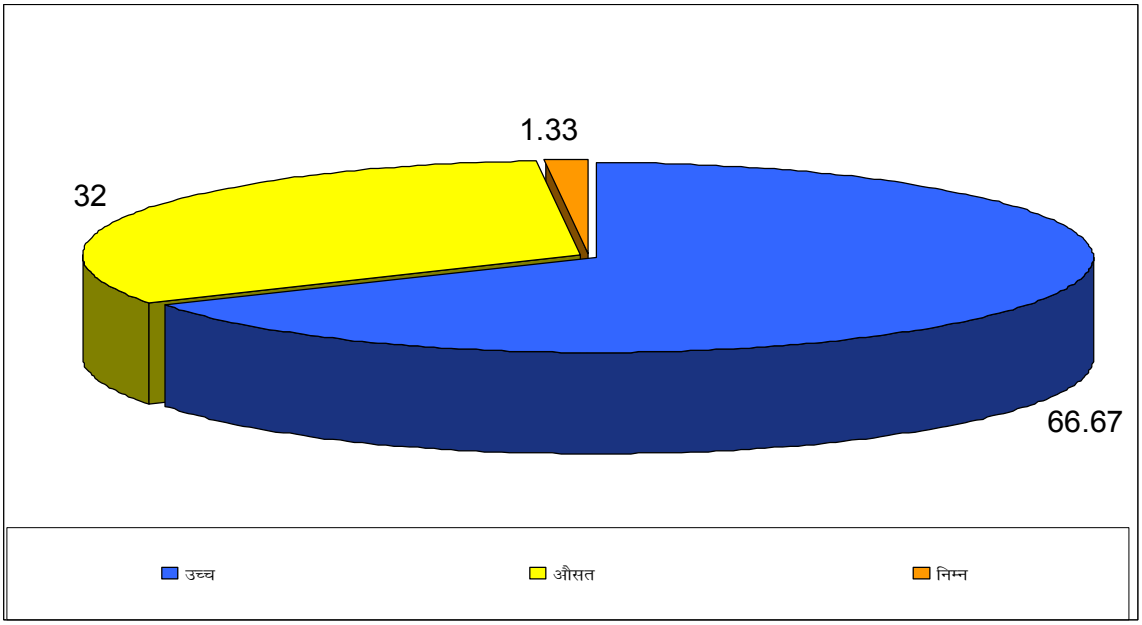

निष्कर्ष निरूपण –

1. विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता उच्च स्तर पर सबसे अधिक पाया गया। अतः परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

हिन्दी संदर्भ साहित्य :-

1. कपिल, एच के. (1979). अनुसंधान विधियाँ. आगरा : द्वितीय संस्करण. हरिप्रसाद भार्गव हाऊस. पृष्ठ संख्या–23
2. चौबे, सरयू प्रसाद (2005). शिक्षा मनोविज्ञान. मेरठ : इण्टरनेशनल पब्लिकेशन हाऊस. पेज न. 184
3. कोठारी, सी.आर. (2008). अनुसंधान विधिशास्त्र विधियाँ और तकनीकी. आगरा : न्यूरोज इन्टरनेशनल लिमिटेड पब्लिकेशन कारपोरेशन. पृष्ठ संख्या–2
4. खान, ए.आर. (2005). जीवन कौशल शिक्षा. अजमेरः राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड. पृष्ठ संख्या–14
5. गुप्त, नत्थूलाल (2000). मूल्य परक शिक्षा और समाज. नई दिल्लीः नमन प्रकाशन. पेज–122
6. चतुर्वेदी, त्रिभुवननाथ (2005). पारिवारिक सुख के लिए हैः किशोर मन की समझ. नई–दिल्ली : श्रीविजय इन्द्र टाइम्स अंक–8, पृष्ठ संख्या–25

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 35-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय शिक्षा पद्धति : आदि से वर्तमान तक

डॉ. भूपेन्द्र सिंह

सहायक आचार्य, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, जामडोली, जयपुर।

प्रस्तावना :

भारतीय शिक्षा पद्धति अर्थात वह शिक्षा पद्धति जिसका उपयोग तक्षशिला व नालंदा विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालय करते थे, वह विद्यालय जिसने भारत को वाराहमिहिर, भास्कराचार्य, बाणभट्ट, आर्यभट्ट तथा चाणक्य जैसे महानतम विद्वान प्रदान किए हैं। भारत की शिक्षा पद्धति की छाप व चमक इतनी थी कि प्राचीनकाल मे विदेशों से अगणित विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आते थे। यहाँ तक कि विदेशी तीर्थ यात्रियों मे से मेगास्थनीज, फाहयान, हवेनसांग, इत्सिंग तथा पेस आदि का भारत आने का एक कारण यहा से ज्ञान अर्जित करना भी था। अलबरूनी वस्तुतः भारत के महान ग्रंथों का अध्ययन करके उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था। परंतु महमूद गजनवी के आदेश के अनुसार तथा इन ग्रन्थों की भावना, संस्कृत भाषा समझ न पाने के कारण वह उनके छिद्रान्वेषण की ओर उन्मुख हो गया परंतु फिर भी वह इन ग्रंथो व भारत की शिक्षा की प्रशंषा करने से स्वयं को रोक न सका। वस्तुतः भारतीय शिक्षा अत्यंत महान तथा प्राचीनतम शिक्षा व्यवस्था है। अतएव भारत विश्वगुरु कहलाया।

इससे पूर्व कि हम भारतीय शिक्षा के विस्तार की चर्चा करें। हम शिक्षा के मानक व उद्देश्य की चर्चा करना परमावश्यक है। शिक्षा के उद्धेश्यों मे सर्वप्रथम चरित्र का निर्माण (विद्या ददाति विनयम, विनयादयाति पात्रताम, पात्रत्वात धनमाप्नोति, धनात धर्म ततः सुखम अर्थात विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म तथा धर्म से सुख प्राप्त होता है) होना चाहिए तथा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। शारीरिक (भौतिक), मानसिक, आध्यात्मिक, चारित्रिक संवेगात्मक तथा आज के युग के अनुप आर्थिक विकास आदि सभी आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान अर्जित करना भी है (नास्ति विद्या समं चक्षुनास्ति सत्यसमं तपः)। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह मनुष्य की रक्षा कर सके। वैसे विद्या स्वयं बल है (बुद्धिर्यस्य बलं तस्य)। शिक्षा आजीविका प्राप्ति का अनुपम साधन है, परंतु मात्र आजीविका प्राप्ति ही शिक्षा का उद्धेश्य नही है, वरन शिक्षा ही मनुष्य को गुणी तथा सुसंस्कृत बनाती है। नही तो शास्त्रण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः जैसी स्थिति हो जाएगी। साथ ही शिष्य को सामाजिक, राष्ट्रीय तथा नागरिक कर्तव्यों का ज्ञान कराना भी शिक्षा का एक लक्ष्य है। अंततः "या विद्या सा विमुक्तये" शिक्षा का एक विशिस्ट लक्ष्य मोक्ष या ईश्वर प्राप्ति भी है, जिसे कही न कही विश्व के हर कौने में मान्यता दी गई है। (भाटिया, एम, प्राचीन भारत मे शिक्षा प्रणाली, पेज 2–15)

भारतीय शिक्षा पद्धति प्राचीन काल में अत्यंत समुन्नत व उत्कृष्ट थी। अतएव प्राचीन काल में भारत को

विश्व गुरु कहा जाता था। वस्तुतः यह शिक्षा मनुष्य को न केवल जीवन के यथार्थ का दर्शन कराती थी, वरन यह शिष्य को इस योग्य बनाती थी कि वह भवसागर की बाधाओं को पार करके अंत मे मोक्ष को प्राप्त कर सके। (https//www.teachershelpinghand.com/2020/05/gurukul-modern -education-school changing-education-system-changing-in-education-system.html, Accesed on 8/08/2020)

प्राचीन शिक्षा वस्तुतः गुरुकुल शिक्षा पद्धति थी। विद्यार्थी अपने घर से दूर अपने गुरु या गुरुओं के आश्रम अर्थात गुरुकुल मे रहकर विद्याध्ययन करते थे। शिक्षक को आचार्य एवं गुरु कहा जाता था तथा छात्र को अंतेवासी, ब्रह्मचारी कहा जाता था। गुरु–शिष्य परंपरा हिंदू धर्म में ही नही, वरन् जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म आदि में भी है। गुरु शिष्य से अध्यापन का कोई शुल्क प्राप्त नहीं करते थे। यह शिक्षा निःशुल्क थी। छात्र गुरु से सीखते थे और अपने दैनिक जीवन के कार्यों में गुरु की सहायता करते थे। ये शिक्षक स्वालंबन तथा व्यावहारिक जीवन की शिक्षा देते थे। शिष्य वेद अध्ययन करते थे। वेदमन्त्र कंठस्थ किए जाते थे, साथ ही साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण, तर्कशास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, गणित, शस्त्र विद्या, चिकित्साशास्त्र, सामान्य ज्ञान, कला कौशल आदि का भी अध्ययन किया जाता था।

शिष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। ब्रह्मचारी अध्ययन–अध्यापन मे संलग्न रहते थे तथा वाद–विवाद, विचार विमर्श तथा शास्त्रार्थ मे सम्मिलित होकर अपनी योग्यता का परिचय देते थे। इस युग मे मौखिक उच्चारण, आगमन–निगमन पद्धति, आत्मदर्शन, कहानी कहना, याद करना, समालोचनात्मक विश्लेषण, व्यावहारिक ज्ञान तथा सम्मेलन आदि शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग किया जाता था। भिन्न–भिन्न अवस्था के विद्यार्थियों के अध्यापन हेतु समकेंद्रीय विधि का भी प्रयोग होता था, जिसमे सूत्र, वृत्ति, भाष्य, वार्तिक सम्मिलित थे। विषयों को स्मरण रखने के लिए सूत्र कारिका एवं सारणी विधि का प्रयोग किया जाता था। इस शिक्षा मे शारीरिक श्रम का विशेष स्थान था। इस युग की शिक्षा में संस्कृत की सूत्र पद्धति का प्रयोग किया जाता था। इस युग की शिक्षा पद्धति मे आधुनिक काल मे प्रचलित आगमन व निगमन पद्धति का प्रयोग किया जाता था। इस कल मे अग्र पद्धति का प्रयोग होता है जिसमे बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों का अध्यापन करते थे।

(1 Gurukula Patrika, April–July, 1940-41, Ank 10, (12 June 1940), P.1

भारत की शिक्षा पद्धति एवं आधुनिक भारतीय समाज मे इसकी प्रासंगिकता, पृष्ठ 218–230,

2. Gunjun Shakshi, H. 1971, "Social and Humanistic Life in India", Abhinav Publications, Delhi, PP.122-124.

3. प्राचीन :

इस शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण, आत्म अनुशासन तथा आध्यात्मिकता की ओर मोड़ना भी था तथा अंतिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही था। नैतिक मूल्य, चारित्रिक उत्थान, संस्कृति एवं परंपरा के तत्व इस शिक्षा पद्धति के मुख्य गुण थे। सामान्यतया गुरु तथा शिष्य के रिश्ते को बहुत पवित्र माना जाता था। किसी की शिक्षा के अंत में, एक शिष्य गुरुकुल छोड़ने से पहले गुरु दक्षिणा प्रदान करता है। गुरुदक्षिणा एक पारंपरिक रीति थी जो गुरु की स्वीकृति, सम्मान और धन्यवाद ज्ञापित करने के लिए दी जाती थी। आधुनिक काल मे स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी गुरुकुल परंपरा में शिक्षण किया था जबकि बेल्जियम मे कुछ शिक्षा केन्द्र आज भी वैदिक, गणित, कला, संगीत, नक्षत्र विज्ञान, संस्कृत तथा योग की शिक्षा प्रदान करने के लिए 8 वर्ष से 16 वर्ष की आयु के बालकों

को गुरुकुल व्यवस्था मे शिक्षा प्रदान करते हैं।

(https://www.teachershelpinghand.com/2020/05/gurukul-modern-education-school-changing-education-system-changing-in-education-system-changing-the-education-system.html)

स्त्रियों को भी शिक्षा प्रदान की जाती थी, जो स्त्रियाँ केवल विवाह तक ही शिक्षा ग्रहण करती थी, उन्हें "सदयोदवास" कहा जाता था जबकि आजीवन शिक्षा ग्रहण करती थी उन्हें "ब्रम्हवदिनीज" कहा जाता था। उन्हें वेद तथा वेदांगो की शिक्षा दी जाती थी। इस युग की महान स्त्रियॉ मे अपाला, घोषा, इंद्राणी, लोपामुद्रा, गार्गी तथा मैत्रीयी आदि थी।

(https://theculturetrip.com/asia/india/articles/what-did-the-ancient-indian-education-system-look-like)

प्राचीन विश्वविद्यालयों मे 6 सदी ईसा पूर्व मे तक्षशिला विश्वविद्यालय चिकित्सा का विश्वविख्यात शिक्षा केंद् था। इसी प्रकार नालंदा विश्वविद्यालय तर्क शास्त्र का, बल्लभी विश्वविद्यालय विधि, चिकित्सा, अर्थशास्त्र का तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्राख्यात शिक्षा केंद्र था। (नालंदा विश्वविद्यालय का महानतम पुस्तकालय इस समय मे था जिसे बख्तियार खिलजी ने जला दिया था।) ये सभी विश्वविद्यालय वस्तुतः गुरुकुल ही थे। इसके अतिरिक्त नदिया, मिथिला, प्रयाग, अयोध्या तथा ओदंतपुरी भी शिक्षा के बड़े केंद्र थे। शिक्षा केंद्र तीन प्रकार के थे। गुरुकुल,परिषद तथा सम्मेलन।

दर्शन शास्त्र मे योग, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पूर्व मीमांषा तथा उत्तर मीमांशा जैसे विकास विश्व मे प्रसिद्ध हुये थे। गुप्त काल मे ब्राम्हणों को जो भूमि दान दी जाती थी उसे अग्रहार कहते थे। यह भूमि गुरुकुल थे तथा शिक्षा के प्रमुख केंद्र बने। हर्षचरित मे गुरुकुल का उल्लेख मिलता है। अलबरुनी के विवरण से ज्ञात होता है कि पूर्व मध्य युग मे शिक्षा ले लिए कई गुरुकुलों की स्थापना की गई थी।

(भाटिया, एम, प्राचीन भारत में शिक्षा प्रलाणी, पेज 2–15)

बौद्धों व जैनों ने लगभग इसी परंपरा को आगे बढ़ाया उन्होने गुरुकुल को संघ कहा, मठ कहा। वेद की जगह पिटक का अध्ययन किया गया। गुरु को बौद्द धर्म मे भिक्षु कहा गया। वैदिक शिक्षा में मोक्ष व चरित्र शीर्ष लक्ष्य था। बौद्ध शिक्षा मे चरित्र की शुद्धता ही मुख्य लक्ष्य था। विधियों का कुछ विकास अवश्य हुआ स्त्री शिक्षा का भी विकास हुआ परंतु मूल आत्मा वही थी। भारत मे मुस्लिम राज्य की स्थापना के साथ ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार हुआ, मकतब तथा मदरसा की स्थापना होने लगी। मकतब प्राथमिक शिक्षा के केंद्र थे, जबकि मदरसा उच्च शिक्षा के इन दोनों मे प्रधानता से धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी, परन्तु मुस्लिम कालीन शिक्षा मे पुस्तकालयों का विकास शिक्षा के लिए एक बड़ी पूंजी था। अध्यापन फारसी भाषा मे होता था जबकि अरबी अनिवार्य विषय था। केवल शहजादा राजव्यवस्था, सैनिक संगठन, युद्ध संचालन, साहित्य, इतिहास, व्याकरण तथा कानून आदि का ज्ञान अर्जित करते थे। दंड शिक्षा का विशेष अंग था। दिल्ली, आगरा, बीदर, जौनपुर, मालवा मुस्लिम शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे।

मुस्लिम शासको के संरक्षण के अभाव मे संस्कृत, नाटक, संगीत, व्याकरण तथा भारतीय साहित्य की शिक्षा चुपचाप चलती रही। सूफी दर्शन व उसकी शिक्षा जो दरगाहों मे दी जाती थी जहां पीर व मुरीद थे। जो शिष्य व गुरु के सम्बन्धों को दर्शाती है।

1781 मे कलकत्ते मे कलकत्ता मदरसा" की स्थापना, 1792 मे जोनाथन डंकन द्वारा "संस्कृत विद्यालय" की स्थापना, 1813 मे आज्ञापत्र के अनुसार शिक्षा मे धन व्यय करने का विधान अँग्रेजी शिक्षा के बढ़ते कदम की निशानी थी। 1830 मे लार्ड मैकाले के तर्को ने अँग्रेजी शिक्षा को भारतीय समाज मे प्रविष्ट कराया। 1854 के वुड्स डिस्पेच मे अँग्रेजी के साथ संस्कृत, अरबी–फारसी का अध्ययन आवश्यक बताया गया।

1857 मे कलकता, बंबई तथा मद्रास मे विश्वविद्यालय बनाए गए। 1882 मे हंटर आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के लिए उचित सुझाव दिये। परंतु इसे नगर पालिका व ग्राम पालिका के भरोसे छोड़ा दिया गया। अतः शिक्षा का स्तर गिरता गया। तब भारतीयों ने इसमे सुधार का प्रयास किया। 1870 मे बाल गंगाधर तिलक ने पूना मे फर्ग्युसन कालेज, 1886 मे आर्य समाज द्वारा लाहौर मे दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज तथा 1898 मे काशी मे श्रीमती एनीबेशेंट द्वारा सेंट्रल हिन्दू कालेज स्थापित किए गए। 1894 मे कोल्हापूर रियासत मे राजा छत्रपति शाहू जी महाराज ने दलितों के लिए विद्यालय खोले। 1904 मे लार्ड कर्जन ने विश्वविद्यालय कमीशन का प्रस्ताव पारित किया। इसके अब न केवल विश्वविद्यालय बल्कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की उन्नति हुई। 1916 मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा मैसूर विश्वविद्यालय, 1918 मे ओसमानिया विश्वविद्यालय, 1920 मे अलीगढ़ मे मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1921 मे ढाका व लखनऊ विश्वविद्यालय, 1922 मे दिल्ली, 1923 मे नागपुर, 1927 मे आंध्र प्रदेश मे तथा 1926 मे अन्नामलाई विश्वविद्यालय स्थापित हुये।

1938 मे बुनियादी शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध हुई। सात से ग्यारह वर्ष के बालक बालिकाओं की शिक्षा अनिवार्य हो। शिक्षा मातृभाषा में हो, हिन्दुस्तानी पढ़ाई जाये, चरखा करघा कृषि लकड़ी का काम शिक्षा का केंद हो जिसकी बुनियाद पर साहित्य, भूगोल, इतिहास की पढ़ाई हो, इस का नाम "नई तालीम" रखा गया। फिर सार्जेंट शिक्षा (1945) का निर्माण हुआ जिसमें शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। डिग्री पाठ्यक्रम तीन वर्ष का हो। 6 से 14 वर्ष की अवस्था के बालक बालिकाओ की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

(1-Jha, D.M., "Higher Education in Ancient In 2.Altekar, A.S., Education in Ancient India, (5th edition), 1957, Varanasi% Nand Kishore and Bros.)dia". In Raza, M. (Ed.), Higher Education in India% Retrospect andProspect, New Del.

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा क्षेत्र मे कई समस्याएँ थी। सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय की शैक्षिक प्रलाणी मे सुधार, महिलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का विकास करना, शिक्षा और शैक्षिक प्रशासन की संरचना का पुनर्गठन करना। इसके लिए केंद्र सरकार के स्तर पर एक स्वतंत्र मंत्रालय बनाया गया। राज्य स्तर पर शिक्षा मुख्य रूप से राज्य की जिम्मेदारी को सौपी गई। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मानकों और समन्वय की समस्या जिम्मेदारी है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पर। अखिल भारतीय परिषदों के माध्यम से प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के संबंध में समन्वय किया जाना तय किया गया। केंद्र सरकार को दिल्ली, अलीगढ़ के केंद्रीय विश्वविद्यालयों का प्रबंधन करना था। सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन ने सामान्य शिक्षा नीति का निर्माण किया। बोर्ड में प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय और सामाजिक शिक्षा के लिए अलग–अलग चार स्थायी समितियाँ गठित की गईं। शिक्षा निदेशक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को नियंत्रित करता है। निरीक्षणालय की सहायता से राज्यों में, जो स्कूलों की देखरेख के लिए सीधे जिम्मेदार है। भारत में विश्वविद्यालय विशुद्ध रूप से स्वायत्त निकाय हैं, जहां माध्यमिक

संस्थान आंशिक रूप से राज्य सरकार के अधीन हैं। आंशिक रूप से स्थानीय निकायों के तहत और बड़े पैमाने पर निजी नियंत्रण में है, लेकिन शिक्षा के राज्य विभाग से मान्यता प्राप्त है तथा सहायता प्राप्त हैं। अधिकांश शिक्षण संस्थानों को अनुदान सहायता के आधार पर प्रबंधित किया जाता है।

भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मुख्यरुप से प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा शामिल है। प्रारंभिक शिक्षा में आठ साल की, माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा में से प्रत्येक में दो साल की शिक्षा होती है। उच्च शिक्षा भारत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा या 12वीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद प्रारम्भ होती है। स्ट्रीम के अनुसार भारत में स्नातक पूरा करने में तीन से पांच साल लग सकते हैं।

आमतौर पर स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम दो से तीन साल की अवधि तक के होते हैं। पोस्ट ग्रेजुएशन पूरा करने के बाद विभिन्न शैक्षणिक में शोध किया जा सकता है।

भारत में काफी अच्छे शिक्षण संस्थान हैं जो दुनिया के शैक्षिक संस्थानों से बेहतरीन प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं यथा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM), भारतीय विज्ञान संस्थान, नेशनल लॉ स्कूल, तथा जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय।

राधाकृष्ण आयोग (1948–49) ने विश्वविद्यालय शिक्षा मे सुधार हेतु कई सुझाव दिये यथा शिक्षा हेतु हर व्यक्ति की जन्मजात क्षमता को जाग्रत कर उसे प्रशिक्षित करना। अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ व्यक्तिगत, व्यावहारिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना। स्नातकोत्तर शिक्षा मे प्रशिक्षण व अनुसंधान पर विशेष बल देना। कृषि विश्वविद्यालय होना चाहिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों मे उच्च शिक्षा का विकास करना चाइए। उच्च शिक्षा मे भी शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होना चाहिए। परीक्षा प्रणाली मे शैक्षिक परीक्षण और मूल्यांकन के वैज्ञानिक तरीकों का अपनाने की सिफारिश की गई, जबकि वर्ष 1952–53 मे मुदालियार आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की उन्नति के लिए अनेक सुझाव दिये। माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य आदर्श नागरिकों का उत्पादन करना है। अतः शिक्षा के उद्देश्य हो धनार्जन की क्षमता विकसित करना, छात्रों के चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व का विकास, मानवीय गुणों का विकास करना और नेतृत्व की गुणवत्ता विकसित करना माध्यमिक शिक्षा 11 से 17 वर्ष की आयु के बच्चों और इन सात वर्षों के लिए होनी चाहिए तथा दो भागों में विभाजित होनी चाहिए–जूनियर हाई स्कूल तीन साल का तथा हाई स्कूल चार वर्ष का हो। "कृषि" ग्रामीण स्कूलों के लिए अनिवार्य विषय तथा लड़कियों के लिए गृह विज्ञान अनिवार्य किया जाना चाहिए। मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में विविधता होनी चाहिए। व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी होना चाहिए। बाह्य परीक्षाओं की संख्या को कम करना चाहिए और वस्तुनिष्ठ परीक्षण शुरू करने और प्रश्नों के प्रकार को बदलकर न्यूनतम करना चाहिए। प्रत्येक राज्य में शिक्षा निदेशक होना चाहिए। 1964–66 के शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालयों के लिए विशेष कार्य निर्धारित किए यथा नए ज्ञान की तलाश और साधना, सत्य की खोज में, नई जरुरतों और खोजों के प्रकाश में, पुराने ज्ञान और विश्वासों की व्याख्या करना। व्यक्तियों को उनके विकास में मदद करके, जीवन के सभी क्षेत्रों में सही प्रकार का नेतृत्व प्रदान करना। समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने, सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर को कम करने के लिए प्रयास करना। शिक्षकों व छात्रों में, और समाज में उनके माध्यम से आम तौर पर व्यवहार और मूल्यों को बढ़ावा देना। 20 अप्रैल, 1986 की नई शिक्षा नीति की सिफारिशे थी कि शिक्षा का व्यावसायीकरण होना चाहिए। विशेष रूप से शिक्षा के माध्यमिक चरण में पाठ्यक्रम नौकरी–उन्मुख होना चाहिए। विभिन्न वैज्ञानिक और

तकनीकी विकास के बारे में लोगों को बताना चाहिए। निरक्षरता मिटाने के लिए सरकारी–गैर–सरकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करना। प्रौढ़ शिक्षा, औपचारिक शिक्षा और खुले विद्यालयों की आवश्यकता पर बल देना।

1986 के बाद भी शिक्षा मे 1992 मे तथा 2005 में NCF 2005 जैसे कई सुधार भी हुये वरन शिक्षा के मूल ढांचा अब तक बन चुका था।

(1) Government of India, Report of the University Education Commission (1948-49), 1949, New Delhi: Ministry ofEducation.

(2) Government of India, Report of the Education Commission (1964-68): Education and National Development, 1966,New Delhi:Ministry of Education.

(3) Government of India, National Knowledge Commission: Compilation of Recommendations on Education,2006,07 &08, New Delhi: Ministry of Education.)

वर्तमान काल मे जिस शिक्षा का प्रचलन हो रहा है उसमे कई गुण हैं तथा कई दोष रहे हैं जिसमे शिक्षा का प्रचलन हो रहा है उसमे कई गुण हैं तथा कई दोष रहे हैं जिसमे अब सार्वत्रिक शिक्षा अर्थात सभी के लिए शिक्षा न्यूनतम कक्षा 8 तक की शिक्षा सभी भारतीय नागरिकों को प्राप्त हो जाये इसके लिए त्ज्म्:2009 के अंतर्गत व्यवस्था की जा चुकी है।

आज शिक्षा विद्यार्थी केन्द्रित है। शिक्षा के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाएँ जैसे वाद–विवाद, भाषण, प्रश्नोत्तरी, नाटिका, काव्यपाठ आदि क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। शिक्षा मे पर्यटन व पर्वतारोहण आदि को भी सम्मिलित किया गया है। गणित, विज्ञान तथा कंप्यूटर के ओलंपियाड आयोजित कर विद्या र्थियों की प्रतिभा के विकास के प्रयास को अभिप्रेरित किया जा रहा है। खेलकूद को दैनिक समयसारणी मे स्थान दिया गया है।

प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखा गया है। शिक्षा दूरस्थ डिसटेंट एजुकेशन से भी ली जा सकती है। पाठ्यक्रम को लचीला बनाया जा रहा है। शिक्षा ऑनलाइन माध्यम से भी प्राप्त की जा सकती है। शिक्षा मे मनोविज्ञान के अंतर्गत अभिप्रेरणा आदि संवेगो के द्वारा अध्यापन को प्रभावी बनया जा रहा है। शिक्षा मे तकनीकी प्रशिक्षण व व्यावसायिक प्रशिक्षण को विशेष स्थान दिया जा रहा है। शिक्षा मे चिकित्सा व अभियंत्रण के अतिरिक्त उड्डययन, खनन, बायोटेक्नोलाजी जैसे कई पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किए गए हैं। परीक्षा की एक व्यवस्थित प्रलाणी है परंतु आज भी कई दूर्गुण वर्तमान शिक्षा पद्धति मे सम्मिलित हैं– अध्यापन प्रणाली लेक्चर अर्थात भाषण ही है। विद्यार्थी कई बार अक्रिय श्रोता बने रह जाते हैं। गुरु शिक्षक अनुपात अधिक होने के कारण व्यक्तिगत अंतर के तहत प्रत्येक शिक्षार्थी पर ध्यान नही दिया जा पा रहा है । मूल्य या चरित्र का निर्माण आज शिक्षा का मूल उद्देश्य नही है। अक्सर शिक्षार्थी अपने गुरु का उपहास उड़ाते। कई बार अपने गुरु को मारते पीटते भी दिख जाते है। आज की शिक्षा मे श्रम का महत्व शून्यवत कर दिया गया है।

आज की शिक्षा मे व्यावहारिक शिक्षा को स्थान नही दिया गया है, शिक्षार्थी विद्यालय की चारदीवारी मे ज्ञानार्जन करते हैं। अतः वे समाज से अपरिचित है तथा समाज मे सफल नही हो पाते हैं। आज की शिक्षा रोजगारपरक नही है। शिक्षा प्राप्ति के बाद भी शिक्षार्थी इतना कौशल विकास अर्जित नही कर पाते कि उन्हें रोजगार प्राप्त हो सके। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य डिग्री प्राप्ति है या अच्छे अंक की प्राप्ति है न कि कौशल का

विकास। पाठ्यक्रम आज भी कुछ स्ट्रीम का गुलाम हो, पर्याप्त लचीला नही हों पाया है। चूंकि विद्यालय गुरुकुल नही है तथा समाज मे ही है, अतः विद्यार्थी समाज की चमक दमक मे खो जाते है और विद्यार्जन का उद्देश्य भूल कर अपने मार्ग से भटक जाते हैं।

शिक्षा समय सारणी से बंधी है। कई बार विद्या र्थी इस समय सीमा मे व्यस्त होने की वजह से विद्यार्जन नही कर पाते हैं। विद्यार्थी अपनी संस्कृति को छोडकर कुसंस्कृत हो रहे हैं।

आज शिक्षक व शिष्य उपभोक्तावाद के शिकार हो चुके हैं। शिक्षा मे आत्मीयता का भाव समाप्त हो गया है। गुरु शिष्य संबंध अब नष्टप्रायः है। अब स्वयं की रक्षा अर्थात आत्मरक्षा या शस्त्र शिक्षा हमारी शिक्षा का अंग नही है। संस्कृत तो छोड़िए हिन्दी भी नही हम अपनी भाषा–संस्कृति सब खो चुके हैं क्योकि अधिकांश विद्यालयों मे प्रमुखतः सभी विषय अँग्रेजी मे ही पढ़ाए जाते हैं। योग व सामान्य चिकित्सा भी अब शिक्षा के अंग नही है। रवींद्र नाथ टैगोर ने प्रकृति की गोद मे शिक्षा का समर्थन किया था क्या हम ऐसा कर पा रहे हैं या नही? क्या हम बच्चो मे नए विचारों का सृजन करने का प्रशिक्षण देते है? क्या हम उसमे समस्या को स्वयं सुलझाने की क्षमता विकसित होने देते हैं या नही?

क्या हम उसकी स्वतंत्र चिंतन की प्रवृत्ति का दमन नही कर रहे है बल्कि हम तो उसे नोट्स रटने तथा तुरंत उत्तर याद करने के लिए एक आंधी दौड़ मे सम्मिलित करने मे तुले हैं। क्या हम उनकी स्वतंत्र जिज्ञासा का दमन नही कर रहे हैं या नही? क्या हम उसमे एक वैज्ञानिक सोच उत्पन्न कर पा रहे हैं या इस को समाप्त करने मे नही तुले हैं? क्या हम विद्यार्थी मे एक मानवीय पक्ष उभारने का कभी प्रयास करते हैं या नही?

क्या हम उसमे अपने माता पिता, परिवार का उत्तरदायित्व संभालने की भावना तथा देश के लिए मर मिटने की भावना को विकसित कराते हैं या नही? क्या शिक्षा मे भौतिकता हावी नही है?

क्या शिक्षा को हमने केवल सूचना प्राप्ति का पर्याय नही बनाया है? क्या हम विद्यार्थियों मे वसुधैव कुटुंबकम की भावना विकसित कर समस्त विश्व के कल्याण की भावना विकसित कर पा रहे हैं? क्या हम विद्यार्थियों मे सह–अस्तित्व व धार्मिक साहिष्णूता की भावना विकसित का पा रहे हैं? क्या हम वैज्ञानिक शोध आदि के लिए सुविधा व दिशा दे पा रहे हैं? क्या विद्यार्थियों मे अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न कर पा रहे हैं? क्या हम शिक्षा के उद्देश्य पूरे कर पा रहे हैं? क्या परीक्षा के तय किए मानक शिक्षा की गुणवत्ता तथा शिक्षार्थी के द्वारा अर्जित क्षमता का मूल्यांकन कर पाने मे सक्षम है?

इन सभी प्रश्नोत्तरों व दोषों पर एक दृष्टि डालने पर यह प्रतीत हो सकता है कि केवल आदर्श स्थापित करने के लिए ये दोष दर्शाये गए हैं। परन्तु ऐसा नही है। इनमे से बहुत से उद्देश्य एन सी एफ–2005 मे शिक्षा के उद्देश्य के रूप में चिन्हित किए गए हैं। संविधान मे धर्मनिरपेक्षता, प्रजातांत्रिक मूल्य, लोक कल्याण आदि मूल्यो को सन्निहित किया गया है। कुछ नई शिक्षा नीति 1986 तथा 1992, प्रोग्राम आफ एक्शन (POA), लर्निंग विद आउट बर्डिन (Learning without Burden) मे भी उद्देश्यों के रूप मे सम्मिलित किए गए थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधार हेतु सरकार निरन्तर नयी नीतियाँ, पाठयक्रम तथा एक्ट पारित कर व लागू कर शिक्षा मे सुधार के प्रयास कर रही है। शिक्षक अब वेतनभोगी है उसे न केवल अध्यापन की विधियों के साथ पाठ्यक्रम पूरा करने, शत–प्रतिशत परिणाम देने का दबाव निरंतर रहता है।

शिक्षार्थी केवल शिक्षार्थी है उसे जो पाठ्यक्रम मिलता है तथा जिस प्रकार की व्यवस्था शिक्षा प्रलाणी प्राप्त

होती है वह उसका अंग बन जाता है।

वस्तुतः इसका कारण हम सब मे है, क्योंकि आज शिक्षा की सफलता एक IAS, IPS, चिकित्सक व अभियंता के सांख्यिकी आकड़े से निर्धारित करते हैं। अक्सर हम पूंछते है कि इस विद्या लय से कितने IAS, IPS, चिकित्सक व अभियंता बने है। परन्तु ये नही पूंछते कि कितने शिक्षार्थी अच्छे नागरिक बने, कितने अपने जीवन मे सफल हुये? विज्ञान स्ट्रीम सब लेना चाहते है। मानविकी स्ट्रीम कोई नही। क्यों? वे चिकित्सक या अभियंता बनाना चाहते हैं। विवाह के लिए कन्या ऐसे अधिकतम तथा ऊपरी आय वाले वर को चुनती है। वह अच्छे सुचरित्र व सुसंस्कारित पति नही ढूढ़ती है। विद्यार्थी वह पद चुनता है जिसमे अधिक आय हो। न कि वह पद जो उसके व्यक्तित्व व क्षमता के अनुसार हो। अभिभावक वह शिक्षा प्रदान करना चाहता है जो केरियर बनाए। वह इस विषय मे बवनदेमसवत या परामर्शदाता या केरियर परामर्शदाता का परामर्श या किसी शिक्षक की राय भी नही लेना चाहता है। समाज मे हम उसे सफल मानते है जो अधिक वैभवशाली जीवन जी रहा हो।

अधिक भौतिक संपदा अर्जित कर चुका हो। फिर भी हम नए प्रयास कर रहे हैं। CBSE ने CCT & Critical Creative Thinking जैसे नई तकनीक, नए शिक्षण प्रविधि का प्रयोग की अनुशंषा की है जिसे केंद्रीय विद्यालय जैसे उत्कृष्ट संस्थानो ने अपनाया है। इसके अंतर्गत अध्यापन मे इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न की जाती है कि विद्यार्थी पेश की गई घटना, चित्र, कहानी को अपनी दृष्टि से देखता है तथा स्वयं के विचारो का सृजन करता है। पेश की गई समस्या का हल स्वयं खोजता है। Brain Storming तथा Symposium की नयी तकनीक का प्रयोग कर विद्यार्थी मे विश्लेषण करने की क्षमता, सोचने की क्षमता, समस्या का हल निकालने की क्षमता, परिस्थिति का उचित आकलन करने के क्षमता का विकास करने के लिए किया जा रहा है। "सामाजिक विज्ञान प्रदर्शनी : एक भारत श्रेष्ठ भारत" के अंतर्गत ललित कलाए यथा संगीत व कला, प्रश्नोत्तरी, वाद विवाद प्रतियोगिता जैसे खुली प्रतियोगिताये तथा हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी भाषा के काव्य पाठ, वाद विवाद आदि की राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता आयोजित की जाती हैं ताकि शिक्षार्थी मे ज्ञान अर्जित करने के साथ उसका विश्लेषण करने की क्षमता आए। उनमे अपने देश की संस्कृति का ज्ञान संगीत, नाटक तथा प्रतिदर्श के माध्यम से हो सके। "आनुभाविक ज्ञान Experiential Learning की नई विद्या प्रारम्भ कर शिक्षार्थी के पूर्व ज्ञान को मान्यता देकर उसे "करके सीखने" की प्रेरणा दी जाती है। खेलो के लिए भी विद्यालय स्तर, क्षेत्रीय स्तर व राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगितायें आयोजित कर विद्यार्थी को अपनी क्षमता निखारने का मौका दिया जाता है। "स्वस्थ बच्चे स्वस्थ भारत" कार्यक्रम के अंतर्गत भारत के सभी विद्यार्थियों की खेलो मे क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है उनका सही शारीरिक विकास को संवर्धन दिया जा रहा है। "भाषा संगम" कार्यक्रम के अंतर्गत सम्पूर्ण भारत की भाषाओं का उच्चारण करवाकर विद्यार्थियों मे पूर भारत का नागरिक बनाया जा रहा है। उनको भाषा ज्ञान का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। हिन्दी राजभाषा के प्रति विद्यार्थियों मे आस्था मे वृद्धि तथा उनके हिन्दी ज्ञान का संवर्धन करने हेतु "हिन्दी राजभाषा पखवाड़ा" (14 दिन) तथा संस्कृत भाषा के संवर्धन हेतु (संस्कृत सप्ताह मनाया जाता है। जीवन मे स्वच्छता की महत्ता को समझाने हेतु मानया जाने वाला "स्वच्छ्ता पखवाड़ा" विद्यार्थियों को श्रम की महत्ता भी समझाते है।

राष्ट्रीय सामाजिक सेवा योजना, स्काउट एव गाइड कैंप हमारे विद्यार्थियो को समाज सेवा, राष्ट्र–भक्ति, वसुधैव कुटुंबकम की भावना विकसित कराते है। यही विद्यार्थी आपदा के वक्त आपदा पीड़ितों की रक्षा करते हैं।

NCC हमारे विद्यार्थियों मे सेना मे चुने जाने के लिए एक द्वार खोलता है। राष्ट्रीय एकता पखवाड़ा व यूवा संसद, विद्या र्थीयों मे सविधान के प्रति न केवल आस्था मे वृद्धि करता है, वरन उनमे राष्ट्रीय चरित्र का विकास करता है।

स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार, विद्यालय तथा शिक्षक निरंतर प्रयासरत हैं। आवश्यकता है समाज को अपने शिक्षा के प्रति अपने उद्देश्य पुनः निर्धारित करने की। आवश्यकता है पुनः समाज जाने कि विद्यालय विद्यार्थी व शिक्षक तथा संसद मे बैठे सांसद आदि समाज के अंग हैं। शिक्षा वही उत्पादित करेगी जो समाज की मान्यता होगी शिक्षा उससे अछूती नही रहेगी। उदाहरणतया कोविड–19 की परिस्थितियों मे समाज मे महामारी के वचाव के उपाय तौर पर ऑन लाइन शिक्षा का अपनाया जाना।

निष्कर्ष यह है कि सरकार, विद्या लय, CBSE, UGC जैसे नियामक संस्थान निरंतर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए प्रयासरत हैं। कोई भी शिक्षा व्यवस्था आदर्श शिक्षा व्यवस्था नहीं होती है हमे निरंतर प्रयास करना होगा कि हम उन दोषो को न्यून करने करने का तथा विद्यार्थियों का अधिकतम विकास करने का। यही प्रयास हमे वैश्विक शक्ति बनाने मे सफलीभूत हुये हैं। आगे भी हम विश्व की सभी चुनौतियों का समाना करते हुए भारतीय शिक्षा पद्धति को विश्व की महानतम शिक्षा व्यवस्था के रूप मे स्थापित कर देंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. भाटिया, एम, प्राचीन भारत में शिक्षा प्रलाणी, पेज 2–15
2. हमारी शिक्षा पद्धति कैसी हो? अखंड ज्योति, फरवरी 1957, पृष्ठ 12–34
3. प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति एवं आधुनिक भारतीय समाज मे इसकी प्रासंगिकता, पृष्ठ 218–230
4. संग्रहित प्रति https//en.wikipedia.org/wiki/Sayajirao_Gaekwad_III, अभिगमन तिथि 8 अगस्त 2020)
5. गुरुकुल, अप्रेल – जुलाई, 1940–41, अंक 10, (12 June 1940), P-1
6. "अब जेएनयू और बीएचयू समेत 60 संस्थान खुद लागू कर सकेगे नियम, यूजीसी ने दी स्वायत्ता"
7. https Ujjwal, Madalsa, 2008, "Swami Dayanand Saraswati Life and Ideas", Book Treasure Publications, Jodhpur, PP.96-97)
8. https://theculturetrip.com/asia/india/articles/what-did-the-ancient-indian-education-system-look-like)
9. www.patrika. Jha, D.M., "Higher Education in Ancient India". In Raza, M. (Ed.), Higher Education in India : Retrospect and Prospect, New Delhi: AIU, 1991, Pp 1-5.
10. Com/miscellenous-india Raza, M. Ed., Higher Education in India: Retrospect and Prospect, 1991, New Delhi.
11. Association of IndianUniversities. /jnu-bhu-amu-with-60-institutions-g Nurullah, Syed and Naik, J.P., History of Education in India during the British Period, 1951, Bombay, Macmillan)
12. Raded- Government of India, Report of the University Education Commission (1948-49),

1949, New Delhi : Ministry of Education.
13. Mehta, Arun C. (1996):'Reliability of Educational Data in the Context of NCERT Survey'.
14. Journal of Educational Planning and Administration, NIEPA, July 1996, Volume X, No. 1, New Delhi.)
15. UGC Annual Report 2005-06, New Delhi: University Grants Commission and Selected
16. Educational Statistics, New Delhi: Ministry of Human Resources Development.
17. Government of India, National Knowledge Commission: Compilation of Recommendations on Education 2006,07 &08, New Delhi: Ministry of Education Government of India, National Knowledge Commission: Compilation of Recommendations on Education,2006,07 & 08, New Delhi: Ministry of Education.
18. Jha, D.M., "Higher Education in Ancient India". In Raza, M. (Ed.), Higher Education in India: Retrospect andProspect, New Delhi: AIU, 1991, Pp 1-5.
19. Ujjwal,Madalsa, 2008, "Swami Dayanand Saraswati Life and Ideas", Book Treasure Publications, Jodhpur, PP.96-97)
20. https://www.teachershelpinghand.com/2020/05/gurukul-modern-education-school-changing-education-system-changing-in-education-system-changing-the-education-system.html)
21 (https://www.teachershelpinghand.com/ 2020/05/gurukul-modern -education-school changing-education-system-changing-in-education-system.html, Accesed on 8/08/2020)
22. https://www.gnu.org/eduction/edu-system-india-en.html,accessed on 01/082020.

Email: thimoli93@gmail.com
Mob. 9351428138

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 45-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान संदर्भ में स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दृष्टिकोण की सार्थकता

ममता सुशील, शोधार्थी, (शिक्षा शास्त्र)
डॉ. एकता भारद्वाज, शोध निर्देशिका,
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय गजरौला, उ0 प्र0

वर्तमान संदर्भ में 'स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दृष्टिकोण की सार्थकता' एक महत्वपूर्ण और विचारणीय विषय है। स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन न केवल भारतीय समाज के लिए अपितु वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यंत सार्थक है। उनका शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण वर्तमान में कई मायनों में अत्यधिक उपयुक्त और प्रेरणादायक है। स्वामी विवेकानंद जी को एक महान शिक्षाशास्त्री के रूप में माना जाता है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहि, जो बालकों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करते हुए उन्हें संघर्षमय जीवन की बाधाओं का सफलतापूर्वक समाधान करना सिखा सके। उनके अनुसार वह शिक्षा पूर्णतः बेकार है, जो छात्रों की सजृन व चिन्तन क्षमता का विकास नहीं करती, मस्तिष्क की शक्ति नहीं बढ़ाती व चरित्र का निर्माण नहीं करती।

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दृष्टिकोण की सार्थकता :

आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी व्यक्ति तैयार करना है। आज के प्रतियोगिता प्रधान समाज में जहां आत्मविश्वास की आवश्यकता अधिक महसूस हो रही है, उनका यह विचार विद्यार्थियों को आत्म–संवर्धन के लिए प्रेरित करता है।

सकारात्मक दृष्टिकोण और संघर्ष का महत्व के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद का यह मानना था कि जीवन में संघर्ष अनिवार्य है और इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करना चाहिए। आज के युवा समाज में जहाँ मानसिक थकावट और अवसाद की समस्या बढ़ रही है, उनका यह दृष्टिकोण न केवल साहस देना है अपितु जीवन के संघर्षों का सामना करने की क्षमता भी विकसित करना है।

आध्यात्मिक शिक्षा और जीवन का उद्देश्य के अंतर्गत उनका मानना था कि शिक्षा को केवल भौतिक सफलता तक सीमित नहीं किया जा सकता। शिक्षा का उद्देश्य आत्म–ज्ञान और समाज के प्रति दायित्वों एवं जिम्मेदारी का विकास करना चाहिए। आज की भौतिकवादी और तकनीकी दुनिया में यह विचार महत्वपूर्ण है, क्योंकि आत्मिक संतुलन और उद्देश्यहीनता की भावना बढ़ रही है।

सामाजिक जागरूकता और सेवा के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद ने यह भी कहा था कि शिक्षा का असली उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि समाज की सेवा करना है। वर्तमान समय में, जब सामाजिक

असमानताएँ और संघर्ष बढ़ रहे हैं, उनका यह दृष्टिकोण हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है।

शारीरिक और मानसिक संतुलन में स्वामी विवेकानंद ने शारीरिक शिक्षा के साथ–साथ मानसिक और आत्मिक विकास पर भी जोर दिया। आज के समय में, जब मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ बढ़ रही हैं, उनके विचार इस बात को रेखांकित करते हैं कि केवल शारीरिक विकास ही नहीं, बल्कि मानसिक और मानसिक संतुलन भी उतना ही आवश्यक है।

स्वामी जी तत्कालीन प्रचलित शिक्षा की आलोचना करते हुए कहते हैं कि आप उस व्यक्ति को शिक्षित मानते है, जिसने कुछ परीक्षाएँ पास कर ली हो तथा जो अच्छे भाषण दे सकता हो, पर वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन संघर्ष के लिए तैयार नहीं करती, जो चरित्र का निर्माण नहीं करती, जो समाज सेवा की भावना को विकसित नहीं करती तथा शेर जैसा साहस उत्पन्न नहीं करती ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है? वर्तमान समय में विज्ञान की प्रगति, व्यापक व जटिल समाजों के विकसित होने के कारण जीवन की परिस्थितियों, समस्याओं एवं आवश्यकताओं में इतना परिवर्तन आया कि हमारी शिक्षा व शिक्षण प्रणाली दर्शन से दूर हो गई और उसे शिक्षा को दर्शन के साथ सामंजस्य स्थापित करना मुश्किल हो गया। यह सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए, किस प्रकार शिक्षा को दर्शन के समीप व दर्शन को जीवन के समीप रखा जाए? इस समस्या का समाधान करने के लिए आधुनिक समय में दर्शन एवं शिक्षा का अद्वितीय समन्वय स्थापित कर एक नवीन शास्त्र के विज्ञान शिक्षा दर्शन को जन्म दिया गया। शिक्षा और दर्शन दोनों शब्द अपना अलग–अलग अर्थ एवं स्वरूप रखते हुए भी एक दूसरे में समाहित हैं।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त :

1. स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि शिक्षा ऐसी हो, जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास हो सके।
2. स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार शिक्षा ऐसी हो, जिससे बालक के चरित्र का निर्माण हो, मन का विकास हो, बुद्धि विकसित हो तथा बालक आत्मनिर्भर बने।
3. स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि बालक एवं बालिकाओं दोनों को समान शिक्षा देनी चाहिए।
4. स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार धार्मिक शिक्षा पुस्तकों द्वारा न देकर आचरण व संस्कारो द्वारा देनी चाहिए।
5. शिक्षक एवं शिष्य के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए तथा शिक्षक को शिष्य के साथ स्नेह एंव सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
6. सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिए।
7. देश की आर्थिक प्रगति के लिए तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
8. मानवीय एवं राष्ट्रीय शिक्षा परिवार से ही शुरू करनी चाहिए।
9. पाठ्यक्रम में लौकिक एंव पारलौकिक दोनों प्रकार, के विषयों को स्थान देना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, शिक्षा का अर्थ :

विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ मनुष्य में छिपी हुई सभी शक्तियों का पूर्ण विकास करना है, न कि केवल सूचनाओं का संग्रह करना। उनके अनुसारए ''शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।''

उनके अनुसार, हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलम्बी बनें। स्वामी जी व्यवहारिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। शिक्षा का अर्थ केवल विद्यालय में पढ़ाई तक सीमित नहीं है। यह एक व्यापक और समग्र प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास करना है। कुल मिलाकर, शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि उसे सही दिशा में उपयोग करना है ताकि समाज और व्यक्ति दोनों का समग्र विकास हो सके।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :

विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य वेदान्त दर्शन विशेष रूप से अद्वैत दर्शन पर आधारित है। वेदान्त दर्शन का सम्पूर्ण उद्देश्य निरन्तर संघर्ष द्वारा परिपूर्ण बनना, दिव्य बनना, भगवान तक पहुंचना और भगवान को देखना है। शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का मुख्य ध्येय छात्रों में ''उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत'' अर्थात ''उठो, जागो और तब न रूको जब तक अपने उद्देश्य की प्राप्ति न कर लो की भावना विकसित करना है।

शारीरिक एवं मानसिक विकास का उद्देश्य :

शिक्षा का उद्देश्य बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास करना है। शारीरिक उद्देश्य पर बल देते हुए स्वामी जी ने कहा कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा बालक भविष्य में विकसित नागरिक के रूप में राष्ट्रीय विकास व उन्नति में योगदान दे सके। स्वामी जी ने मानसिक उद्देश्य पर बल देते हुए कामना की है कि शिक्षा के द्वारा बालक दूसरों के लिए परजीवी बनने के बजाए आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खडा हो सके।

चारित्रिक तथा नैतिक विकास का उद्देश्य :

स्वामी जी ने यह बात अनुभव की थी कि मनुष्य को शरीर से स्वस्थ और बुद्धि से विकसित होने के साथ–साथ चरित्रवान भी होना चाहिए। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ तथा कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। नैतिकता से इनका तात्पर्य सामाजिक नैतिकता और धार्मिक नैतिकता दोनों से था और चारित्रिक विकास से तात्पर्य ऐसे आत्मबल के विकास से था जो मनुष्य को सत्य मार्ग पर चलने में सहायक हो व उसे असत्य मार्ग पर चलने से रोके। उनका विश्वास था कि नैतिक व चरित्रवान मनुष्यों से ही कोई समाज या राष्ट्र आगे बढ़ सकता है व ऊँचा उठ सकता है।

राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबन्धुत्व का विकास :

स्वामी जी ने अनुभव किया कि परतन्त्रता हीनता को जन्म देती है जो दुःखों का सबसे बड़ा कारण है। जब स्वामी जी अमेरिका से भारत लौटे तो उन्होंने भारत की भूमि पर पैर रखते ही युवकों का आह्वान किया– ''तुम्हारा सबसे पहला कार्य देश को स्वतन्त्र कराना होना चाहिए और इसके लिए जो भी बलिदान करना पड़े, उसके लिए तैयार होना चाहिए।'' उन्होंने ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया जो देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करें, उन्हें संगठित करें व देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत करे।

धार्मिकता का विकास :

स्वामी जी शिक्षा के द्वारा मनुष्य में धार्मिकता को बढ़ावा देना चाहते है तथा मनुष्य को धार्मिक बनाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि से धर्म वह है, जो हमें प्रेम सिखाता है और द्वेष व शोशण से बचाता है, हमें मानव सेवा

के लिए प्रेरित करता है। अतः हमें बालक को प्रारम्भ से ही धर्म की शिक्षा देनी चाहिए। बच्चों को जीवन के अन्तिम उद्देश्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, राज योग की ओर उन्मुख करना चाहिए।

आध्यात्मिक विकास :

स्वामी जी का स्पष्ट मत था कि मनुष्य का भौतिक विकास आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में होना चाहिए। उसका आध्यात्मिक विकास, भौतिक विकास के आधार पर होना चाहिए और ऐसा तभी सम्भव है, जब मनुष्य धार्मिक बने तथा धर्म का पालन करें। उनकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने के लिए तैयार करती है।

समाज सेवा की भावना का विकास :

स्वामी जी ने भारत की जनता की दरिद्रता को स्वय अपनी आँखों से देखा था। वे चाहते थे कि पढ़े–लिखे और सम्पन्न लोग दीन–हीनों की सेवा करें। समाज–सेवा से उनका तात्पर्य दीन–हीनों के उत्थान में सहयोग करने से था। वे आध्यात्मिक दृष्टि से भी समाज सेवा को अत्यधिक महत्व देते थे।

व्यावसायिक विकास :

स्वामी जी ने भारत की दरिद्र जनता को बड़े निकट से देखा था। साथ ही उन्होंने पाश्चात्य देशों के वैभवशाली जीवन को भी देखा था और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि उन देशों ने भौतिक सम्पन्नता, ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी के प्रयोग से प्राप्त की है। अतः उन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्यों को उत्पादन एवं उद्योग कार्यों व अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।

जनसाधारण की शिक्षा :

स्वामी जी ने कहा है कि ''मैं जनसाधारण की अवहेलना करना महापाप समझता हूँ। यह हमारे पतन का मुख्य कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को उपयुक्त शिक्षा, अच्छा भोजन, अच्छी सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तब तक राष्ट्रीय राजनीति बेकार सिद्ध होगी।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार पाठ्यक्रम :

शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्वामी विवेकानन्द्र ने प्राच्य धर्म, दर्शन, भाषा तथा पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, तकनीकी एवं औद्योगिक प्रशिक्षण को स्थान दिया है। उन्होंने यह महसूस किया था कि पाश्चात्य जगत के भौतिक ज्ञान से हम अपना भौतिक विकास कर सकते हैं और देश के आध्यात्मिक ज्ञान से पश्चिमी जगत का कल्याण कर सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण समन्वयवादी, आधुनिक और व्यापक था। स्वामी जी शिक्षा के पाठ्यक्रम में लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषयों को पढ़ाना चाहते थे।.

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षण विधियाँ :

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में स्वामी जी की अपनी कोई देन नहीं है। उन्होंने कुछ परम्परावादी शिक्षण विधियों अनुकरण, व्याख्यान, स्वाध्याय तर्क और योग व कुछ आधुनिक विधियों निर्देशन,परामर्श, प्रयोग का समर्थन किया है। उन्होंने योग विधि को सर्वोत्तम विधि बताया है। वे ध्यान व एकाग्रता को भी महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि इसके द्वारा बच्चे की मानसिक शक्तियों का विकास होता हैं।

शिक्षक :

स्वामी जी कहते हैं कि शिक्षक दार्शनिक, मित्र तथा पथ प्रदर्शक है जो बालक को अपने ढंग से अग्रसर होने के लिए सहायता प्रदान करता है। शिक्षक का एकमात्र कर्तव्य ज्ञान की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षक को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान होना चाहिए। जिससे वह छात्रों को लौकिक एवं परालौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार कर सके।

शिक्षार्थी :

स्वामी जी के अनुसार किसी भी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है ब्रह्मचर्य व्रत का पालन आवश्यक है। शिक्षार्थी को संयमी होना चाहिए ज्ञान पिपासु होना चाहिए, अध्ययन में रुचि रखने वाला व परिश्रमी होना चाहिए। मन, कर्म व वचन से सत्य का पालन करने वाला होना चाहिए।

विद्यालय :

स्वामी जी गुरुकुल शिक्षा का समर्थन करते थे, साथ ही उन्होंने जन शिक्षा के लिए सामान्य विद्यालय एवं विशिष्ट बच्चों के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना पर बल दिया है। उनके अनुसार सभी प्रकार के विद्यालयों का प्राकृतिक वातावरण शुद्ध होना चाहिए। सामाजिक पर्यावरण आदर्शान्मुख तथा आध्यात्मिक विकास के लिए योग–साधना आवश्यक है।

महिला शिक्षा :

स्वामी जी भारतीय नारी की दयनीय दशा देखकर अत्यन्त दुखी थे। वे मानते थे कि कोई भी राष्ट्र स्त्रियों को समाज में उचित स्थान और आदर दिए बिना प्रगति नहीं कर सकता है। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षित किया जाना चाहिए। स्वामी जी स्त्री को आदर्श गृहणी, माता, शिक्षिका एवं समाज सुधारक बनाने पर बल देते थे। वे लड़कियों के लिए अलग विद्यालय की स्थापना व उनमे महिला शिक्षिकाओं की न्युक्ति करने के पक्षधर थे। महिला शिक्षा का अर्थ है महिलाओं को शिक्षा प्रदान करना ताकि वे आत्मनिर्भर, जागरूक और समाज में समान अधिकार प्राप्त कर सकें। यह न केवल एक व्यक्तिगत आवश्यकता है, बल्कि समाज और राष्ट्र के समग्र विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। महिला शिक्षा का उद्देश्य महिलाओं को जीवन की विभिन्न क्षेत्रों में अपनी क्षमता को पहचानने और सशक्त बनाने का अवसर प्रदान करना है।

शिक्षा महिला को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाती है। पढ़ी–लिखी महिलाएं अपने परिवार और समाज के लिए बेहतर आय के अवसर उत्पन्न कर सकती हैं। यह उनकी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने में मदद करता है और उन्हें स्वयं के फैसले लेने की स्वतंत्रता देता है। शिक्षित महिलाएँ स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होती हैं और वे अपने परिवार को भी बेहतर स्वास्थ्य देखभाल प्रदान कर सकती हैं। साथ ही, महिला शिक्षा के माध्यम से जन्म दर, बाल मृत्यु दर, और कुपोषण जैसी समस्याओं में कमी लाई जा सकती है। महिला शिक्षा समाज में लिंग आधारित भेदभाव को कम करने में मदद करती है। जब महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं, तो वे समान अधिकारों और अवसरों के लिए संघर्ष कर सकती हैं, जिससे समाज में समानता बढ़ती है। जब महिलाएं शिक्षा प्राप्त करती हैं, तो वे सामाजिक मुद्दों, कानून, राजनीति, और समाज में हो रहे बदलावों के प्रति अधिक जागरूक होती हैं। वे समाज में महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए तैयार होती हैं।

अनुशासन :

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अनुशासन का अर्थ है आत्मा से प्रेरित होकर कार्य करना। वे शिक्षक और छात्र दोनों को आत्मानुशासन का उपदेश देते थे। शिक्षकों को छात्रों के समक्ष उच्च आदर्श प्रस्तुत करने के लिए बल देते थे। जिससे बच्चे भी उनका अनुकरण करके आत्मानुशासन की ओर बढ सकें। अनुशासन का अर्थ है किसी निर्धारित नियम, आदर्श या आदेश का पालन करना। यह जीवन में नियमितता, व्यवस्था और आत्म–नियंत्रण को बढ़ावा देता है, जो किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। अनुशासन न केवल बाहरी नियमों का पालन करने से संबंधित है, बल्कि यह आंतरिक आत्म–नियंत्रण और आत्म–नियमन का भी भाग है।

निष्कर्ष :

स्वामी जी के शैक्षिक विचार भारतीय धर्म एवं दर्शन पर आधारित है जो भारतीय जन–जीवन के अनुकूल है। आधुनिक समय में शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य एवं प्राच्य के समन्वय में उनके चिन्तन का अत्यधिक प्रभाव है। आज सम्पूर्ण विश्व में भारतीय आध्यात्म, पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग हो रहा है। स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दृष्टिकोण वर्तमान संदर्भ में अत्यधिक सार्थक है। उनके विचारों के माध्यम से हम एक समग्र और संतुलित शिक्षा प्रणाली की ओर अग्रसर हो सकते हैं, जो न केवल भौतिक बल्कि मानसिक, शारीरिक, और आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान केंद्रित करती हो। उनके विचार आज भी हमारे जीवन में प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे हमें सच्ची शिक्षा की दिशा दिखाते हैं जो समाज और व्यक्ति दोनों के लिए लाभकारी हो।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों को मूर्त रूप देने के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा देश–विदेश में अनेक शाखाएं स्थापित की साथ ही जन सेवा एवं जन शिक्षा की भी व्यवस्था की। स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन में शिक्षा के सनातन मूल्य एव व्यावहारिक आदर्श सम्मिलित है जिनके प्रयोग द्वारा वर्तमान शैक्षिक समस्याओं का निराकरण सम्भव है। शिक्षा जगत की वर्तमान समस्याओं का समग्र समाधान स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन व शिक्षण प्रक्रियाओं के माध्यम से सम्भव है। उनका शैक्षिक दर्शन सम्पूर्ण युवा जगत को भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार करता है। आज हम जो कुछ भी हैं वह इस समन्वित एवं व्यापक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप ही है। आधुनिक शिक्षा को औचित्यपूर्ण बनाने के लिए स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का अमूल्य योगदान है।

सन्दर्भ सूची :–

1 सक्सेना, एन आर स्वरूप (2009) ''शिक्षा दर्शन एंव पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षा'' आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।

2 बिहारी, रमन लाल एवं तोमर, गजेन्द्र सिंह'' विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

3 अग्रवाल, जे. सी ''उभरते भारतीय समाज में शिक्षा'' नई दिल्ली : जन शिप्रा प्रकाशन (2008)

4 चौहान, संजीव कुमार, शर्मा डॉ. योगेश्वर प्रसाद (2022) ''स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक दर्शन तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता'' www.jetir.org August 2022, Volume 9, Issue 8

5 शर्मा, मुकेश कुमार, दुबे प्रमिला ''लोकाविष्कार अन्तर्राष्ट्रीय ई–जर्नल, ISSN 2277-727X,Vol-09, ISSUE.01,Oct-March 2020

6 शर्मा, रामकृष्ण ''स्वामी विवेकानन्द के विचारों की शैक्षिक एवं सामाजिक उपादेयता'' wwwijcrt.org, volume 10, ISSUE 7 July 2022 ISSN:2320-2882
7 सक्सेना, एन. आर, चतुवेर्दी, डॉ शिखा ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा'', आर लाल बुक डिपो मेरठ।
8 त्यागी, डा. सावित्री ''स्वामी विवेकानन्द की दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारधारा'' International journal of innovative social science & Humanities Research ISSN- 2349-1876
9 पाण्डेय, रामशक्ल (1999) '' विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशात्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
10 शर्मा, आर.ए (2009) शिक्षा के दार्शनिक विचार एव सामाजिक मूल आधार'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
11 पाण्डेय, रामशक्ल (1999) '' विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशात्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

मोबाइल 9997598328
ई–मेल– mamtasushil19@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 52-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा का एकीकृत स्वरूप समग्र शिक्षा अभियान

रूकमीनी यादव, शोधार्थी,
डॉ. शम्मा चक्रवर्ती, शोध निर्देशिका,
नेताजी सुभाष विश्वविद्यालय, शिक्षा विभाग (जमशेदपुर)

शोध सार :–

शिक्षा एक जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। जिसका अर्थ ज्ञान, सदाचार उचित आचरण तकनीकी दक्षता और कौशल को प्राप्त करना है। समग्र शिक्षा अभियान भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण और एकीकृत कार्यक्रम है, जिसे वर्ष 2018 में शुरू किया गया था। यह पूर्व–प्राथमिक स्तर (प्री–स्कूल) से लेकर बारहवीं कक्षा (सीनियर सेकेंडरी) तक की स्कूली शिक्षा को एक निरंतरता के रूप में मानता है। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के लिए सतत विकास लक्ष्य (SDG–4) के अनुरूप, सभी बच्चों के लिए समावेशी, समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ शैक्षिक परिणामों को बढ़ाना है। इस योजना में सर्व शिक्षा अभियान (SSA), राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) और शिक्षक शिक्षा (TE) को समाहित किया गया हैं।

मुख्य बिंदु :– समग्र शिक्षा, समावेशी शिक्षा, एकीकृत शिक्षा, सर्वांगीण विकास।

प्रस्तावना :–

शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है। जिसका अर्थ ज्ञान, सदाचार उचित आचरण तकनीकी दक्षता और कौशल को प्राप्त करने की क्रिया है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि शिक्षा जीवन–पर्यंत (जन्म से मृत्यु तक) चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों, वातावरण और अनौपचारिक/औपचारिक साधनों से लगातार सीखता है। यह मनुष्य का सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक) विकास करती है। संक्षेप में शिक्षा का तात्पर्य आमतौर पर विद्यालयों, महाविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थाओं में एक निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा से होता है।

समग्र शिक्षा अभियान भारत सरकार का एक महत्वाकांक्षी और एकीकृत कार्यक्रम है, जिसे वर्ष 2018 में शुरू किया गया था। यह पूर्व–प्राथमिक स्तर (प्री–स्कूल) से लेकर बारहवीं कक्षा (सीनियर सेकेंडरी) तक की स्कूली शिक्षा को एक निरंतरता के रूप में मानता है। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के लिए सतत विकास लक्ष्य (SDG–4) के अनुरूप, सभी बच्चों के लिए समावेशी, समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ शैक्षिक परिणामों को बढ़ाना है। इस योजना में पूर्ववर्ती योजनाएँ – सर्व शिक्षा

अभियान (SSA), राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) और शिक्षक शिक्षा (TE) समाहित हैं।

सर्व शिक्षा अभियान भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम था जिसे वर्ष 2001 में शुरू किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करके शिक्षा का सार्वभौमीकरण करना था। इसने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में पहुँच, प्रतिधारण और गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित किया, ताकि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे।

2. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान को भारत सरकार द्वारा 2009 में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करना था, जिससे 9वीं और 10वीं कक्षा के छात्रों की पहुँच में सुधार हो सके और शिक्षा की गुणवत्ता बढ़े। इसका लक्ष्य 2017 तक 9वीं और 10वीं कक्षा के लिए सकल नामांकन अनुपात (GER) को 75 प्रतिशत तक बढ़ाना और माध्यमिक स्तर पर गुणवत्ता, लिंग समानता और सामाजिक समानता सुनिश्चित करना।

3. शिक्षक शिक्षा (कार्यक्रम) शिक्षकों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास से संबंधित है। इसका उद्देश्य स्कूल शिक्षकों को शैक्षणिक ज्ञान, विषय विशेषज्ञता और कक्षा प्रबंधन कौशल से लैस करना था ताकि वे प्रभावी ढंग से पढ़ा सकें। यह सर्व शिक्षा अभियान और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान दोनों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण था, क्योंकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अंततः गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों पर निर्भर करती है।

समग्र शिक्षा अभियान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :–

1. **गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर जोर :**

- **शिक्षकों का क्षमता निर्माण :** शिक्षकों के प्रशिक्षण संस्थानों को मजबूत करना और सेवारत शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।
- **डिजिटल शिक्षा :** स्कूलों में स्मार्ट क्लास और कंप्यूटर लैब की स्थापना करना। झारखंड में सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए "ज्ञान सेतु ऐप" जैसे डिजिटल प्रयास भी किए गए हैं।
- **फाउंडेशनल लिटरेसी और न्यूमेरसी (बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान) :** 'निपुण भारत' मिशन को लागू करने में सहयोग करना।
- **पुस्तकालय अनुदान :** स्कूलों में पढ़ने की आदत को बढ़ावा देने के लिए वार्षिक पुस्तकालय अनुदान प्रदान करना।

2. **समान पहुँच और समावेश :**

प्री–स्कूल से कक्षा 12 तक निरंतरतारू शिक्षा के सभी स्तरों को एक साथ लाना।

- **स्कूलों का उन्नयन :** स्कूलों के लिए समग्र अनुदान में वृद्धि करना और साफ–सफाई (स्वच्छ विद्यालय) को बढ़ावा देना।

समावेश और समता (Equity and Inclusion) :

बदलाव : सामाजिक और लैंगिक अंतर (Social and Gender Gaps) को कम करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (KGBVs) को कक्षा 6–8 से बढ़ाकर कक्षा 6–12 तक अपग्रेड किया गया है।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (CwSN) के लिए सहायता राशि बढ़ाई गई है, जिसमें कक्षा 1 से 12 तक की CwSN लड़कियों के लिए वजीफा (Stipend) भी शामिल है।

'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' और लड़कियों के लिए आत्मरक्षा प्रशिक्षण जैसी पहलों को प्रोत्साहन दिया गया है।

3. डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा :

बदलाव : शिक्षा में प्रौद्योगिकी (Technology) के उपयोग पर विशेष बल दिया गया है।

प्रभाव : स्कूलों में डिजिटल पहल जैसे ICT लैब और स्मार्ट क्लासरूम की स्थापना को मंजूरी दी गई है। 'दीक्षा' (DIKSHA) जैसे डिजिटल पोर्टल्स के माध्यम से शिक्षकों के कौशल उन्नयन (Upskilling) और शैक्षिक संसाधनों की पहुँच बढ़ाई गई है।

4 व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) :

माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों को रोजगार योग्य बनाने के लिए व्यावसायिक कौशल प्रदान करना।

खेल और शारीरिक शिक्षा : स्कूलों में खेल उपकरण उपलब्ध कराना और शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में एकीकृत करना।

निष्कर्ष :

इस अध्याय द्वारा यह पता चलता है कि समग्र शिक्षा अभियान भारत सरकार द्वारा चलाई जाने वाली शिक्षा योजनाओं में एक ऐसी योजना है जो शिक्षा को एक नए रूप में और नए स्तर तक ले करके जाती है जो शिक्षा के हर एक स्तर को एकीकृत कर उसे में एकरूपता लाती है यह शिक्षा इस शिक्षा योजना के द्वारा। प्राथमिक, माध्यमिक। स्तर के छात्र को एकीकृत तथा शिक्षकों को भी जोड़ा गया है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि समग्र शिक्षा अभियान एक ऐसा मंच है जो स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्ता, समता और पहुँच में सुधार के लिए केंद्र और राज्य के प्रयासों को एकजुट करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. वर्मा, सरला. (2018). समग्र शिक्षा विद्यालयी शिक्षा में एक एकीकृत योजना. प्रारंभिक शिक्षक शिक्षा। राष्ट्रीय अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. नई दिल्ली : श्री अरविंद मार्ग।
2. Today's Education insight, National Magazine, (2018)
3. शर्मा,के., गाँधी, आर. शर्मा, एम. (2019)। "ए स्टडी ऑफ ऑफ समग्र शिक्षा अभियान : एंड इटीवेटेड टू इनहेस 66 डिजिटल एजुकेशन इन एरिया ऑफ प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक्ट राजस्थान"।
4. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय।
   https://samagra.education.gov.in/
5. http://dsel.education.gov.in/hi/scheme/samagra&shiksha

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 55-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तर प्रदेश में पर्यटन उद्योग एक अध्ययन

डॉ प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र, जगतपुर पी0 जी0 कॉलेज, जगतपुर, वाराणसी।

तुहिना सिंह

शोधछात्र आइसेक्ट यूनिवर्सिटी हजारीबाग, झारखंड।

उत्तर प्रदेश भारत का वह राज्य है जहाँ इतिहास संस्कृति और अध्यात्म एक साथ सांस लेती है। यह राज्य न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि प्राकृतिक सौंदर्य, कला और विविधता से भरपूर पर्यटन स्थलों के लिए भी प्रसिद्ध है। वाराणसी की गंगा आरती से लेकर आगरा का ताजमहल लखनऊ की नवाबी विरासत से लेकर चित्रकूट की धार्मिक महत्व तक उत्तर प्रदेश में हर प्रकार के पर्यटकों के लिए कुछ न कुछ विशेष है। राज्य सरकार द्वारा पर्यटन को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनाए चलाई जा रही है जिससे न केवल पर्यटकों की संख्या बढ़ रही है बल्कि स्थानीय लोगो को भी रोजगार के नए अवसर प्राप्त हो रहे है। उत्तर प्रदेश अब देश ही नहीं विदेश से भी आने वाले पर्यटकों के लिए आकर्षक का केंद्र बनता जा रहा है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने पर्यटन के क्षेत्र में विकास के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए है। प्रसाद योजना के अंतर्गत धार्मिक स्थलो जैसे वाराणसी, अयोध्या, मथुरा और विंध्याचल में बुनियादी सुविधाओं का विकास किया गया है। स्वदेश दर्शन योजना के माध्यम से बौद्ध यात्रा श्रृंखला को विकसित किया जा रहा है। 'देखो अपना देश' और उत्तर प्रदेश महोत्सव जैसे अभियान राज्य की संस्कृतिक पहचान को देश विदेश तक पहुचाने का कार्य कर रहे है। इसके अतिरिक्त आगरा का ताजमहल लखनऊ का इमामबाढ़ा, वाराणसी का दशाश्वमेद घाट, प्रयागराज का संगम और कुशीनगर जैसे स्थान पर्यटकों के लिए आकर्षक का केंद्र है। इन स्थलों का संरक्षण और आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित राज्य को पर्यटन की दृष्टि से और भी समृद्ध बना रहा है। विदेशी पर्यटकों के आने से विदेशी मुद्रा में वृद्धि होती है और लाखों लोगों को तरह–तरह के रोजगार मिलते है। वर्ष 2022–2023 में पर्यटन क्षेत्र ने लगभग 7.6 करोड़ नौकरियां सृजित की जिससे बेरोजगारों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ हुआ है।

मुख्य शब्द :–

उत्तर प्रदेश पर्यटन, रोजगार सृजन, स्वदेशी दर्शन, प्रसाद योजना, आर्थिक प्रभाव, विदेशी मुद्रा।

परिचय :–

पर्यटन किसी भी राज्य के आर्थिक विकास का एक मूलभूत आधार है। उत्तर प्रदेश में अयोध्या वाराणसी मथुरा आगरा जैसे धार्मिक और ऐतिहासिक स्थल होने के कारण यह भारतीय एवं विदेशी यात्रियों का मुख्य केन्द्र है। यूं तो भारत के सभी राज्य प्राकृतिक सौंदर्य से भरे पड़े है लेकिन उत्तर प्रदेश को अपनी विविध जलवायु व

प्राकृतिक विभिन्नता तथा धार्मिक स्थानों के कारण संसार का सबसे आर्थिक आकर्षक तथा रोमांचकरी स्थल होने का सौभाग्य प्राप्त है। विशाल हिमगिरि से विंध्य की पहाड़ियों तक फैला यह प्रदेश प्राचीन काल से आर्यावर्त और मध्य देश कहलाता था। इस प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य इतना मनोहारी आकर्षक और विविधता पूर्ण है कि शायद ही विश्व का कोई भू–भाग इससे प्रतिस्पर्धा कर सके।

उत्तर प्रदेश में स्थित बौद्ध तीर्थ स्थान जैसे श्रावास्ती सारनाथ कौशाम्बी कुशीनगर आदि भारतीय भक्तजनों के अतिरिक्त जापान म्यांमार थाइलैंड कंबोडिया वियतनाम इंडोनेशिया श्रीलंका आदि देशों के पर्यटकों के लिए भी विशेष दर्शनीय केंद्र है। वाराणसी नैमिषारण्य प्रयागराज आदि प्राचीनतम तीर्थ स्थल है। हिन्दू और मुगलकालीन उत्कृष्ट स्थापत्य कला के भवन मुख्यतः आगरा अयोध्या सारनाथ वाराणसी मथुरा प्रयागराज आदि नगरों में है। उत्तर प्रदेश के प्रमुख दर्शनीय पर्यटन केंद्र को सारणी में स्पष्ट किया गया है।

	पर्यटन क्षेत्र	**जिले**
1)	ईट निर्मित गुप्त कालीन मंदिर	भीतर गांव कानपुर
2)	चार हजार मंदिरों घाटों एवं सरोवर का नगर	वृन्दावन मथुरा
3)	पटिश्वरी देवी मंदिर	देवी पाटन गोडा
4)	राज जन्मभूमि	अयोध्या
5)	काशी विश्वनाथ मंदिर व गौतम बुद्ध का स्तूप	वाराणसी
6)	संगम पर माघ मेला	प्रयागराज
7)	गौरखनाथ मंदिर	गोरखपुर
8)	बारह भगवान का ऐतिहासिक मंदिर	सोरों एटा
9)	नंद बाबा का निवास स्थान	नन्द गांव मथुरा
10)	सीता मणि	भदोई
11)	पांडवों की राजधानी प्राचीन जैन प्रतिमाएं	हस्तिनापुर मेरठ
12)	विंध्याचल देवी का पौराणिक मंदिर	विंध्याचल मिर्जापुर
13)	संत सैयद सालार मसूद गाजी की दरगाह	बहराइच
14)	गंगा तट पर महर्षि बाल्मीकि का आश्रम	बिठूर कानपुर
15)	दरदर मुनि की तपस्थली	बलिया

उत्तर प्रदेश में पर्यटन विभाग की स्थापना विकास आयुक्त वर्ष 1956 में हुई थी वर्ष 1961 में इसे परिवहन आयुक्त के अंतर्गत हस्तान्तरित कर दिया गया। वर्ष 1972 में पृथक पर्यटन मंत्रालय निदेशालय की स्थापना की गई। पर्यटन सम्बन्धी व्यावसायिक कार्यकलापों की देख रेख के लिए वर्ष 1974 में पर्यटन विकास निगम की स्थापना की गई उत्तर प्रदेश में पर्यटन विकास के लिए भारत सरकार द्वारा तीन यात्री परिपथों का निर्माण किया गया है। जिसके अंतर्गत बौद्ध तीर्थ स्थल वन्य जीव पर्यटन स्थल एवं पर्यटन नीति के अंतर्गत के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश में पूंजी निवेश करने के इच्छुक उद्यमियों के लिए आकर्षक पैकेज रियायतें प्रदान करने का निर्णय लिया गया है। प्रदेश में पर्यटन विकास पर पिछले कई दशकों से विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिससे परिणाम स्वरूप पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। कोविड 19 महामारी के कारण 2020–2021 में पर्यटकों में भारी कमी

आई थी लेकिन 2022 से अब तक उत्तर प्रदेश के पर्यटन उद्योग में लगभग 102 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। (Business & Standard.com+12) जो कि उत्तर प्रदेश को उत्तम प्रदेश बनाने में काफी योगदान निभा रहा है। सारणी से स्पष्ट है कि वर्ष दर वर्ष भारतीय और विदेशी सैलानियों को उत्तर प्रदेश ने कितना आकर्षित किया है।

उत्तर प्रदेश में भ्रमण करने वाले पर्यटकों की वर्षवार संख्या

वर्ष	भारतीय पर्यटक	विदेशी पर्यटक	योग
2015	1919.61	30.55	1950.16
2016	2151.32	32.59	2183.91
2017	2339.77	35.56	2375.33
2018	2573.74	39.11	2612.85
2019	5358.55	47.45	5606.00
2020	1000.00	10.00	1010.00
2021	281.63	0.07	281.70
2022	3179.13	6.50	3185.63
2023	4785.26	16.01	4801.27
2024	3287.81	10.37	3298.18

स्रोत : सांख्यिकीय डायरी, उत्तर प्रदेश, 2024, पृष्ठ 124

सारणी से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में लगातार सभी वर्षों में भारतीय तथा विदेशी पर्यटकों की संख्या बढ़ती जा रही है। वर्ष 2015 में कुछ पर्यटकों की संख्या 1950.16 ही 2024 में ये संख्या बढ़कर 3298.18 लाख हो गई। उत्तर प्रदेश में लगातार बढ़ते पर्यटकों की संख्या इस बात का संकेत है। उत्तर प्रदेश पर्यटन स्थल की दृष्टि से भारत में ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था में पर्यटन को रोजगार करने वाला एक बड़ा उद्योग माना जा रहा है। पर्यटन का प्रदेश की अर्थव्यवस्था में योगदान काफी बढ़ती जा रहा है प्रदेश में देशी–विदेशी पर्यटकों को सुविधा के नए नए व्यवसाय खुलने से प्रदेश की जनता को प्रत्यक्ष व परोक्ष रोजगार मिल रहा। उत्तर प्रदेश को उत्तम प्रदेश बनाने के अंतर्गत मुख्यमंत्री जी ने कई योजनाओं का निर्माण किया जैसे देखो अपना देश जोकि घरेलू पर्यटन को प्रोत्साहित करता है। स्वदेश दर्शन (1.0 – 2.0) जो की थीम आधारित पर्यटन को विकसित करता है। प्रसाद स्कीम (PRASHAD SCHEME) जो की धार्मिक स्थालो का बुनियादी ढांचा मजबूत करता है। अतुलनीय 2.0 जो कि डिजिटल आजादी का अमृत महोत्सव जो कि स्वतंत्रता सेनानियों से जुड़े स्थलों का विकास करता है। युवा टूरिज्म क्लब जो की हमारे युवा पीढ़ी को पर्यटन से जोड़ने का काम करता है।

पर्यटन को बढ़ावा देने के सुझाव

1. पर्यटन को समावेशी टिकाऊ और डिजिटल बनाना होगा।
2. रोजगार के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों का विकास करना होगा।
3. स्थानीय उत्पादो (ODOP) One District One Product को पर्यटन के साथ जोड़ने से कारीगरी की

अर्थव्यवस्था का विकास होगा।

4. सभी पर्यटन स्थलों पर पर्यटनों की सहायता के लिए एक सूचना केन्द्र खोला जाये और उसमें ऐसे कर्मचारियों को रखा जाय जिसको एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान हो।
5. पर्यटन उद्योग से होने वाले आय का एक निश्चित प्रतिशत ऐतिहासिक एवं संस्कृतिक धरोहरो की सुरक्षा के लिए सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :-

उत्तर प्रदेश का पर्यटन उद्योग आर्थिक विकास सामाजिक उत्थान और भविष्य के रोजगार सृजन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि नीतियों निवेश और प्रबंधन के माध्यम से पर्यटन क्षेत्र को एक समावेशी और सतत् विकास का इंजन बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. पर्यटन मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2023–24
2. सांख्यिकीय डायरी, उत्तर प्रदेश, 2024, पृष्ठ संख्या 124
3. Business- standard.com+12
4. ToI वाराणसी ब्यूरो 2024
5. टाइम्स ऑफ इंडिया, पर्यटन क्षेत्र अपडेटस।
6. यूपी पर्यटन नीति, 2022

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 59-62

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सृजनात्मक स्वतंत्रता बनाम धर्म सत्ता

श्रुति पी. पी.

शोधार्थी, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady, Ernakulam, Kerala.

धर्म और सृजनात्मकता दोनों ही मानवता के सबसे सुंदर पहलू हैं। एक ओर धर्म मनुष्य को सत्य, न्याय, करुणा और कर्तव्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है, तो दूसरी ओर सृजनात्मकता उस आंतरिक प्रेरणा को अभिव्यक्ति देने का माध्यम बनती है ।

भारतीय दर्शन के अनुसार, 'धारयति इति धर्मः' अर्थात धर्म वह है जो धारण किया जा सकता है या जो सबको धारण करता है। यानी धर्म वह है, जो मनुष्य को सही मार्ग दिखाए, उसका जीवन व्यवस्थित करे और उसे उसके लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करे। लेकिन धर्म का अर्थ कई बार तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है।

नरेन्द्र मोहन के अनुसार "जिस शब्द का मानव ने सर्वाधिक दुरुपयोग किया है वह है 'धर्म'। इस शब्द के दुरुपयोग की लंबी शृंखला है तथा कोई नहीं जानता कि इस शब्द का दुरुपयोग मानव कब बंद करेगा और करेगा भी या नहीं।"[1]

जब हम अतीत की ओर देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि धर्म की मूल भावना समय के साथ बदलती व्याख्याओं के कारण पीछे छूट गई, और उसे एक धार्मिक सत्ता के रूप में स्थापित कर दिया गया। धर्म सत्ता जिससे तात्पर्य धर्म विशेष पर आधारित सत्ता या व्यवस्था से है। जैसे सिक्के के दो पहलू होते हैं, वैसे ही धर्म सत्ता के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं।

सकारात्मक भूमिका यह है कि यह समाज को नैतिक दिशा देती है, सामूहिक पहचान बनाए रखती है और मानवीय मूल्यों– दया, न्याय, करुणा को पुष्ट करती है। इन मान्यताओं के आधार पर समुदायों में सामाजिक समरसता, सद्भाव और सहयोग बढ़ सकता है।

धर्म सत्ता का नकारात्मक पक्ष तब सामने आता है जब यह धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव, राजनीतिक दुरुपयोग, और वैयक्तिक स्वतंत्रता पर अंकुश जैसे मुद्दों को जन्म देती है। जिसको लेकर भीष्म साहनी का विचार इस प्रकार है "संस्थागत धर्म इंसान को इंसान से अलग करते हैं, उसमें भेदभाव पैदा करते हैं और राजनीति से जुड़ते हुए भेदभाव को वैमनस्य के स्तर पर बढ़ावा देते हैं।"[2] ऐसे धार्मिक कट्टरपंथी शक्तियों पर भगतसिंह ने तीखी आलोचना करते हुए कहा है कि "सांप्रदायिक विचार फैलाने वाले सांप्रदायिक संगठनों या अन्य पार्टियों से कोई संबंध न रखना और लोगों को यह समझाना कि धर्म व्यक्तिगत आस्था का विषय है तथा इस प्रकार उनमें सामान्य सहिष्णुता की भावना जगाना इसी विचार के अनुसार कार्य करना"।[3] गांधी जी ने भी यही

कहा था कि "धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है, इसे राजनीति या राष्ट्रीय मामलों से नहीं जोड़ना चाहिए"।[4] कहने का तात्पर्य यही है कि राजनीति और राष्ट्रीय निर्णयों को न्याय, समानता और तर्क के आधार पर तय किया जाना चाहिए, न कि किसी धर्म विशेष के आधार पर।

सृजनात्मकता मनुष्य के काल्पनिक विचारों की वास्तविक धरातल पर साकार रूप देने की अद्‌भुत कला है। जहाँ कोई व्यक्ति या समूह बिना बाहरी दबाव या प्रतिबंधों के, अपनी कल्पना, विचार और अभिव्यक्ति को नये तरीकों से प्रस्तुत कर सकते हैं। जिसके लिए उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक है। जिस पर आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन प्रासंगिक मालूम होता है। उन्होंने कहा है कि "वस्तुतः स्वतंत्रता सर्जनात्मकता का पर्याय है, जो स्वतंत्र नहीं होता वह सर्जक नहीं हो सकता। दुनिया में जो कुछ भी सर्जन संभव हुआ है वह स्वतंत्रता के ही कारण।"[5]

धर्मसत्ता जब सत्तावादी और नियंत्रक रूप ले लेती है, तो वह सृजनात्मक स्वतंत्रता के लिए बाधा बन जाती है। धार्मिक सत्ता ने कई बार सृजनात्मकता को प्रेरित करने के साथ–साथ प्रतिबंधित या नियंत्रित करने का भी काम किया है।

मुक्तिबोध ऐसे महान सर्वहारा कलाकार थे जिन्होंने अभिव्यक्ति की आजादी के खतरों पर आवाज उठाते हुए कहा है कि "अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।"[6] अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर मंडराते खतरों में सबसे घातक खतरा धार्मिक असहिष्णुता का है, क्योंकि यह न केवल विचारों को दबाती है, बल्कि सोचने के अधिकार को ही अपराध बना देती है। इसकी विभीषिका ने साहित्य के क्षेत्र को भी निगल चुका है और स्वतंत्र लेखन कार्य में चुनौत्तियाँ खड़ा करता है।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संविधान द्वारा संरक्षित है, वहीं विडंबना यह है कि आजाद होकर बोलना सबसे बड़ा जोखिम बन गया है। हर विचार, हर राय – चाहे वह कला हो, साहित्य हो या सामाजिक आलोचना – धार्मिक या राजनीतिक चश्मों से तौली जाती है।

भारत में सृजनात्मक स्वतंत्रता पर धार्मिक हमलों का इतिहास अत्यंत पुराना और जटिल है। यहाँ विभिन्न कालखंडों में अलग–अलग धर्मों और सांस्कृतिक समूहों के बीच विवाद, संघर्ष और उत्पीड़न के कई उदाहरण मिलते हैं, जो दर्शाते हैं कि धार्मिक सत्ता और सामाजिक नियंत्रण की आकांक्षा अक्सर स्वतंत्र सोच और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रास्ते में बड़ी बाधा रही है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में संवाद, वाद–विवाद की परंपरा रही है। उपनिषदों में प्रश्नोत्तर और तर्क का व्यापक स्वरूप मिलता है। भक्ति आंदोलन के दौर में कबीर, रैदास, मीरा बाई जैसे भक्त कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों, जातिवाद, धार्मिक पाखंड और बाह्य आडंबर के विरुद्ध खुलकर लिखा और बोला, भले ही उन्हें विरोध सहना पड़ा हो।

मध्यकालीन भारत में, विशेषकर मुगल काल में, धार्मिक तंत्र के प्रभाव में स्वतंत्र सृजनात्मकता पर काफी दबाव आया। मुस्लिम शासकों के अधीन कुछ कला और साहित्यिक रूपों को संरक्षण मिला, जबकि कुछ को धार्मिक कारणों से दबाया गया। सूफी संतों ने धार्मिक सहिष्णुता और प्रेम की बात की, लेकिन उनके भी कुछ विचार धार्मिक कट्टरपंथियों के निशाने पर आए। हिंदू धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था के भीतर भी कष्टदायक रूढ़िवाद ने नवाचारों को अवरुद्ध किया।

ब्रिटिश राज के दौरान आधुनिकता और पश्चिमी शिक्षा के प्रसार ने भारत में सृजनात्मक स्वतंत्रता के नए आयाम खोले, जिस पर जितेन्द्र यादव का मानना इस प्रकार है "साहित्य और धर्म को दो किनारों पर लाने का श्रेय नवजागरण काल को है जिसमें सभी चीजों का मूल्यांकन एक नए सिरे से शुरू होता है। नवजागरण काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्कवादी नजरिए ने धार्मिक विश्वास और आस्था को डिगाना शुरू कर दिया। इसलिए अब साहित्य का विषय धर्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा नहीं बल्कि सीधे–सीधे मनुष्य को केंद्र में रखते हुए मानवीय मूल्यों और उसके जीवन संघर्षों के बारे में कहना शुरू करता है। यानी पहले जहाँ साहित्य के केंद्र में ईश्वर था वही अब साहित्य का केंद्र मनुष्य हो गया।"[7] फिर भी लेखकीय स्वतंत्रता पर कठोर अंकुश लगाया गया। लेखकों को जेल में डाला गया, रचनाएँ जब्त की गईं– जैसे प्रेमचंद की कहानी 'सोजे–वतन' पर प्रतिबंध लगाया गया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1975 का आपातकाल रचनात्मक स्वतंत्रता के लिए अंधकारमय दौर था। मीडिया पर सेंसरशिप और साहित्यकारों पर बढ़ते दबाव के चलते लेखक वर्ग अभिव्यक्ति के संकट से जूझ रहा था।

वर्तमान में चाहे साहित्य हो, कला हो या वैज्ञानिक विचार, धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के नाम पर कई बार सृजनात्मक अभिव्यक्तियों पर हमला हुआ। धार्मिक सत्ता साहित्य को नियंत्रित करने की कोशिश करती है, खासकर उन विचारों को जो सत्ता के खिलाफ हों। साहित्य के क्षेत्र में हमले की बात करें तो अनगिनत उदाहरण मिलते हैं।

हिंदू धार्मिक परंपराओं की आलोचना करने, 'भारत माता' के प्रतीक का अपमान करने जैसे आरोपों के कारण अमेरिकी लेखिका कैथरीन मेयो की किताब फेस ऑफ मदर इंडिया विवादों में रही। इसी तरह, ई.वी. रामास्वामी पेरियार की सच्ची रामायण में ब्राह्मण संस्कृति का विरोध, असुरों का समर्थन और देवी–देवताओं की कड़ी आलोचना की गई, जिसके कारण उन्हें भी विरोध का सामना करना पड़ा।

सलमान रुश्दी की किताब द सैटेनिक वर्सेस पर इस्लाम और पैगंबर मोहम्मद का अपमान करने के आरोप लगे और कई देशों में इसे बैन कर दिया गया। वेनडी डोनिगर की किताब द हिंदूज : एन ऑल्टरनेटिव हिस्ट्री में हिंदू देवी–देवताओं की अलग तरह से व्याख्या करने के कारण उस पर भी यह आरोप लगा कि इससे हिंदू भावनाएँ आहत हुई हैं।

राम स्वरूप अग्रवाल की किताब अंडरस्टैंडिंग इस्लाम थ्रु हदीस पर इस्लाम की आलोचना करने का आरोप लगा।

सआदत हसन मंटो ने अपने लेखन में धार्मिक उन्माद, बंटवारे की सच्चाई और मौलवियों के पाखंड को उजागर किया, जिसके कारण उनकी रचनाओं को निशाना बनाया गया।

पंजाबी कवि पाश, जिन्होंने धार्मिक कट्टरता और खालिस्तानी उग्रवाद का विरोध किया, उनकी खुलेआम हत्या कर दी गई।

फैज अहमद फैज की कविता हम देखेंगे को भी कुछ कट्टरपंथियों ने इस्लाम विरोधी बताकर आलोचना की, जबकि उनका उद्देश्य अन्याय और अत्याचार का विरोध करना था।

बाबरी मस्जिद विध्वंस के दौरान बांग्लादेश में हिंदू अल्पसंख्यकों पर हुए हमलों और इस्लामी कट्टरता की तीखी आलोचना के कारण तसलीमा नसरीन के उपन्यास लज्जा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके साथ ही

उनके खिलाफ फतवे जारी किए गए और जान से मारने की धमकियाँ भी दी गईं।

तमिल लेखक पेरुमल मुरुगन पर उनके उपन्यास मधोरुबगन में एक पुरातन धार्मिक परंपरा के उल्लेख के कारण धार्मिक भावनाएँ आहत करने के आरोप लगाए गए। इस घटना से आहत होकर उन्हें लेखन छोड़ने तक का निर्णय लेना पड़ा था।

हिंदू मंदिरों, धार्मिक परंपराओं और महिलाओं की धार्मिक सहभागिता पर चर्चा करने वाले मलयालम लेखक एस. हरीश के उपन्यास मीशा को कुछ हिंदू संगठनों ने अपमानजनक और हिंदू विरोधी बताकर विरोध किया। यह सारे उदाहरण इस बात को स्थापित करता है कि धर्मसत्ता जब सत्तावादी और नियंत्रक रूप ले लेती है, तो वह सृजनात्मक स्वतंत्रता के लिए बाधा बन जाती है।

संक्षेप में कहा जाये तो साहित्य पर धार्मिक सत्ता का नियंत्रण केवल शब्दों को नहीं, बल्कि समाज की सोच और चेतना को भी बाँध देता है। यदि व्यक्ति को सोचने, कहने और सवाल करने का अधिकार नहीं होगा, तो समाज गतिहीन हो जाएगा, रचनात्मकता मर जाएगी और न्याय की आवाज गुम हो जाएगी। इतिहास साक्षी है कि जब–जब धार्मिक सत्ता ने रचनात्मकता को दबाने की कोशिश की, साहित्य ने आवाज उठाई है – कभी कबीर की साखियों में, कभी प्रेमचंद की कहानियों में, और कभी आज के लेखकों की कलम में। ध्यान देने योग्य बात यह है कि धर्म और साहित्य – दोनों समाज के मार्गदर्शक हो सकते हैं, यदि वे एक–दूसरे का सम्मान करें। लेकिन जब धार्मिक सत्ता आलोचना को दमन समझने लगती है, तब साहित्य संघर्ष का माध्यम बन जाता है।

सन्दर्भ ग्रथ सूची :-

1. नरेन्द्र मोहन, धर्म और सांप्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, 1 संस्करण (2009) पृष्ठ ३७
2. भीष्म साहनी, आज का अतीत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि, पहला सन २००३ पृष्ठ २६२
3. राजाराम भादू, धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि, पहला सं २००३, पृष्ठ संख्या २६५
4. राजाराम भादू, धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन प्रो लि, पहला सं २००३, पृष्ठ संख्या २६५
5. डॉ. के. अजिता, नाटककार भीष्म साहनी, जवाहर पुस्तकालय, २००६, पृष्ठ ८६
6. कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, कविता का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, २०१६, पृष्ठ १८०
7. अपनी माटी पत्रिका, संपादकीय वक्तव्य से, संपादक जितेन्द्र यादव, अंक ३२, जुलाई २०२०

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 63-68

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृत साहित्य में काव्य के प्रयोजन

Kalpanabahen Sangada

Phd Scolar, Agrwaldal Mill Talav Faliya Chhapri, Dahod, Pin-389151, Gujarat.

कवि के प्रयोजन तथा उसकी शिक्षा :

भारतीय कवियों तथा अलंकार–शास्त्र–सम्बन्धी ग्रन्थों के लेखकों के विचारों में कवि के प्रयोजन के सम्बन्ध में तात्त्विक ऐकमत्य है। उनको रुचिकर लगने वाले दो महान् लक्ष्य है. यशःप्राप्ति और आनन्द–प्रदान। भामह का कथन है कि कवि के स्वर्गवासी हो जाने के अनन्तर भी उसका काव्यमय शरीर पवित्र तथा कान्तियुक्तरूप में पृथ्वी पर स्थित रहता है। इसमें सन्देह नहीं कि कविता के अन्य प्रयोजनों को भी साथ में जोड़ा जा सकता है। स्वयं भामह ने काव्य से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और कलाओं के सम्बन्ध में नैपुण्य की प्राप्ति का उल्लेख किया है, परन्तु ये केवल गौण बातें हैं जिनकी प्राप्ति अन्य साधनों हसे भी की जा सकती है। अतः ये उल्लेख के योग्य नहीं हैं। उपदेश देना श्री कवि के प्रयोजन का आवश्यक भाग नहीं है, पर यदि वह चाहे तो अपनी कृति में किसी प्रकार के उपदेश का समावेश कर सकता है। यदि उसका यह उद्देश्य हो तो, धार्मिक गुरुओं के प्रभुसम्मित तथा शास्त्रकारों के सुहृत्सम्मित उपदेशों के विपरीत, कवि का उपदेश कान्तासम्मित होता है। काव्य का बानन्द पाठक या श्रोता को ही प्राप्त होता है। साग्रह प्रश्न किये जाने पर भारतीय रससिद्धान्त काव्यसर्जन में आनन्दप्राप्ति को स्वीकार नहीं करता। कवि अपनी कविता का आनन्द तभी ले सकता है जब अपनी रचना की समाप्ति पर वह सहृदय वन जाता है, और अपने इस रूप में वह उस रस का आस्वाद लेता है जो आस्वाद की अवस्था में आनन्द का शुद्धतम रूप है। सिद्धान्त का सादृश्य उपलब्ध होता है कि नाट्य के रस का नहीं, अपितु प्रेक्षक को होता है। यहां हमें इस आस्वाद नट को परन्तु यदि कवि अपनी कीति के लिए इच्छुक होते थे तो उन्हें इस बात का ज्ञान था कि बिना किसी आश्रय के वे इसे नहीं प्राप्त कर सकते, और स्वभावतः यह आश्रय उन्हें मुख्यतः राजा से और यदि उससे नहीं तो किसी समृद्ध आश्रय–दाता से ही मिल सकता था। राजाओं को प्रभावित कर सकने वाले अभीष्ट अर्थ बारम्बार तथा अत्यधिक प्रभावपूर्ण रीति से व्यक्त किए गए हैं।

दण्डी के अनुसार वाणी में प्रतिबिम्बित प्राचीन राजाओं की कीति उनकी मृत्यु के अनन्तर भी स्थित रहती है। रुद्रट कहते हैं कि मनुष्य के कर्मों का स्वर्गादि फल भले ही नष्ट हो जाये, किन्तु उनके नामों को कवि सदा के लिए सुरक्षित बना सकता है, और जैसा कि हम देख चुके हैं, इस विषय में कल्हण तो सबसे अधिक जोर देते हैं। राजशेखर ने काव्य तथा अन्य विद्याओं के प्रति राजा के कर्त्तव्य पर बहुत अधिक बल दिया है। राजा को नियमतः एक दरबार करना चाहिए जिसमें बहुत अधिक संख्या में कवि तथा अन्य जन उपस्थित हों और विचार के लिए प्रस्तुत किये गये ग्रन्थ के गुण–दोष की परीक्षा करें, साथ ही उसे वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक और

साहसांक के उदाहरण का अनुकरण करते हुए कवियों को उनके गुणों के अनुसार पुरस्कृत करना चाहिए। उसे राज्य के बड़े नगरों में ब्रह्मसभाएँ भी स्थापित करनी चाहिएँ, जिससे वहां राजकीय समर्थन के लिए उपस्थापित ग्रन्थों की परीक्षा की जा सके। कालिदास, मेण्ठ अमर रूप, सूर, २ भारवि, हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त इन महान् कवियों की सूची हमें प्राप्त है, जो उज्जैन में प्रशंसित हुए थे।

इसी प्रकार शास्त्रों के रचयिता उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, वररुचि तथा पतञ्जलि को पाटलिपुत्र में राजकीय सम–धंन प्राप्त हुआ था। भोजप्रबन्ध में, यद्यपि वह परवर्ती और अनैतिहासिक है राजसभा में ऐसी प्रतियोगिताओं के मनोरञ्जक चित्र उपलब्ध होते हैं, और प्रबन्धचिन्तामणि में भी ऐसे ही चित्र खीचे गये हैं, जो यह प्रकट करते हैं कि राजशेखर का आदर्श प्रायः चरितार्थ होता था, जबकि राजसभा का एक अधिक औपचारिक चित्र मंख से प्रस्तुत किया है। इसमें भी हमें सन्देह नहीं करना चाहिए कि कवि तथो राजा का पारस्परिक सम्बन्ध दोनों के लिए सुखकर होता था। यदि हर्ष की उदारता से प्राप्त बाण का सम्पत्तिलाभ प्रख्यात था, तो उस अज्ञातनामा कवि की उक्ति में भी पर्याप्त सत्य विद्यमान है जो पूछता है कि धन की वे राशियां और मदस्रावी हाथी कहां गये जो वाण के गुणों के कारण महान् सम्राट् हर्ष ने बाण को दिये थे, जबकि उस कवि के प्रवाहपूर्ण पचों में चित्रित हर्ष की कीति कल्प की समाप्ति हो जाने पर भी नष्ट न होगी।

कविजन निश्चय ही आशा करते थे कि राजा लोग परिष्कृत रुचि के व्यक्ति होंगे, परन्तु वे यह भी स्मरण रखते थे कि उन्हें राजाओं की अपेक्षा अधिक बडे श्रोतुसमुदाय की आवश्यकता है और शाश्वत ख्याति प्राप्त करने के लिए उन्ह इसिकों के चित्त को आकृष्ट करना चाहिए, जो अपनी कुणाल निर्णायक–शक्ति से उनके ग्रन्थों की परीक्षा करेंगे। रसिक उसे कहते है जिसने काव्य का गम्भीर अध्ययन किया हो जिससे उसके मतिदर्पण में कोई दोष न रह जाये, और जो अपनी सहृदयता के कारण लेखक के लक्ष्य से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके।

ऐसा मनुष्य वास्तविक कविता के सुनने पर अनुभव करेगा कि जिस प्रकार अधिक सुरापान से हृदय उत्तेजित हो जाता है वैसा ही उसका हो गया है, और जब वह कवि के शब्दों को दुहराने का प्रयत्न करेगा तब उसको रोमाञ्च हो आयेगा, उसका मस्तक काँपने लगेगा, उसके कपोल रक्तिम–युक्त हो जायेगे, उसकी आँखें अश्रुपूर्ण हो जायेंगी, और उसकी वाणी हकलाने लगेगी। और जैसा कि हम देख चुके हैं, अपने को एक पाठक की स्थिति में रखने पर एक सच्चा कवि भी इन्हीं बातों का अपने में अनुभव करेगा, और इस प्रकार वह स्वयं अपनी रचनाओं का विषयगत दृष्टि से, निष्पक्ष होकर, रसास्वादन करता है।

परन्तु इस प्रकार की उत्कृष्ट कविता की रचना कर सकना अनेक कारणों पर निर्भर है। इसके लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति, और अभ्यास का होना आवश्यक है। भामह इत्यादि अन्य विद्वानों से मतभेद रखते हुए दण्डी इस बात पर बल देते हैं कि प्रतिभा के अभाव में भी उपर्युक्त अन्य दो कारणों से पर्याप्त सफलता मिल सकती है। तो भी उत्कृष्टतम कविता के लिए उक्त तीनों का संयोग सभी को मान्य है। यह विचार, कि एक सीधे–सादे असंस्कृत हृदय से भी कविता की स्वच्छ तथा सरल घारा फूट सकती है, निश्चय ही संस्कृत कवियों को रुचिकर नहीं लग सकता था। अलङ्कारशास्त्र के लेखक कवियों में उपयोगी ज्ञान का भण्डार चाहते हैं, और कवि भी अपनी रचनाओं में प्रयत्नपूर्वक इसके दिखाने का प्रयास करते हैं। कवि के लिए किन–किन बातों का ज्ञान आवश्यक है, इसकी वामन द्वारा हमें एक बहुत कुछ स्पष्ट सूची प्राप्त होती है। कवि को सांसारिक बातों का ज्ञान होना चाहिए, उसे समझना चाहिए कि क्या सम्भव है और क्या असम्भवः उसे व्याकरण में निष्णात होना चाहिए,

शब्दकोषों में बतलाये गये शब्दार्थों से परिचित होना चाहिए। छन्दःशास्त्र का अध्ययन करना बाहिएरू गान, नृत्य तथा चित्रकला इत्यादि कलाओं में दक्ष होना चाहिए। और प्रेम के व्यवहारों की जानकारी के लिए कामशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। साथ ही, नीति और अनीति के ज्ञान के लिए और घटनाओं का औचित्य समझने के लिए उसे राजनीति का अध्ययन करना चाहिए। परन्तु कवि के सारे कर्तव्य ये ही नहीं हैं। उसे कुछ अन्य छिटपुट बातों पर भी ध्यान देना पड़ेगा रू उसे अपने को वर्तमान कविता से परिचित बनाना चाहिए, कविताओं के अथवा कम से कम उनके अंशों के लेखन का अभ्यास करना चाहिए काव्यकला की शिक्षा देने वाले आचार्यों के प्रति आदरयुक्त आज्ञाकारिता प्रदर्शित करनी चाहिए, ऐसे उपयुक्त शब्द के चयन का अभ्यास करना चाहिए जिसके उपलब्ध होने पर उसे बदलने से कविता की हानि होती हो। अपने लक्ष्य की ओर ध्यान देते हुए उसे अपनी प्रतिभा को समाहित करना चाहिए। इस बात के लिए ब्राह्म मुहूर्त सर्वोत्तम है। इस बात का समर्थन कालिदास तथा माध के साक्ष्य से किया जा सकता है।

कविता के स्रोतों के सिद्धान्त में परिष्कारों से कोई विशेष मूल्यवान् बात नहीं निकलती। 'राजशेखर' ने कारयित्री अथवा भावयित्री के भेद से प्रतिभा के कार्य का विवेचन किया है। यह अन्तर वस्तुतः सर्जन–शक्ति और आलोचना–शक्ति के भेद से सम्बद्ध है। इन दोनों शक्तियों में भेद करते हुए कालिदास को उद्धृत किया गया है। राजशेखर ने कवि का रोचक चित्र भी खींचा है। उसे आवश्यकरूप से पेशल रुचि का तथा घनी होना चाहिए। उसका भवन सुसंमृष्ट होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक ऋतु के अनुकूल कमरे हों और एक छायायुक्त उद्यान हो जिसमें दीधिका हो, पुष्करिणी, मण्डप, स्नानगृह, पालकी हंस तथा चकोर पक्षी भी हों। कबि को वाणी, बुद्धि तथा शरीर से शुचि होना चाहिए। उसके नख कटे हुए हों और शरीर पर अंगराग का लेप किया हुआ हो। उसे ऐसे बहुमूल्य वस्त्र धारण करने चाहिए जो भड़कीले न हों, और भोजन के अनन्तर पान खाना चाहिए। उसके परिजनों को उसकी शानशौकत के अनुकूल होना चाहिए। परिचारकों को अपभ्रंश, परिचारिकाओं को मागधी, अन्तः पुरिकाओं को संस्कृत तथा प्राकृत और मित्रों को सब भाषाएँ बोलनी बाहिये। उसके लेखक को उसके समान ही योग्य तथा स्वयं कवि होना बाहिए। अपने घर में भाषा–विषयक विशेष नियमों पर बल देने की सीमा तक भी कुछ लोग जा सकते हैं, जैसे मगध का शिशुनाग, जिसने ण के अतिरिक्त अब मूर्धन्यों, ऊष्मवों तथा क्ष का प्रयोग अपने सम्मुख निषिद्ध कर दिया था।

सूरसेन देश के कुचिम्द ने परुव संयोगाक्षरों का प्रयोग बन्द कर दिया था। कुन्तल देश का सातवाहन प्राकृत के प्रयोग पर ही बल देता था, और उज्जैन का साह–साङ्क अपने दरवार में संस्कृत के ही प्रयोग किए जाने की इच्छा करता था। कवि की दिनचर्या भली–भाँति विभक्त है, उसे प्रातःकाल जल्दी उठना चाहिए, विद्या की देवी सरस्वती को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करके शास्त्रों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करना चाहिए, तदनन्तर कुछ समय काव्य रचना में लगाना चाहिए, फिर मध्याह्न का भोजन करना चाहिए और उसके पश्चात् अपनी कविता की मीमांसा में लगना चाहिए या काव्यगोष्ठी का आनन्द लेना चाहिए, फिर अपने कुछ मेधावी मित्रों के साथ बैठ कर उसे अपनी कविता को परीक्षा करनी चाहिए। सायंकाल उसे फिर सरस्वती देवी की पूजा करनी चाहिए और रात्रि के प्रथम पहर में अपनी कविता का अन्तिम रूप लिख लेना चाहिए। इन सब जातों में वस्तुतः कुछ–न–कुछ कृत्रिमता का पुट है, किन्तु, ग्रन्थों में शास्त्र द्वारा लिये गये भाग के अनुसार शास्त्रकवियों के भेदों की भाँति राजशेखर के ग्रन्थ में सर्वत्र ही यह देखने में आता है कि कविता मूलतः विद्वानों की वस्तु थी और वह

अत्यधिक अनुशीलन का फल थी।

राजशेखर ने एक विषय पर बहुत अधिक घ्यान दिया है, जिस पर उनके पूर्वजों ने उतनी पूर्णता के साथ विवेचन नहीं किया, और वह है एक कवि द्वारा अन्य कवि की शब्दावली और विचारों के आदान का विषय। आनन्द–वर्धन अन्य कवियों से अत्यधिक आदान के पक्ष में नहीं हैं। यद्यपि शताब्दियों से संकड़ों कवि रचना करते चले आ रहे है, तो भी काव्य का क्षेत्र असीमित है। दो प्रतिभाशाली कवियों की कृतियों में समानताएँ हो सकती हैं। इन समानताओं में, प्रतिबिम्ब–कल्प समानता या वह समानता जो किसी वस्तु और उसके चित्र में उल्लसित होती है त्याज्य है, किन्तु वैसी समानता, जैसी दो मनुष्यों के बीच दिखलाई पड़ती है (तुल्यबेहिसुल्य समानता) गर्हणीय नहीं है। राजशेखर ने शब्दावली, पद्य के एक भाग या सम्पूर्ण पद्य के आदान के विषय में भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये है, और यद्यपि उन्होंने विश्व चोरी और स्वायत्तीकरण में भेद किया है तो भी इस विषय में उनके मत शिथिल ही है। उन्होंने वस्तुतः इस उत्तम नीतिवचन को उद्धृत किया है,

पुंसः कालातिपातेन चौर्यमन्य द्विशीर्यति।
अपि पुत्रेषु पौत्रेषु वाक्चौर्य च न शीर्यति।।

'पुरुष की अन्य चोरी तो समय के बीतने पर विशीर्ण हो जाती है, पर वाणी की चोरी पुत्रों और पौत्रों तक भी शीर्ण नहीं होती।' पर इसके साथ ही उन्होंने शब्दहरण अथवा अर्थहरण के पक्ष में अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी का बचन उद्धृत किया है। इस प्रकार वह कह सकता है, वह अप्रसिद्ध है, मैं प्रसिद्धिमान् हैं। उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, मैं प्रतिष्ठावान् हूँ। उसका यह संविधानक अप्रक्रान्त है और मेरा प्रक्रान्त है, उसके बचन गुडूची जैसे हैं और मेरे मृढीका जैसे, अर्थात् हमारी शैलियों में भेद है। वह भाषा की विशेषताओं का अनादर करता है और मैं उनका आदर करता हूँ। उसे लेखक के रूप में कोई नहीं जानता, लेखक दूर देशान्तर में रहता है। उसकी लिखी हुई पुस्तक गतकालिक है, यह तो केवल एक म्लेच्छ की कृति है।' संस्कृत के परवर्ती कवियों ने इन बहानों का स्पष्टतः ही पूरा लाभ उठाया है, और आधुनिक व्यवहार में भी ये इतने अधिक प्रसिद्ध हैं कि गम्भीरतापूर्वक इनकी निन्दा नहीं की जा सकती। राजशेखर का अपना मत इस सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि 'ऐसा कोई कवि नहीं है जो चोर न हो, और ऐसा कोई व्यापारी नहीं है जो ठग न हो, किन्तु वह व्यक्ति निन्दा से रहित होकर मौज करता है, जो अपनी चोरी को छिपाने की कला जानता है। कोई कवि उत्पादक होता है और कोई परिवर्तक कोई आच्छादक होता है और कोई संवर्गक। जो शब्द, अर्थ और उक्तियों में यहाँ कुछ नूतन देखता है और कुछ प्राचीन बातों को लिखता है, उसे महाकवि माना जा सकता है।' अर्थहण के सम्बन्ध में राजशेखर ने एक सिद्धान्त निरूपित किया है, जिसको मान्यता मिली है और जिसका हेमबन्द्र ने संक्षेप किया है। प्रतिबिम्बकल्पता की निन्दा की गई है। उसकी परिभाषा है कि 'जहाँ अर्थ तो सारा का सारा बही हो, किन्तु उसकी रचना दूसरे वाक्यों में की गई हो।' आलेल्यप्रत्यता में कुछ संस्कार कर्म के वस्तु मित्रवत् दिख–लाई जाती है और यह प्रतिबिम्बकल्पता से श्रेष्ठतर है। तुल्यदेहितुल्य समानता वहाँ होती है जहाँ वस्तु के भिन्न होने पर भी अत्यधिक साम्य के कारण तादा–त्य का आभास होता है। निपुण कविजनों की कृतियाँ भी इस प्रकार की होती है।

पर–पुर–प्रवेश समानता में प्रतिपाद्य विषय की एकरूपता रहती है, किन्तु शब्दसंस्कार अत्यधिक भिन्न रहता है, और अत्युत्तम कविजन भी इस पद्धति को अपनाते है। इस प्रवृति का दूसरा पक्ष भी वर्तमान है। हर्षचरित की अवत–रणिका में बाण ने निन्दनीय चोर की भांति उस कवि की स्पष्टतया भर्त्सना की है जो शब्दावली को

परिवर्तित करके अन्य लेखक के कर्तृत्व के चिह्नों को छिपाता है।

अनुकरण की प्रवृत्ति का, अर्थ की विशेष चिन्ता छोड़ कर अभ्यासार्थ पद्य–रचना करने की प्रवृत्ति का तथा सुप्रसिद्ध विषयों पर विस्तृत रचनाओं की प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कविसमयों की स्थापना हो गई जिनको काव्यों में लगभग यान्त्रिक ढंग से दुहराया गया है। चक्रवाक पक्षी रात्रि में अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो जाता है और मानवीय दुःख का निरन्तर स्मरण दिलाता है। चकोर को चन्द्रमा की किरणें पीकर जीवित रहने वाला बताया जाता है, और विषमय भोजन को देखते ही उसकी आँखे लाल हो जाती हैं। चातक केवल मेघों का ही जल पीता है, हंस पानी से दूष को अलग कर देता है, कीत्ति और हास समान रूप से श्वेत हैं। अनुराग को लाल माना गया है। अन्धकार मुष्टिग्राह्य है, ईर्ष्या का मुख दो जिह्वाओं वाला और विष से पूर्ण है। राजा के चरणनख उसके चरणों पर दण्डवत् पड़े हुए सामन्तों की चूड़ा–मणियों से प्रदीप्त रहते हैं। दिन में खिलने वाले कमल सन्ध्या समय अपने बाह्य–दल–रूपी नेत्रों को बन्द कर लेते हैं। अशोक वृक्ष प्रियतमा के पाद प्रहार से खिल उठता है, और बहुत बड़ी संख्या में समान 'अभिप्राय कवि परम्परा द्वारा बराबर वणित किये गये हैं। राजशेखर ने इन कविसमयों का पूर्णता के साथ वर्णन किया है, और इनकी साधारण रूप में ही यह कहकर व्याख्या कर दी है ये कवि समय हम लोगों से विप्रकृष्ट भिन्न–भिन्न देशों और कालों में किये गये वास्तविक निरीक्षणों पर आधारित हैं।

इस प्रकार हमें यह नियम मिलता है कि नदियों में सदा ही कमल पाये जाते हैं, हंस सब जला–दायों में होते हैं। प्रत्येक पर्वत पर स्वर्ण और रत्न होते हैं। या, फिर, सत्य की जोर से आँख मूंद ली जाती है। उदाहरणार्थ जब कि मालती को वसन्त में खिलने का अधिकार नहीं दिया जाता, चन्दन वृक्षों को फलपुष्प से रहित कहा जाता है, और अशोकों में फल न होने का वर्णन किया जाता है। या, फिर, वस्तुओं के अस्तित्व पर कृत्रिम बन्धन लगाये जाते हैं। मकर समुद्रों में ही पाये जाते हैं, और मोती ताम्रपर्णी नदी में ही। राजशेखर ने इसी प्रकार की रूड़ियाँ द्रव्य, गुण और क्रिया के सम्बन्ध में उदाहृत की है, और कवियों द्वारा मानी गई ऋतुओं की विशेषतायें भी दी हैं। अधिक विस्तृत क्षेत्र में भी विचारों की पुनरावृत्ति उपलब्ध होती है, और हिन्दू कथा–साहित्य में विचारों के प्रतिपादन के विविध प्रकारों के रोचक संकलन भी किये जा चुके हैं : इस प्रकार के 'अभिप्राय' हैं– दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की कला हँसने और रोने का 'अभिप्राय' वात करने वाले पक्षी, सत्य का प्रभाव, गर्भवती स्त्रियों की इच्छा या दोहद, कपटी संन्यासी और बनी हुई भिक्षुणियाँ जैसा 'अभिप्राय' अर्थात् कामातुर पर असफल स्त्री द्वारा परपुरुष को बदनाम करने का 'अभिप्रायं', अरिष्ट का प्रतीकार, काकतालीय कथा, लिङ्ग का परिवर्तन, और अन्य बहुत से महत्त्वपूर्ण या छोटे–मोटे 'अभिप्राय'।

संस्कृत साहित्यिक रुचि के विकास में दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य आशु–कविता की रचना अथवा दिये गये विषय पर यथासम्भव शीघ्रता से पद्यरचना करने के प्रति अनुराग था। यह कौशल, अत्यधिक शं। घ्रता के साथ कवि को पद्यरचना में समर्थ बनाने के लिए, काव्यगत रूढ़ियों पर पूर्ण और सिद्ध अधिकार के प्रति सीमा से अधिक समादर प्रदर्शित करने का कारण हो सकता था। शीघ्रकवि की जो प्रशंसा की गई है, वह हमें अतिरञ्जित प्रतीत हो सकती है, किन्तु इस प्रकार के भाव का अस्तित्व स्पष्टतः प्रमाणित है। 'समस्यापूरण' का अभ्यास काव्यगत नैपुण्य के प्रयोग के रूप में उतना निन्दनीय नहीं था। इसमें कवि प्रायः किसी दी हुई पंक्ति पर पद्यरचना करता था। प्राचीन परम्परा कालि–दास तक को इस मनोरञ्जन में प्रवीण बतलाती है।

संदर्भ सूची :

१. गीत गोविंदम भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ. रामानंद शर्मा।

२. काव्यशास्त्र, श्रवण कुमार गुप्ता।

३. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, जितेंद्र नाथ मिश्रा।

४. काव्यशास्त्र एवं साहित्य समालोचना, रविंद्र के दास।

५. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काने।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 69-72

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Green Schooling – A Healthy School Environment

Dr. Manoj Kumar Tyagi

Director / Principal, Noble Group of Institution Meerut.

Introduction

Green Schooling :

Green schooling is a concept which presents a paradigm that makes environmental education an integral part of student life. It helps in imbibing an environmental value structure that makes responsible and aware citizens out of young people. Green schooling is based on the premise of meaningful intervention on behalf of environmental awareness in schools at all levels. It is about forming and moulding attitudes that are environmentally responsible and encourage ethical consumption.

Green schooling is a way of making schools a hub of learning and practising skills like organic gardening, conservation of energy and water, rain water harvesting, waste recycling and other such environment-friendly activities. Students, by being at the centre of such change and activity, can develop their social and leadership qualities in the process. With gradual expansion of the purview of green schooling as time progresses, national as well as global issues can also be introduced to students and their roles developed. Green schooling should follow the principle of 'think global, act local'.

Green Schooling for :

Green schooling is meant to put students at the centre of all environmental activities and to bring their latent talents to fore-talents that often get overlooked in the academic structure of schools. Green Schooling is designed to develop schools into a learning space where 'values of life' are taught apart from pursuit of academic excellence.

- Green Schooling encourages all round, active participation from students without making any distinctions on basis of academic performances. It can grow into an avenue where every individual student can find his or her niche and discover his/her metier.
- Students who find it difficult to translate their learning experiences into academic excellence in classrooms can learn and lead in Green Schooling activities and acquire confidence in their otherwise

unnoticed abilities of creativity and parallel thinking.

- Green Schooling is an all-inclusive activity without the usual pressures of competitive rivalry. Its aim is to develop community activity among students with maximum participation and collective action.

Development of Green Schooling :

The first step to environment education is generating awareness. Students can be sensitised to a host of complex but basic issues surrounding them during the hours they spend in schools. They can be taught to identify problems and find solutions at individual and community levels. Every student in the school is part of a large community of students and teachers. This community is part of a still larger network of people and services outside the school. Thus as the spiral expands, the role of individuals must grow to synchronise with other stakeholders of this network and yet remain centred.

- Green Schooling provides the youth with life long self- empowerment and a thought process that explores the larger picture of environmental conservation and its relevance to every facet of life on earth, be it the economy, the market scenario, societal changes or technological advances.
- Learning about the environment and understanding its significance for improving the quality of life is an important exercise/aptitude that every student must learn.
- Many Educational Institutes aim at pursuing excellence in human development. This can be further enhanced through the introduction of Green Schooling at all levels. A beginning has already been made by the initiation of environmental and consumer education activities in schools. This consciousness can be further cemented and given a definite vision if the concept of Green Schooling is introduced in conjunction with the existing initiatives and also as an independent, extra-curricular and practical activity. Every aspect of school life can be used as an arena for promotion of Green Schooling.

School Green Component :

1) Water conservation :

Installing water-efficient fixtures, promoting refillable water bottles, and implementing rainwater harvesting reduce water usage.

2) Garden :

- The Garden can be used to introduce approaches to conservation of Biodiversity.
- Activities like vermiculture, composting and use of organic manure can be practised.
- This can also help in reduction of kitchen waste as garbage is converted into into manure.

3) Library :

- The Garden and Office can be used for introduction of paper recycling. Waste paper collected

in offices can be either recycled or re-used. Paper making can be taught to student as an activity.

4) Canteen :

- Th canteen and water supply points can be important examples of water conservation. Principles of food hygiene, nutrition and packaging-free food can also be introduced.

5) Waste reduction :

Programs for recycling, composting cafeteria scraps, and minimizing printed materials help divert waste from landfills. The stationery and uniform shops can be used as exposure points for students to marketing practices. They can learn about fair price, quality and value for money.

Activities for Primary to Secondary Level Students :

- Students can be shown practical experiments of how paper can be made and recycled. The connection between paper and trees should be explained to them. Student(s) conserving paper can be awarded for their responsible behaviour.
- The importance of nutritious and healthy food can be explained to them. Similarly, the junk value of fast food can also be explained.
- Children can be taken to field trips or a 'nature walk' around their school campus to be shown the wildlife on the campus or threes in bloom.
- Primary school students should be encouraged to conserve electricity and water by turning off taps and lights when they are not in use.

Activities for Higher Class Students :

- Students living in hostels can adopt a sustainable pattern of life by initiating activities like 'organic farming' or 'kitchen gardening' within hostel premises. The canteen or mess can support this activity.
- Solar energy can be harnessed to operate solar devices. Night lighting and heating can be done by solar energy. Even water pumps can be operated with his technology. This can be an important lesson for students in energy conservation and in the use of alternative, non-polluting energy. Residential schools, especially, can initiate an all-round sustainable way of life among students.
- The concept of relating responsibility to action should be introduced. Examples of how agrarian poisoning by pesticides affects end users like students, the introduction of Genetically Modified food in the country and the impact of consumer choices on immediate and distant environment should be explained to students.
- Students can be taken on field trips, like a ride to a river or water harvesting site. This will strengthen their theoretical knowledge base and help in comprehension of environmental issues.
- Students can initiate waste paper collection in office, library and other components of the

school structure. Paper recycling activities and vermiculture can be carried out within the school campus.

Community engagement :

- **School and community collaboration:** Partnering with local organizations, government agencies, and businesses for expertise and resources strengthens the school's green initiatives.
- **Public communication:** Sharing the school's progress with the wider community through newsletters and assemblies can inspire broader behavioral change.
- **Community roles:** Schools can serve their communities by acting as recycling centers or drop-off points for local initiatives.

Curriculum and education :

- **Environmental audits :** Students conduct surveys to assess the school's environmental performance, such as energy use, waste production, and water consumption, which helps them understand where improvements can be made.
- **Hands-on learning :** School gardens provide a practical way to teach students about biology, food systems, and responsibility.
- **Teacher training :** Workshops for teachers equip them with the skills to integrate green topics and sustainability concepts into their lessons.
- **Curriculum integration :** Sustainability is embedded in the curriculum, teaching students about climate action and equipping them to be climate-ready citizens.

Conclusion :

The ultimate aim of Green Schooling is to initiate a process that will make students environmentally responsible and improve their quality of lives as adults. It can also present parallel avenues of development for students who are not at the forefront of the academic scene in school. The endeavour is to instil confidence in students and nurture their over all talent and ability.

References :

1. "The Concept of Green Schooling." Pg.25 by Dr. Roopa Vajpayee.
2. Green School Program, Centre for science and environment.
3. Environmental Education, S. S. Sirohi ,Tandon Publications, Ludhiana.
4. www.sciencedirect.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 73-76

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी का साहित्य और नव विमर्श

डॉ. अफीफा फातिमा शेक

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज, चेन्नई, तमिलनाडु।

प्रस्तावना :–

साहित्य किसी भी युग का दर्पण माना जाता है। जिस प्रकार समाज बदलता है, उसी प्रकार साहित्य की दिशा और दृष्टि भी परिवर्तित होती रहती है। इक्कीसवीं सदी का आरंभ न केवल तकनीकी क्रांति और वैश्वीकरण के युग के रूप में हुआ बल्कि यह मानवीय चेतना के नए आयामों को उद्घाटित करने का समय भी है। इस दौर में साहित्य ने परंपरागत प्रश्नों से आगे बढ़कर नए सवाल उठाए हैं। स्त्री की स्वतंत्रता, दलित अस्मिता, आदिवासी जीवन–संघर्ष, पर्यावरण संकट, उपभोक्तावाद, विस्थापन, प्रवासी जीवन और डिजिटल संस्कृति जैसे विषय साहित्य में 'नव विमर्श' के रूप में उभरे हैं।

साहित्य और समाज का संबंध :–

साहित्य और समाज का गहरा संबंध है। साहित्य केवल कल्पना का खेल नहीं बल्कि सामाजिक यथार्थ का कलात्मक पुनर्निर्माण है। भारत जैसे बहुजातीय, बहुभाषी और बहुधर्मी देश में साहित्य ने हमेशा सामाजिक चेतना को दिशा दी है। हिन्दी साहित्य की परंपरा भी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक समाज की समस्याओं को प्रतिबिंबित करती रही है। इक्कीसवीं सदी में यह प्रतिबिंब और भी गहरा और व्यापक हुआ है क्योंकि अब वंचित, हाशिए पर खड़े समुदाय और शोषित वर्ग अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी के साहित्य की प्रवृत्तियाँ :–

इक्कीसवीं सदी के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि –

- विषयों की विविधता बढ़ी है।
- हाशिए की आवाजें साहित्य के केंद्र में आई हैं।
- विमर्श की नई धाराएँ उभरी हैं।
- तकनीक और डिजिटल मंचों के कारण साहित्य का लोकतंत्रीकरण हुआ है।
- कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक के साथ–साथ ब्लॉग, ई–साहित्य और सोशल मीडिया लेखन नए रूप में सामने आए हैं।

प्रमुख नव विमर्श :–

(क) स्त्री विमर्श :–

स्त्री विमर्श साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री लेखन केवल अधिकार की माँग तक

सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने लैंगिक असमानताओं, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर शोषण, दैहिक स्वतंत्रता, प्रजनन अधिकार, समान अवसर और पहचान की लड़ाई को अभिव्यक्त किया है। मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, कुसुम वियोगी, अनामिका, मनीषा कुलश्रेष्ठ आदि लेखिकाएँ इस विमर्श की प्रमुख आवाज हैं। कृष्णा सोबती अपने उपन्यासों में स्त्री के मन की गहराई, जटिलता और संघर्ष को बहुत ही सजीव रूप में दिखाती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल कोमल या कमजोर नहीं, बल्कि साहसी और जुझारू भी है। उनका उपन्यास 'ऐ लड़की' इसका सुंदर उदाहरण है। इस रचना में हमें कई तरह की स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। एक ओर वृद्धा (बुजुर्ग स्त्री) है, जो जीवन के अंतिम क्षणों में भी साहस और आत्मबल से भरी हुई है, दूसरी ओर जया है, जो निराशा और अवसाद से हारकर आत्महत्या कर लेती है। परंतु इन दोनों से अलग और गहरी है रतिका (रत्ती) जो अपने अतीत और मन के घावों से लड़ रही है। रत्ती का बचपन बहुत दर्दनाक रहा है। उसके साथ हुए अत्याचार ने उसके मन के चारों ओर काँटों की बाड़ खड़ी कर दी है। जिस समाज में उसे जीना है, वही उसे "गंदी लड़की" कहकर तिरस्कृत करता है। उसके भीतर का दर्द और अकेलापन धीरे–धीरे क्रोध, जिद और कठोरता में बदल जाता है। वह अपने भीतर की कठोरता और संवेदनशीलता के बीच एक लंबी लड़ाई लड़ती रहती है। "एक लंबी लड़ाई हर बार बाजी हार जाने वाली और हर बार हार न मानने वाली।"[1] उसके भीतर एक शीत पाषाण है, जो उसके दुखों का प्रतीक है, परंतु उसमें अभी भी प्रेम, संवेदना और जीवन की गर्माहट बची हुई है। कृष्णा सोबती ने रत्ती जैसे पात्र के माध्यम से दिखाया है कि जब किसी स्त्री का बचपन और आत्म–सम्मान रौंद दिया जाता है, तब भी वह टूटकर बिखरती नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। वह बाहरी रूप से कठोर दिख सकती है, पर भीतर से बहुत संवेदनशील और जीवट होती है।

(ख) दलित विमर्श :–

दलित साहित्य ने अस्मिता, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की माँग को साहित्य का केंद्र बनाया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, मोहनदास नैमिशराय, तुलसीराम जैसे रचनाकारों ने दलित जीवन की पीड़ा और संघर्ष को स्वर दिया। इक्कीसवीं सदी में यह विमर्श और अधिक मुखर हुआ है। यह साहित्य केवल करुणा नहीं, बल्कि प्रतिरोध की आवाज बन चुका है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी "सलाम" समाज में फैली अस्पृश्यता (छुआछूत) और जातिगत भेदभाव को उजागर करती है। कहानी का मुख्य पात्र कमल उपाध्याय एक ऐसी घटना को याद करता है, जिसने उसके मन पर गहरा असर डाला था। करीब पंद्रह साल पहले, कमल अपने दोस्त हरीश को पहली बार अपने घर लेकर आया था। सब कुछ ठीक चल रहा था, लेकिन जैसे ही उसकी माँ को पता चला कि हरीश की जाति नीची है, वह गुस्से से आग–बबूला हो गईं। उन्होंने कमल को थप्पड़ मारा, हरीश को गालियाँ देकर घर से निकाल दिया, और बाद में घर को गंगाजल से शुद्ध किया। हरीश को "पहली बार लगा था कमल और वह दोनों अलग–अलग हैं। दोनों के बीच कोई फासला है।"[2]

इस घटना से हरीश बहुत आहत हुआ और कमल का बालमन भी टूट गया। उसे पहली बार महसूस हुआ कि समाज में लोग एक–दूसरे को बराबर नहीं समझते। उसके मन में सवाल उठे माँ ने ऐसा क्यों किया? हरीश में क्या कमी है? यह दृश्य दिखाता है कि हमारे समाज में आज भी जाति के आधार पर भेदभाव मौजूद है, जबकि कानून और संविधान ने इसे गलत ठहराया है। कहानी हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि अगर इंसानियत से बड़ी कोई चीज नहीं है, तो फिर यह जाति और छुआछूत का जहर अब तक समाज में क्यों है?

(ग) आदिवासी विमर्श :–

आदिवासी समुदायों की संस्कृति, संघर्ष और विस्थापन की त्रासदी को साहित्य में 'आदिवासी विमर्श' के रूप में जगह मिली। महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, जगदीश गोंड जैसे रचनाकारों ने आदिवासी जीवन की समस्याओं को उठाया। यह विमर्श विकास के नाम पर आदिवासियों के विस्थापन और उनके शोषण को चुनौती देता है। रमणिका गुप्ता जी का काव्य संग्रह 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम' की कविता 'दिलावन–दिलावन' में आदिवासी समाज की दुखभरी जिंदगी को दिखाया गया है। कवयित्री बताती हैं कि ये लोग बहुत मेहनती हैं, पर आज भी जंगलों में रह रहे हैं। उन्हें न तो पढ़ने–लिखने का मौका दिया जाता है और न ही कोई उनके दुख–दर्द को समझता है। बड़े और ताकतवर लोग उन्हें सिर्फ मजदूरी करने के लिए इस्तेमाल करते हैं, जैसे कोई मशीन हो। कवयित्री कहती हैं कि आदिवासी भी इंसान हैं, उनकी भावनाएँ और संवेदनाएँ हैं, लेकिन समाज उन्हें नजरअंदाज कर देता है। रामणिका गुप्ता लिखती है कि–

"गुफाओं से निकले
तभी से वहीं हो
जंगल में जिन्दा रहते अभी हो
तेरी नुमाइश
'उत्सव' लगाते
पिछड़ी लकीरों का
गौरव बताते
न भाषा सिखाते
न लिपियाँ बताते
पीछे समय से
तूझे ले ले जाते
'जंगल का मानुष'
बताते बेजोड़,
दिलावन–दिलावन
आयु–बाबाहोड!'[3]

(घ) पर्यावरण विमर्श :–

वैश्विक तापमान, प्रदूषण, जल संकट, वनों की कटाई और औद्योगीकरण से उत्पन्न संकटों ने साहित्य में पर्यावरण विमर्श को जन्म दिया। पर्यावरण केंद्रित कविताएँ, नाटक और उपन्यास मनुष्य और प्रकृति के बीच बिगड़ते संतुलन पर प्रकाश डालते हैं। निर्मला पुतुल, प्रदीप जिलवाने और अनामिका जैसे लेखक भी अपने लेखन में प्रकृति और स्त्री की साझा पीड़ा को व्यक्त करते हैं। प्रदीप जिलवाने की कहानी 'भ्रम के बाहर' में लेखक ने जलपरी के मध्ययुम से पर्यावरण प्रदूषण के बारे मे बताया है। नदियों पर कारखानों के रासायनिक गंदगी के कारण नदी दूषित हो गई है। कहानी में जलपरी अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती है की "कल घूमते–घूमते नदी से आगे तक निकल गई थी, तो वहाँ पानी इतना विषैला था कि मेरी सांसे लगभग बंद हो गई थी। मैं तत्काल

पलट कर भाग आई। थोड़ी दूर वापिस आई तो कुछ मछलियों ने बताया कि उधर आगे जाकर बहुत सी फैक्टरियो का विषैला रसायन और अपशिष्ट नदी में सीधे जाकर मिलता है, जिससे उस तरह की सारी मछलियाँ पानी में हर साल मर जाती है।"[4]

(ङ) उत्तर–आधुनिकता व वैश्वीकरण :–

उत्तर–आधुनिकता ने साहित्य में केंद्र के विघटन और बहुलता की स्वीकृति को जन्म दिया। अब कोई एक 'सत्य' नहीं है, बल्कि अनेक सत्य हैं। वैश्वीकरण ने बाजारवाद और उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया, जिससे साहित्य में भी नए प्रश्न उठे–क्या मानवीय मूल्य पूँजीवादी व्यवस्था में टिक पाएँगे? हिंदी कथा–साहित्य में यह विमर्श खास तौर पर देखा जा सकता है। उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में उदय प्रकाश की कहानियों को देखें तो इस संदर्भ में कथाकार उदय प्रकाश अपनी 'आवरण' कहानी में लिखते हैं कि– "जिस दौर में हम जीवित हैं, उसमें हमारा जीवन चारों ओर से असंख्य, तरह–तरह की कहानियों के बीच घिरा हुआ है। जैसे हम किसी बाढ़ में डूबे हों। या व्यस्त हाईवे पर ट्रैफिक के बीचों–बीच खड़े हों। चारों ओर किस्सों का शोर और जीवन पर उतने ही खतरे। ऐसा इतिहास में कभी नहीं हुआ था। हर रोज, कई–कई बार, हम अलग–अलग कहानियों के पात्र बन जाते हैं या बना दिये जाते हैं, या फिर किसी अन्य को बनता हुआ देखते हैं। कभी कोई यूनानी त्रासदी, कभी संस्कृत की कादम्बरी, कभी कोई विस्मृत जातक कथा, कभी किसी विदूषक की कौमुदी। किसी गरीब और मामूली आदमी के दुख से उपजाता ऊबे और सुखी लोगों का चुटकुला। और कभी किसी अखबार या टी.वी. चौनल की न्यूज स्टोरी। किसी दुर्घटना या अपराध की दहशत नाक खबर।"[5] इस प्रकार वे हमें अपने समय के उन विकराल परिस्थितियों से परिचित कराते हैं।

(च) तकनीक, इंटरनेट और डिजिटल साहित्य :–

इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा बदलाव है– डिजिटल क्रांति। ब्लॉग, ई–बुक्स, ऑडियो बुक्स, यूट्यूब कवि–गोष्ठियाँ और सोशल मीडिया लेखन ने साहित्य को लोकतांत्रिक बना दिया है। अब कोई भी व्यक्ति अपनी रचना सीधे पाठकों तक पहुँचा सकता है। 'ऑनलाइन साहित्यिक पत्रिकाएँ' और 'हिंदी पॉडकास्ट' साहित्य की नई दुनिया रच रहे हैं।

निष्कर्ष :–

इक्कीसवीं सदी का साहित्य सामाजिक सरोकारों और मानवीय संवेदनाओं का साहित्य है। यह साहित्य अब केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि चेतना जगाने वाला माध्यम बन गया है। स्त्री, दलित, आदिवासी, पर्यावरण, तकनीक और वैश्वीकरण जैसे विमर्शों ने साहित्य को नई दृष्टि दी है। आज का साहित्य हमें यह सिखाता है कि मनुष्य की अस्मिता, समानता और स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा मूल्य है।

संदर्भ सूची :–

1. कृष्ण सोबती, सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 14
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्णन प्रकाशन, पृ. सं. 48
3. रमणिका गुप्ता, अब मूरख नहीं बनेंगे हम, पृ. सं. 42
4. https://share.google/jIR9NoQOX303BEHfn
5. उदय प्रकाश, आवरण, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 23

afeefafathima@stellamariscollege.edu.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 77-79

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कहानीकार प्रज्ञा के कहानी–संग्रह 'काठ के पुतले' में निहित भूमंडलीकरण की अवधारणा

डॉ. सुमंगला वशिष्ठ

एसोसिएट प्रोफेसर, डी. एन. कॉलेज हिसार (हरियाणा)

आज के इस उत्तर आधुनिक समय में पूरा संसार भूमंडलीकरण की गिरफ्त में आ चुका है। इसके सबसे ज्यादा दुष्परिणाम आर्थिक संसार में देखे जा सकते हैं। इसने समाज के आर्थिक रूप को बुरी तरह प्रभावित किया है। इसके परिणाम स्वरुप लोगों में आत्मीयता, प्रेम व लगाव का ह्रास हुआ है। भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव में व्यक्ति अपनी संस्कृति व परिवेश से कटता जा रहा है। इसमें बाजारवाद भी अपनी अहम भूमिका निभा रहा है। इससे मानवीय संवेदना व मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं।

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इन सबसे निजात पाने वाले सभी कर्म को स्पष्ट करते हुए,इन पर विशद विश्लेषण किया है। जब हम आज के इस दौर को ध्यान से देखते हैं तो हम हमें इसमें पूंजीवाद का भी फैलाव दिखाई पड़ता है। इसी कारण से भ्रष्टाचार, आतंकवाद व सांप्रदायिकता का भी प्रसार हो रहा है। यही कारण है कि मूल्य में गिरावट का दौर जारी है। समकालीन कहानीकारों ने भूमंडलीकरण के इस दौर की सभी विंडबनाओ को सूक्ष्मता से परखने का सफल प्रयास किया है।

भूमंडलीकरण का शाब्दिक अर्थ होता है–क्षेत्रीय व स्थानीय घटनाओं या वस्तुओं का विश्व भर में प्रसार होना। यही विश्व ग्राम की परिकल्पना भी है। इसका संबंध देश के बाजारों व उसमें क्रय–विक्रय होने वाली विविध वस्तुओं से भी है। विकसित देश मिलकर विकासशील देशों पर अपनी बाजार नीतियाँ थोपते हैं। विकसित देशों को ही उदारीकरण व भूमंडलीकरण से सबसे ज्यादा लाभ भी प्राप्त होता है। यही बाजारवाद का असली चेहरा है। इसके पीछे अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश हैं। 'बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिनमें से अधिकतर अमेरिकी है, अमेरिकी ढंग की सड़क छाप संस्कृति के भूमंडलीकरण में जुट गई है। पहले स्वयं अमेरिका में हर तरह की क्षेत्रीय विविधता समाप्त की गई और फिर विज्ञापन–विशेषज्ञों के गढ़ द्वारा तैयार की गई समेकित अमेरिकी युवा संस्कृति को सारे संसार में फैलने का अभियान छेड़ दिया गया।।'[1]

कहानीकार प्रज्ञा का कहानी–संग्रह 'काठ के पुतले' आज के यथार्थ की तस्वीर को सामने लाता है। यहाँ पर बाजार और बदलती हुई अर्थव्यवस्था का वर्णन किया गया है जो मनुष्यता का हनन कर रही है। इससे मनुष्य काठ के पुतलों में तब्दील होता जा रहा है। वह ऐसे रूप में ढल चुका है,जहाँ उसके प्रतिरोध करने की क्षमता समाप्त हो चुकी है। वह अपने अधिकारों की भी मांग नहीं कर रहा है।

इस संग्रह की कहानी 'आप कुछ नहीं जानते' में भूमंडलीकरण के प्रचार–प्रसार में मल्टीमीडिया व सोशल मीडिया की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। आज मनुष्य अपने दिन का अधिकांश समय मोबाइल पर ही बीताता है। वह अपने मानवीय संबंधों से इतर फोन में एक ऐसी दुनिया खोजने का प्रयत्न करता है, जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। 'जीवन के सात दशक देख चुके देव प्रकाश की दिनचर्या लगभग नियत थी। वह सबके जाने के बाद बिखरे घर को समेट कर देर तक अखबार पढ़ते, नाश्ता करते, परिवार व दोस्तों को व्हाट्सएप पर सुप्रभात का संदेश और प्रेरक विचार भेजते।'[2] इस प्रकार आम–जनजीवन की दिनचर्या में बढ़ते हुए सोशल मीडिया के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

कहानी 'फील्ड वर्क' में बाजार व भूमंडलीकरण के संबंध पर लेखिका ने प्रकाश डाला है कि किस प्रकार बाजार लोगों को अपनी जाल में फंसाने के लिए षड्यंत्र बुनता है। उन्हें अतिरिक्त का लालच दिया जाता है, जिससे मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी हैसियत से अधिक खर्च कर सके। इस प्रकार वह आजीवन भर बाजार के इस शोषण–चक्र में फंस जाता है। 'अर्थ तंत्र पर उनकी गहरी पकड़ थी। इस किटी पार्टी की योजना में मैसेज चक्रवर्ती ने प्रयोजन ढूंढकर, उसका मनोरंजन से इतर एक आर्थिक पक्ष खड़ा किया। हम बेरोजगार महिलाओं की अच्छी आमदनी का जरिया है यह–किटी। हर माह इसमें एक मोटी रकम इन्वेस्ट करके हम अपनी बारी आने पर उससे एक तगड़ी खरीदारी कर सकते हैं।[3] इस कहानी में बाजार व रुपए की सत्ता के साथ ही भूमंडलीकरण में उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्चस्व को भी दर्शाती हैं। कहानीकार प्रज्ञा स्वयं लिखती हैं, 'बड़े शहर अपने मिजाज में लगभग समान होते हैं। चाहे राजधानी का इलाका हो या उससे बाहर, फिर पिछली सदी के अंत की खास मेहरबानी के चलते उन सभी के भिन्न–भिन्न शहरों पहचान के स्तर पर एक करने के लिए भूमंडलीकरण की विशेष कृपा दृष्टि रही थी।'[4] इस प्रकार प्रज्ञा अपनी कहानियों में आज के समय में पसरे बाजारवाद, उपभोक्तावाद का सह संबंध भूमंडलीकरण के साथ बता रही है और सबका सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं, जिसके सभी प्रभाव हमारे सामने वर्णित है।

वे इसके दुष्प्रभावों से बचने के लिए उपाय भी हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। कहानी 'कैद में बारिश' में वह लिखती हैं, 'अपेक्षाओं की भी एक एक्सपायरी डेट होती है। उसके बाद जो भी कायम रहे वही सच्चा रिश्ता होता है। यह सच लिए चारु मुकुल की नई जिंदगी की शुरुआत हुई।'[5]

वे भूमंडलीकरण से प्रभावित होती युवा–पीढ़ी के संघर्षों का भी वर्णन करती हैं। अपनी कहानी 'काठ के पुतले' में युवा पीढ़ी के नौकरी प्राप्ति हेतु संघर्ष को ब्यान करती हुई लिखती हैं, 'मैं भी तो कोई काम–धंधा ढूँढ लूँ। आखिर ग्रेजुएट हूँ। पार्ट टाइम सेल्स का काम पहले भी किया है। तुम अपनी पैकेजिंग फैक्ट्री की नौकरी में जितना कमाते हो, उसमें मेरी सैलरी भी जुड़ जाएगी तो जीवन और सुख से कटेगा।'[6]

कहानी 'सीताओं की देहरी' में गरीबी व बेरोजगारी से संघर्ष करते हुए दंपत्ति का चित्रण किया गया है, जो बहुत गरीबी में जीवन यापन करने के लिए विवश है। 'राजू के इलाज की खातिर घर बेचना होगा सरोज। सारे सहारे मदद कर के पीछे हट गए। अब यही जमीन आखिरी उम्मीद है। कागज घर में रखे हैं। घर बिकने से पहले सिर्फ एक बार इसे पूरी तरह देख लेने की आस थी। इस घर के बाद मेरा जीवन ही बिखर गया और बेटा...'[7]। इस कहानी में लेखिका ने गरीबी व बाजारवाद की टकराहट से उत्पन्न हुए ऐसे समाज का चित्रण किया है जो भूमंडलीकरण का ही दुष्परिणाम भी है।

कथालोचक रोहिणी अग्रवाल कहती है "प्रज्ञा की खूबी है कि वह अपनी ओर से कोई टीका टिप्पणी किए बिना बाजार के सत्य को इस प्रकार आमने–सामने रख देती हैं कि शेक्सपियरन ट्रेजेडी में प्रयुक्त कॉमेडी प्रभाव की तरह पुराना बाजार नई उपभोक्ता संस्कृति के प्रभाव को गहराने लगता है।"[8]

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि कहानीकार प्रज्ञा ने भूमंडलीकरण की अवधारणा पर बहुत सूक्ष्मता से विचार किया है। आज के समय में हम सब इसके दुष्प्रभाव की गिरफ्त में है। यह भी सच है कि संतुलित रूप मैं हर कोई अवधारणा या सिद्धांत समाज के लिए लाभकारी सिद्ध होता है। समकालीन कहानी भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति आदि की वर्चस्ववादी राजनीति के खतरे से आम जनता को सचेत करती है और इस सचेतनता में समकालीन कहानीकार प्रज्ञा की भूमिका अहम् है।

संदर्भ :–

1. भारत प्रसाद, कविता की समकालीन संस्कृति, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (2017), पृष्ठ–252
2. प्रज्ञा, काठ के पुतले, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (2023) पृष्ठ–9
3. वही–पृष्ठ संख्या 24
4. वही–पृष्ठ संख्या 22
5. वही–पृष्ठ संख्या 50
6. वही–पृष्ठ संख्या 80
7. वही–पृष्ठ संख्या 136
8. रोहिणी अग्रवाल, कहानी का स्त्री समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (2023) पृष्ठ संख्या 223

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 80-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Future prospective of AI and Transformation of Modern Education System

Archana Joshi

Government Degree College Haldwani City,

Kumaun University Nainital Department of History, Nainital (India)

Dhruv Pandey

Cups Nauli Block, Baheri Bareilly, (India)

Deepa Bisht

Government Degree College Haldwani City, Department of Higher Education, Nainital (India)

Abstract :

Through technology advancements, artificial intelligence (AI) in particular has transformed educational procedures. Conversations may be automated and human-like writing can be produced using OpenAI's ChatGPT and other Generative Pre-trained Transformers (GPT). However, questions have been raised concerning their openness and extensive use. This paper explores at how cutting-edge technology are used in the classroom, as well as the obstacles of raising educational standards in the present day and their possibilities for the future. Along with outlining the effects of artificial intelligence (AI) on education and some of its advantages, such as student engagement, evaluation, and tailored learning, it also addresses ethical and privacy issues related using AI for developmental purposes. In addition, it discusses on ethical dilemmas and concerns like disadvantage and privacy.

Keywords : Artificial Intelligence in Education, Chat GPT, Microsoft's Copilot, Synthesia, Magic School.

I. INTRODUCTION :

In 1956, John McCarthy first used the phrase "Artificial Intelligence" to characterize the ability of computer systems to do human tasks that are typically performed by the human mind, such as learning and reasoning (1). Since the 1970s, artificial intelligence in education (AIED) has been revolutionizing the field with the goal of enhancing student accomplishment and learning processes

using AI-powered tools like virtual pedagogical agents and AI robots. AIED also automates daily teaching tasks, such as feedback and assessment. Deep learning technology has significantly improved AI's application in education, offering data-driven decision-making, adaptive exams, and personalized learning experiences. The integration of Learning Management Systems and AI has increased student achievement, improved resource allocation, and enhanced student engagement. (4). However, ethical debates about data privacy, algorithmic bias, and fairness persist. The industrial revolution 4.0 has revolutionized education technology, necessitating accurate financial decisions and expert evaluation(5). AI is transforming education by enabling individualized, student-centered instruction, tailoring lessons based on students' learning preferences and abilities(6). These systems improve learning and motivation by creating personalized learning routes, modifying information according to students' learning preferences and strengths and limitations. With the AI industry in the US predicted to expand by 48% between 2018 and 2022, emerging technologies in education are revolutionizing teaching and learning. Some instructor positions may be replaced by AI, which provides meaningful interactions, dynamic evaluations, and tailored learning (7).

In the last 10 years, technological developments have had a big influence on education, resulting in the creation of sophisticated digital material such as generative artificial intelligence (GAI). Generative Adversarial Networks (GAN) and Generative Pre-trained Transformer are the two primary types of GAI, which are unsupervised or partially supervised frameworks. GAI employs statistics and probability to generate artificial relics from pre-existing digital material (8). OpenAI Chat GPT is a cutting-edge technology that creates text that sounds human and enables users to have conversations that sound human by using vast amounts of digital content data. It can possibly replace human operators by streamlining automated talks, as it has been successfully used to customer support activities (9).

II. LITERATURE REVIEW :

Saini and Goel (2019) and Chen et al. (2020) have conducted surveys on smart classes, focusing on technologies such as smart content preparation, student engagement, assessment, and physical environment. This survey focuses on emerging technologies in conjunction with artificial intelligence in smart classes(10). According to Chen et al. (2022), artificial intelligence (AI) has many applications in education, such as natural language processing, educational robots, intelligent tutoring systems, performance prediction, discourse analysis, teacher assessment, learner emotion recognition, and customized learning. The majority of the statistics in their study are on the use of AI in education, including the number of researchers in each field and the most used AI phrases in the literature (11). The use of AI in smart classrooms was briefly reviewed by Dimitriadou and Lanitis (2022), who also covered important technologies in greater detail and thoroughly discussed the

benefits and drawbacks of this approach (12).

The potential of artificial intelligence (AI) in education, including chatbots and algorithms that mimic human interactions, is examined by **Dimitriadou, E., & Lanitis, A. (2023).** With the goal of offering insights for efficient usage while encouraging responsible and ethical use, it addresses the moral and practical difficulties of integrating AI into education (13). **Gadhoum, Y. (2022)** discusses the transformation of the Global Society, emphasizing the need for future-oriented curricula for a new university paradigm. It suggests developing curricula that adapts to society's needs and employers, preparing students for a competitive economy and improved quality of life. With the use of cutting-edge technology, cooperative education programs, in-field training, and overseas internships, the new university model provides life learners with skills (14). **Zhang, K., & Aslan, A. B. (2021**) reviews 40 empirical studies on artificial intelligence in education (AIEd) published between 1993-2020. It highlights AIEd technologies, applications, benefits, and gaps between AI innovations and education.

The article encourages interdisciplinary collaborations and addressing AI ethics and privacy concerns, highlighting the need for large-scale, longitudinal research and development efforts(15). **Hernandez and de Menendez (2020).** examines how technologies such as virtual and augmented reality, 3D printing, drones, the Internet of Things, robots, artificial intelligence, holograms, wearable technology, virtual laboratories, and blockchain are changing engineering education. These technologies provide engaging and adaptable learning opportunities that promote critical thinking, creativity, problem-solving, inventive thinking, spatial visualization, and analytical and critical thinking. Educating educators and other interested parties about the benefits and drawbacks of these technologies in the classroom is the goal (16). **Celik, F., & Baturay, M. H. (2024)**. Examines the potential of technology and innovation in enhancing education, highlighting challenges and opportunities in integrating technology into practices. It emphasizes the importance of a learner-centered environment and encourages educators to innovate using technology to create meaningful educational experiences, preparing students for a demanding world (17).

III. DISCUSSION: RESEARCH METHODOLOGY :

This study examines the views and data regarding the potential of AI systems in learning environments.

Since new educational technologies enable innovative teaching methods and educational opportunities, their popularity is growing. These technologies allow students to access pre-made content and allow professors to develop personalized content. Utilizing databases and online resources like Google Scholar, Science Direct, WoS, and Scopus. The competent literature was thoroughly reviewed. Among the titles the search engine searched for was "Emerging technologies for teaching

and learning". The purpose of the present research work is to review and analyze the development of the contemporary educational system by assessing the scope of current research on new educational technologies. Using keywords, the study searched the Scopus database for papers. The abstracts of the articles that did not connect to the chosen topic were removed for final selection. In the end, 33 papers in all were taken into consideration.

AI tools for Education

- **Chat GPT and Microsoft Copilot :**

Chat GPT, a new generation of artificial intelligence, is revolutionizing society by reshaping communication, production, and life modes. AI-generated content (AIGC) chatbots, like Microsoft Xiaoice and Google Siri, have continuously developed and innovated since Eliza's emergence. Future technologies may change chatbots and user experience, focusing on content generation rules. AIGC products are closely integrated with daily lives, influencing behavior patterns and promoting continuous learning innovation (18). Chat GPT is a large language model (LLM) that uses big data, computing power, and algorithms to extract valuable information from text data. It aims to create complex, human-like dialogues using natural language. While Chat GPT has the potential to revolutionize human lifestyles, it also has potential negative impacts, such as job replacement, increased unemployment rates, and reliance on artificial intelligence. It also has academic interest due to its ability to understand semantic meaning, provide coherent feedback, and modify answers based on user feedback(19).

- **Microsoft's Copilot :**

Microsoft's Copilot is a chatbot that enhances productivity and creativity in Microsoft 365 applications. It uses AI algorithms to generate content, summarize information, and streamline tasks. Copilot includes chat, summarization, image creation, web grounding, and commercial data protection. Copilot is a generative AI tool that aids in classroom teaching by saving time, enhancing instruction, and creating resources for different learning levels. It supports personalized learning, brainstorms ideas for activities, lesson plans, and assessments, and provides feedback for students. Copilot also offers quick answers to questions and provides links to content sources for further analysis. It can be used in five ways: personalized learning, brainstorming, lesson planning, providing feedback, and assessing content sources (20).

- **Synthesia :**

The immersive learning experience for students is being revolutionized by the latest technology, such as Synthesia AI. Synthesia AI's sophisticated machine learning algorithms enable it to produce lifelike video material with different languages, accents, and even emotional tones spoken by virtual actors and presenters (21).

It is a useful tool for creating educational videos featuring AI avatars, allowing for clear and visually appealing explanations. It's particularly beneficial for ESL learners, saving time and providing a polished look, enhancing the professionalism and engagement of the videos.

- **Magic School :**

Magic School is a useful AI tool for teaching, enabling scaffolding, adjusting reading levels, simplifying complex texts, and creating personalized rubrics. It also offers a spiral math review generator for specific skills. Although it requires thorough proofing, it streamlines routine tasks and allows teachers to focus on engaging with students. A generative AI platform called MagicSchool help teachers differentiate instruction to match the requirements of their pupils with minimal preparation time. Teachers can save money and time by using this tool. (22).

Magic School AI enhances student-centered learning by providing interactive, customized content, reducing administrative tasks, and promoting ethical use and data privacy, allowing teachers to focus on meaningful instruction (23).

- **Diffit for Teachers :**

An artificial intelligence tool called Diffit for Teachers enables educators to diversify instruction using either teacher-generated content or the current curriculum.. It can reveal customized vocabulary, questions, and translations, scaffold lessons for specific reading levels, and build background knowledge activities (24). Diffit is a user-friendly tool for creating leveled reading activities, allowing teachers to adapt texts for different reading abilities. It offers a variety of worksheet formats and is intuitive. Diffit has a free version and a premium version with pricing tied to school size.

- **Dream box Learning :**

Dreambox Learning is a flexible platform that offers pupils individualized tutoring in reading and arithmetic. Algorithmic prejudice and data privacy are issues, though. Personal data is gathered and stored by the site, which may leave it vulnerable to unwanted access. Furthermore, biased algorithms may worsen already-existing learning gaps, lead to less effective education, and have a detrimental influence on students' academic advancement.

Impact of AI in Education :

Artificial Intelligence (AI) is revolutionizing the education system by addressing challenges and accelerating progress towards SDG 4 (Promoting quality education) (25). AI has integrated digital apps for teacher interaction, gathers and analyzes data, and provides educators with information about student engagement, learning progress, and well-being. By analyzing each person's unique strengths and shortcomings, it may use tailored learning algorithms to maximize the teaching and learning

process. AI can produce interactive learning environments and virtual reality experiences that improve comprehension retention and encourage global engagement (26).

Artificial Intelligence (AI) is revolutionizing education by enhancing learning processes through advanced algorithms and data analysis. AI-driven chatbots help students with their schoolwork, offer advice on course materials, and instantly respond to their questions. AI-driven grading systems reduce instructor effort and provide quicker feedback by automating the grading of assignments and tests (27). Overall, the benefits provided by AI are revolutionizing teaching and learning, offering diverse opportunities for learners worldwide, regardless of individual circumstances(28). Current AI educational tools offer personalisation of learning pathways, but this interpretation is limited. Personalisation focuses on subjectification and helping students achieve their potential, self-actualize, and enhance their agency. Most AI educational tools drive homogenization, aiming to ensure students pass exams and prepare for their roles in the world of work. Three issues need to be noted: the personalisation agenda assumes it is only possible with technology, individual pathways are based on averages of prior learners, and education is about collaboration and social interaction, which are often ignored by current AI educational systems(29). AI-powered assessment and evaluation is revolutionizing the education system by improving accuracy, efficiency, and fairness. It allows for more accurate student learning measurements, individualized learning processes, and automates administrative tasks like test evaluation. AI also saves time by providing instant feedback and improves physical and cyber security through biometric solutions.

Ethical Issues in AI-Powered Learning :

There are now more than 80 ethical AI principles as a result of the increased focus on AI ethics in recent years. Human rights are key to these ideas, which take a rights-based approach. Nevertheless, there is a dearth of published research on AI ethics in education. Unlike learning analytics, the majority of AI research in education has not addressed possible ethical ramifications. No suitable legislation have been passed worldwide, despite European enthusiasm in creating standards and regulations. A Council of Europe report examines the human rights implications of AI and education (30). The ethics of learning analytics and AI-driven education extend beyond data and computational methods. It also entails discussing the ethics of education, encompassing knowledge, pedagogy, assessments, and the agency of teachers and students. Because AI in education and learning plays important societal roles and strives for human development, it presents both conceptual and practical ethical concerns. As a result, an ethical framework for AI in education ought to begin with human development and learning before becoming more explicit about implicit models of growth and development (31). *Some of the issues are discussed below :*

- AI's potential to revolutionize education presents ethical challenges like privacy, surveillance, bias, and human judgment. As AI becomes more widespread, it's crucial to educate teachers and students on these issues.
- AI in education raises concerns about privacy invasion and surveillance issues. With more student data collected and stored on AI platforms, schools must ensure confidentiality to prevent breaches. Additionally, the increasing use of facial recognition technology may lead to unethical tracking of students.

AI's Future in Education and Its Prospective :

In the digital era, education has evolved, with students accessing research and learning quickly and efficiently. Young children use smartphones and apps for educational projects, and digital resources like books, audiobooks, and videos. Collaboration and sharing of presentations are possible using technology-based tools like wikis, Google Docs, and AI tools. Schools in the USA are transforming teaching methods to use technological apps like NLP and machine learning algorithms, ChatGPT, AI presentation makers, and AITG to enhance learning skills and create original content. While generative artificial intelligence (GAI) has promise for transforming educational teaching and learning methods, it also presents ethical issues and difficulties. With the widespread use of GAI tools like GPT-4 and Open Assistant, learning and knowledge acquisition are undergoing a paradigm change that offers significant obstacles to conventional teaching methods and the role of educators. Chat GPT and other GAI technologies have the potential to change computer science education, but there are obstacles to overcome, such as the need to react to potential effects and prospective competition for computer science teachers.

Nonetheless, GAI can also provide educators the chance to use technology to create encouraging learning environments. Using generative chatbots in higher education can improve learning outcomes and make deployment easier. However, investigating the most effective methods and approaches for using GAI for teaching is essential.

Numerous studies have examined the potential benefits of using GAI in education, including its transformative impact in specific educational fields, its impact on learning, teaching, assessment, and management, and its utility in various educational settings. However, this study focuses on the challenges and limitations of using GAI in education, highlighting the need for careful consideration and strategies for its effective implementation (32).

IV. CONCLUSION :

Artificial Intelligence (AI) has been transforming education since the 1970s, improving learning processes and student achievement through virtual pedagogical agents and AI robots. Deep learning

technology has further enhanced AI's application in education. Higher education has been significantly impacted by AI, offering data-driven decision-making, adaptive exams, and personalized learning experiences. The integration of Learning Management Systems (LMS) and AI has led to increased student achievement and quality. However, ethical debates persist regarding data privacy, algorithmic bias, and fairness. The AI industry in the US is predicted to expand by 48% between 2018 and 2022, with some instructor positions potentially replaced by AI. Emerging technologies in education, such as generative artificial intelligence (GAI), are revolutionizing teaching and learning.

This study examines the potential of AI systems in learning environments, focusing on emerging technologies in conjunction with artificial intelligence in smart classes. The research aims to provide insights for effective use while promoting responsible and ethical use. The study also discusses the transformation of the Global Society, emphasizing the need for future-oriented curricula that adapt to society's needs and employers. Chat GPT and Microsoft Copilot are two AI tools for education that are revolutionizing communication, production, and life modes. Chat GPT uses big data, computing power, and algorithms to extract valuable information from text data, while Microsoft's Copilot enhances productivity and creativity in Microsoft 365 applications. Copilot uses AI algorithms to generate content, summarize information, and streamline tasks, enhancing instruction and creating resources for different learning levels.

The study emphasizes the importance of a learner-centered environment and encourages educators to innovate using technology to create meaningful educational experiences. The study also highlights the need for interdisciplinary collaborations and addressing AI ethics and privacy concerns.

REFERENCES :

1. Flogie, A., &Aberšek, B. (2022). Artificial intelligence in education. Active Learning-Theory and Practice.
2. Abbasy, M. B., & Quesada, E. V. (2017). Predictable influence of IoT (Internet of Things) in the higher education. International Journal of Information and Education Technology, 7(12), 914-920.
3. Alotaibi, N. S. (2024). The Impact of AI and LMS Integration on the Future of Higher Education: Opportunities, Challenges, and Strategies for Transformation. Sustainability, 16(23), 10357.
4. Karyy, O., Novakivskyi, I., Kis, Y., Kulyniak, I., &Adamovsky, A. (2023). Model of Educational Process Organizing Using Artificial Intelligence Technologies. In COLINS (3) (pp. 332-347).
5. Rerhaye, L., Altun, D., Krauss, C., & Müller, C. (2021, July). Evaluation methods for an AI-supported learning management system: quantifying and qualifying added values for teaching and learning. In International Conference on Human-Computer Interaction (pp. 394-411). Cham: Springer International Publishing.
6. Bisht, D., Singh, R., Gehlot, A., Akram, S. V., Singh, A., Montero, E. C., ... & Twala, B. (2022). Imperative

role of integrating digitalization in the firms finance: A technological perspective. Electronics, 11(19), 3252.

7. Edwards, B. I., & Cheok, A. D. (2018). Why not robot teachers: artificial intelligence for addressing teacher shortage. Applied Artificial Intelligence, 32(4), 345-360.
8. Jovanovic, M., & Campbell, M. (2022). Generative artificial intelligence: Trends and prospects. Computer, 55(10), 107-112.
9. Kalla, D., Smith, N., Samaah, F., &Kuraku, S. (2023). Study and analysis of chat GPT and its impact on different fields of study. International journal of innovative science and research technology, 8(3).
10. Saini, M. K., & Goel, N. (2019). How smart are smart classrooms? A review of smart classroom technologies. ACM Computing Surveys (CSUR), 52(6), 1-28.
11. Chen, L., Chen, P., & Lin, Z. (2020). Artificial intelligence in education: A review. Ieee Access, 8, 75264-75278.
12. Dimitriadou, E., &Lanitis, A. (2022, June). The role of artificial intelligence in smart classes: A survey. In 2022 IEEE 21st Mediterranean electrotechnical conference (MELECON) (pp. 642-647). IEEE.
13. Dimitriadou, E., &Lanitis, A. (2023). A critical evaluation, challenges, and future perspectives of using artificial intelligence and emerging technologies in smart classrooms. Smart Learning Environments, 10(1), 12.
14. Gadhoum, Y. (2022). A Proposed Model of a Future University in the Era of the Artificial Intelligence Transformative Society: From Why to How. Creative Education, 13(3), 1098-1
15. Zhang, K., & Aslan, A. B. (2021). AI technologies for education: Recent research & future directions. Computers and Education: Artificial Intelligence, 2, 100025.
16. Hernandez-de-Menendez, M., Escobar Díaz, C., & Morales-Menendez, R. (2020). Technologies for the future of learning: state of the art. International Journal on Interactive Design and Manufacturing (IJIDeM), 14(2), 683-695.
17. Çelik, F., & Baturay, M. H. (2024). Technology and innovation in shaping the future of education. Smart Learning Environments, 11(1), 54.
18. Hill-Yardin, E. L., Hutchinson, M. R., Laycock, R., & Spencer, S. J. (2023). A Chat (GPT) about the future of scientific publishing. Brain, behavior, and immunity, 110, 152-154.
19. Cheng, K., He, Y., Li, C., Xie, R., Lu, Y., Gu, S., & Wu, H. (2023). Talk with ChatGPT about the outbreak of Mpox in 2022: reflections and suggestions from AI dimensions. Annals of Biomedical Engineering, 51(5), 870-874.
20. Adetayo, A. J., Aborisade, M. O., & Sanni, B. A. (2024). Microsoft Copilot and Anthropic Claude AI in education and library service. Library Hi Tech News.).
21. Joseph, J. (2023). Assessing the potential of laboratory instructional tool through Synthesia AI: a case study on student learning outcome. International Journal of e-Learning and Higher Education (IJELHE),

18(2), 5-16.

22. Foster, A., Khazanchi, P., & Khazanchi, R. (2024, March). MagicSchool. ai: A Personal Assistant. In Society for Information Technology & Teacher Education International Conference (pp. 74-80). Association for the Advancement of Computing in Education (AACE)
23. Lozano, J. R., Ramos, Y., en Tecnologia, E., & Cruz, C. E. C. (2024). Enhancing English Language Teaching Through AI: The Case of Magic School AI.
24. Kwid, G., Sarty, N., & Yang, D. (2024). A Review of AI Tools: Definitions, Functions, and Applications for K-12 Education. AI, Computer Science and Robotics Technology.
25. Victoria, A.; Martín, D. Digital Education Deployment in Developing Countries in the Context of a New Digital Economy Based Society. 2023. Available online: https://repositorio.comillas.edu/xmlui/handle/11531/77588 (accessed on 4 November 2024).
26. Mogavi, R. H., Deng, C., Kim, J. J., Zhou, P., Kwon, Y. D., Metwally, A. H. S., ... & Hui, P. (2024). ChatGPT in education: A blessing or a curse? A qualitative study exploring early adopters' utilization and perceptions. Computers in Human Behavior: Artificial Humans, 2(1), 100027.
27. Özer, M. (2023). Potential Benefits and Risks of Artificial Intelligence in Education. Bartin University Journal of Faculty of Education, 13(2), 232-244.
28. Punar Özçelik, N., & Yangin Eksi, G. (2024). Cultivating writing skills: the role of ChatGPT as a learning assistant—a case study. Smart Learning Environments, 11(1), 10.
29. Blanchard, E. G. (2015). Socio-cultural imbalances in AIED research: Investigations, implications and opportunities. International Journal of Artificial Intelligence in Education, 25, 204-228.
30. Holmes, W., & Porayska-Pomsta, K. (2023). The ethics of artificial intelligence in education. Routledge Taylor.
31. Turing, A. M. (2009). Computing machinery and intelligence (pp. 23-65). Springer Netherlands.
32. Kayyali, M. (2024). Future possibilities and challenges of AI in education. In Transforming education with generative AI: Prompt engineering and synthetic content creation (pp. 118-137). IGI Global Scientific Publishing.

doctorarchanajoshi1985@gmail.com
pandeyjipbt@gmail.com
Deepabisht.bisht2@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 90-91

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संवेदनात्मक साहित्यकार : डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल'

डॉ. करिं सुधा

प्राचार्य, सरकारी महिला महाविद्यालय,

मरिंपालेम्, अल्लूरि सीतारामराजू जिला, आंध्रपदेश।

डॉ. नरेश सिहाग 21वीं सदी के प्रमुख साहित्यकार हैं। वेदना से परे संवेदना के धरातल पर जो साहित्कार सदा विचरण करता है, उनकी कृतियॉ कालजयी का रूप धारण करते हैं। सिहाग जी की रचनाऍ समकालीन समाज के जमीनी जुड़ाव रखते हुए भी आदर्श समाज की स्थापना के प्रति ओतप्रोत है। सिहाग जी की सुप्रसिद्ध कृतियॉ 'अपने देश की माटी', तथा 'जिंदगी जीने के वास्ते' कहानी संग्रह जीवन और समाज के अटूट संबंध के ज्वलंत प्रमाण हैं। इनके कहानी संग्रह आदर्शवाद को उजागर करते हैं। मानव मूल्य तथा देशभक्ति का विकास इनकी कहानियों के माध्यम से अवश्य पूरित होता है।

'सीता की ही परीक्षा क्यों' जैसी कहानी के माध्यम से जनता की दृष्टि तथा सोच में नया बदलाव आने की संभावना है। इनका कहानी संग्रह भारतीय संस्कृति की गरिमा का प्रकाश में लाने का सफल प्रयास है। 'दहलीज' कहानी आधुनिक नारी जीवन के घर–बाहर की समस्याओं के प्रति प्रकाश डालती है। नारी स्वतंत्रता के प्रति लेखक बहुत श्रद्धा दिखाते है। 'मिलाप' कहानी मानवीय संबंधों का ज्वलंत प्रमाण है। चाहे भौतिक रूप से हम कितने भी दूर में रहे मानसिकता से बहुत निकट रह सकते हैं। कुछ संबंध इतना जुड़ जाते हैं कि उनको छोड नहीं सकते।

'शिकार–शिकारी', 'धूप मांगती छॉव' और 'अकेली संतान' आदि कहानियॉ मानवीय संबंधों के प्रति, समाज में व्याप्त शोषण तथा संघर्ष आदि विषयों को दृष्टि में रखकर लिखी गयी कहानियॉ हैं। शोषित एवं उत्पीड़ित जनता की पीड़ा का जीता जागरूक चित्रण इन कहानियों के माध्यम से किया गया है। यहॉ पर सिहाग जी की संवेदना हमें अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप से प्रदर्शित होती है।

इस कहानी संग्रह की कहानियॉ भारत के देशभक्त नागरिक के प्रतीक हैं। देश के विकास में अपना योगदान देने वाले पात्र हैं। मानव संबंध तथा अस्तित्व की चर्चा की गयी है। साथ–साथ ह्रासोन्मुख मानव मूल्य

तथा अस्तित्व की आवश्यकता पर इनकी कहानियॉ आधारित हैं। कहानी संग्रह की विषय–वस्तु और मूल भाव देश भक्ति एवं भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के विकास पर आधारित है। कहानीकार यह स्पष्ट करता है कि हर व्यक्ति, स्वार्थ से परे होकर समाज एवं देश के प्रति बाध्य रहना चाहिए। कहानी संग्रह के शीर्षक 'अपने देश की माटी' तथा 'जिंदगी जीने के वास्ते' बहुत प्रभावित शीर्षक है। माटी यहॉ देशभक्त का प्रतीक है। डॉ. सिहाग की यह कहानी संग्रह मानव जीवन के वास्तविक विकास का संदेश देती है। कहानी संग्रह की भाषा सरल, स्वच्छ और प्रभावशाली है। कवि की आशावादी मानसिकता मानव के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की कामना करता है। इनकी कहानियॉ प्यार, संघर्ष तथा प्रेरणा का सुंदर सम्मिश्रण है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 92-97

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर विमर्श डॉ. सिहाग की कहानियों के विशेष संदर्भ में

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)–210204

शोध सार –

डॉ. नरेश सिहाग इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने समाज के हाशिए के वर्गों विशेषकर किन्नर समुदाय को अपनी कहानियों के केंद्र में रखा है। उनके लेखन में किन्नर विमर्श के अंतर्गत मानवीय संवेदना, सामाजिक यथार्थ और समानता की भावना का सशक्त प्रस्तुतीकरण किया गया है।

विमर्श सामान्यतः ऐसी चर्चा या परिचर्चा है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है। जिसका उद्देश्य किसी तर्कपूर्ण परिणाम या निर्णय तक पहुँचना होता है। किन्नर विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य में एक उभरता हुआ सामाजिक–सांस्कृतिक विचारधारा पर आधारित अस्तित्व मूलक विमर्श है। यह विमर्श किन्नर या ट्रांसजेंडर समुदाय के जीवन, संघर्ष, अस्मिता और समाज में उनके स्थान पर केंद्रित है।

स्त्री–विमर्श ने जिस तरह महिलाओं की स्थिति को लेकर जागरूकता फैलाया वैसे ही किन्नर विमर्श समाज में उस वर्ग के लिए आवाज उठाता है जिसे अब तक मुख्यधारा से बाहर रखा गया था।

डॉ. सिहाग की कहानियों में किन्नर समुदाय का चित्रण केवल दया या करुणा के भाव से नहीं बल्कि, सम्मान, अस्मिता और समानता की दृष्टि से किया गया है। उनके लेखन में किन्नर एक जीवंत, संघर्षशील और आत्मगौरव से भरा हुआ पात्र बनकर सामने आता है।

इस शोध पत्र में डॉ. सिहाग के कहानी संग्रह 'बहुत तेज भागती है जिंदगी' के माध्यम से किन्नर विमर्श की साहित्यिक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करने तथा सामाजिक धारणाओं को तोड़कर किन्नरों को समाज में बराबरी का अधिकार दिलाने की जो बात कही गई है, उसी का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि, डॉ. सिहाग की रचनाएँ हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श को एक नई वैचारिक दिशा भी प्रदान करती हैं।

बीज शब्द – किन्नर, थर्ड जेंडर, विश्लेषण, पुरुषत्व गुण, बीज, उत्तराधिकारी, विमर्श, उपेक्षित, तिरस्कार।

प्रस्तावना –

भारतीय समाज विविधताओं से भरा हुआ है। समाज धार्मिक–सामाजिक मान्याताओं, विचारों, भाषा, संस्कृति, परंपरा और लिंग की दृष्टि से भी बहुवर्णीय है। ऐसे विविधतामयी वातावरण में एक ऐसा समुदाय भी शामिल है जिसे मुख्यधारा से लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया है, वह किन्नर समुदाय है। किन्नर जिन्हें समाज

प्रायः थर्ड जेंडर कहकर अलग वर्ग में रखता है। भारतीय इतिहास में यह वर्ग कभी पूजनीय तो कभी तिरस्कृत रहा है। आधुनिक समय में जब समाज विभिन्न अस्मिता विमर्शों जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श और विकलांग विमर्श को महत्त्व दे रहा है तो किन्नर विमर्श ने भी साहित्य और समाज में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करानी कराई है।

साहित्य में समाज का ही वर्णन किया जाता है, किन्तु साहित्य ने भी काफी वक्त तक किन्नरों की पीड़ा को अनदेखा किया था। किंतु उत्तर–आधुनिक काल में जब अस्मितामूलक विमर्शों जैसे दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श ने साहित्य में स्थान प्राप्त करने लगे तो किन्नर विमर्श भी एक नए अस्मितामूलक विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है। इस विमर्श का उद्देश्य समाज के हाशिए पर खड़े वर्ग को स्वर देना है, जो अब तक मौन रहा या जिसकी आवाज दबाई गई।

मुंशी प्रेमचंद जी ने अपने विख्यात उपन्यास गोदान में किन्नर के गुणों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि, यदि एक पुरुष में स्त्रियों वाले गुण होते तो पुरुष महान हो जाता है, महात्मा हो जाता है।

किन्नर विमर्श का प्रयोजन केवल इस वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को चित्रित करना नहीं है बल्कि, उन्हें समाज की मुख्यधारा में समान अधिकार और मानवीय गरिमा के साथ स्थापित करने की दिशा में विचार प्रस्तुत करना भी है। साहित्य इस विमर्श को नवीन दिशा और नई संवेदना प्रदान करता है क्योंकि, वह समाज का दर्पण होने के साथ–साथ परिवर्तन का माध्यम भी है।

इस संदर्भ में डॉ. सिहाग की कहानियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं। उनकी रचनाओं में किन्नर पात्र मात्र सहानुभूति के पात्र नहीं अपितु जीवंत और संवेदनशील मनुष्य के रूप में चित्रित किए गए हैं। डॉ. सिहाग ने अपनी कहानियों में किन्नर वर्ग के सामाजिक बहिष्कार, अस्तित्व–संघर्ष, आत्मसम्मान, प्रेम, और मानवीय आकांक्षाओं को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका दृष्टिकोण न तो दया का है और न ही करुणा तक सीमित है बल्कि, वह एक समानता–आधारित मानवीय दृष्टि से किन्नर जीवन को देखना है।

विमर्श से अभिप्राय –

विमर्श से तात्पर्य किसी विषय पर गहन विचार, विश्लेषण और चर्चा से है। यह केवल सतही जानकारी या वर्णन नहीं होता बल्कि, किसी विषय को विभिन्न दृष्टिकोणों, संदर्भों और सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं से विवेचनात्मक रूप से समझना और प्रस्तुत करना होता है।

'विमर्श अंग्रेजी शब्द 'डिस्कोर्स' (Discourse) का हिन्दी अनुवाद है। जो लैटिन शब्द 'डिस्कर्सस' (Discursus) से व्युत्पन्न है, जिसका शाब्दिक अर्थ बहस, वार्तालाप, संवाद और विचार विनिमय है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में 'डिसकोर्स' शब्द का अर्थ भाषण या बातचीत है। इस शब्द की व्युत्पत्ति व़िमृद्घञ् से मानी जाती है, जिसका अर्थ है – बातचीत, भाषण या प्रवचन।'

विमर्श जीवन पर्यन्त चलने वाली बहस को कहा जाता है जिसका लक्ष्य तर्कपूर्ण परिणाम को प्राप्त करना होता है।

विमर्श की परिभाषाओं के संबंध में सभी विद्वानों एवं समाजशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद है। जिनमें कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :–

सप्त ऋषियों के कथन के अनुसार विमर्श का अर्थ विचार–विमर्श करना है। तदनुसार, जैसा कि पहाड़ों

ने हिमवत (हिमाचल) से कहा– "अब लंबी चर्चा और विचार–विमर्श (विमर्श) से क्या लाभ? जो किया जाना चाहिए वह केवल यही है। वह केवल देवताओं के उद्देश्य के लिए पैदा हुई है। शिव के लिए अवतार लेकर, वह शिव को दी जाएंगी। शिव उससे प्रसन्न हुए हैं और शिव ने उससे बात भी की है।"

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि शिवपुराण में विमर्श का आशय विचार से है अर्थात् विमर्श लोगों के विचारों की उपज है।

नामवर सिंह के अनुसार – 'विमर्श का मतलब किसी एक वस्तु के बारे में लोगों से बातचीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है, यह तरीका मिल–जुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाता है।'1

नामवर ने विमर्श को लेकर जो भाव प्रकट किए हैं उससे मतलब बातचीत करने के तरीके के रूप से है। उनका कहना है कि, यह तरीका लोगों की धारणाओं को बनाता है।

किन्नर विमर्श : एक परिचय–

किन्नर हिन्दी के दो शब्दों 'किं' और 'नर' से मिलकर बना है। 'किं' का अभिप्राय है किंचित और 'नर' से मतलब पुरुष से है। इससे तात्पर्य उस वर्ग से है जो पूर्णरूपेण न स्त्री है और न पुरुष है अर्थात् जो स्त्री एवं पुरुष दोनों की शारीरिक बनावट से युक्त हो वही किन्नर हैं।

किन्नर की संरचना एवं किन्नर शब्द के अर्थ को लेकर विद्वानों मतैक्य नहीं है। उन्होंने अपने–अपने मतानुसार परिभाषित किया है–

पाणिनी कृत अष्टाध्यायी में लिंगानुशासन के अनुसार – 'स्तनकेशवती स्त्री स्यालांश रू पुरुषः स्मृतः उभयोन्तरः पच्च नपुंसकः।'[4]

महार्षि पाणिनी ने कुछ इस प्रकार से किन्नर को परिभाषित करने का कार्य किये हैं कि, जिनके स्तन और बाल हों वह स्त्री कहलाती हैं और जिनके पुरुषत्व के गुण होते हैं वह पुरुष माने जाते हैं। किन्तु जो इन दोनों के बीच का होता है वह नपुंसक कहलाता है।

महर्षि मनु ने अपनी पुस्तक मनुस्मृति किन्नर को परिभाषित करते हुए कहा है कि, 'शारीरिक शक्तियों को तीन लिंगों में विभाजित किया है। पहला पुरुष बीज की प्रधानता से पुरुष शिशु की उत्पत्ति होती है, स्त्री बीज की प्रधानता से स्त्री शिशु होता है। जिसमें स्त्री–पुरुष में समान रूप से बीज हों तो किन्नर उत्पन्न होता है।'[5] इस प्रकार महर्षि मनु ने भी कहा है कि, जिन शिशुओं के जन्म में स्त्री एवं पुरुष के समान बीज पाये जाते हैं वे शिशु किन्नर के रूप में जन्म लेते हैं।

किन्नर विमर्श समाज में लिंग, पहचान और समावेशिता से जुड़े विचारों और बहसों का अध्ययन है। यह मुख्यतः उन लोगों के अनुभवों, अधिकारों और संघर्षों पर केंद्रित होता है जो पारंपरिक पुरुष और महिला के लिंग बाइनरी से अलग हैं। प्राचीन भारतीय समाज में किन्नरों को विशिष्ट धार्मिक और सामाजिक भूमिकाएँ मिली थीं, लेकिन आधुनिक समय में उन्हें अक्सर भेदभाव और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है।

किन्नर विमर्श केवल लैंगिक पहचान तक सीमित नहीं है, यह शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और कानूनी अधिकारों जैसे सामाजिक मुद्दों को भी छूता है। इस प्रकार से किन्नर विमर्श में किन्नरों से सम्बन्धित समस्याओं का विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत किन्नर वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक आदि सभी पक्ष सम्मिलित होते हैं।

डॉ. सिहाग की कहानियों में किन्नर विमर्श –

डॉ. सिहाग की कहानियाँ मुख्यतः समाज के ऐसे वर्ग से सम्बन्धित हैं जिन्हें संविधान में अनुच्छेद 14 के तहत समानता का अधिकार प्राप्त होते हुए भी समाज के साथ–साथ परिवार के लोगों द्वारा भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

डॉ. सिहाग की कहानियों में कुछ इस प्रकार किन्नरों की स्वीकृतिमूलक समस्या को उजागर किया गया है– 'अरे ये क्या जन्म लिया है? न लड़का न लड़की, अशुभ है!

माँ छुपाकर उसके लिए लड़कियों के कपड़े लाती और पिता शराब में डूबकर कहते 'भगवान ने गलती की है, पर मैं नहीं सहूँगा ये शर्म।'

आखिर एक दिन गाँव में किन्नर आए और पिता ने दरवाजा बंद कर कहा – 'ले जाओं इसे, अब ये तुम्हारा है।'[6]

सिहाग जी की कहानी का उक्त अंश में किन्नर जीवन की विडंबना परिलक्षित होती है। बच्चे जिन्हें ईश्वर का वरदान माना जाता है किन्तु हमारे समाज की कुप्रथाओं ने उन्हें भी उपेक्षा का शिकार बना दिया क्योंकि, वे बच्चे स्त्री या पुरुष न होकर जन्म से ही किन्नर के रूप में रहते हैं। इसमें भला उनका क्या दोष है जिसकी सजा उन्हें दी जाती है। यह प्रकृति या ईश्वरीय निर्मित की कमी का परिणाम है। दोमुंहे समाज को फ्यूजन संगीत, भोजन या वस्त्र विन्यास मान्य हैं लेकिन उभयलिंगी गुण युक्त मानव भार हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के संबोधन हेतु प्रयुक्त शब्द सामाजिक गाली बन चुका है।

किन्नर शिशु को घर में रखकर पालन–पोषण करना और उसकी जिम्मेदारी को निभाना पिता अपने लिए शर्म की बात समझते हैं। यह स्थिति किसी एक बच्चे के साथ नहीं है बल्कि, सम्पूर्ण किन्नर वर्ग की है।

हमारे शिक्षित समाज में लड़कों को कुल का उत्तराधिकारी माना जाता है लड़कियों को घर की लक्ष्मी माना जाता है किन्तु, उसी गर्भ से जन्म लेने वाली वह संतान जो मानसिक रूप से तो समान है पर शारीरिक रूप से इन दोनों से अलग होने के कारण उसे घर में रखने से घर, परिवार या समाज का नाम खराब होने लगता है और उसे घर से निकाल दिया जाता है। इसका उदाहरण कुछ इस प्रकार डॉ. सिहाग ने प्रस्तुत किया है– 'गाँव के लोग कहते – 'लड़का है पर चाल लड़की जैसी है।'

धीरे–धीरे ताने बढ़ते गए हँसी–ठिठोली अपमान में बदल गई। एक दिन पिता ने कहा –

'हमारे घर का नाम मत खराब कर, जा जहाँ तेरा मन हो।'

वह चली गई बिना कुछ कहे सिर्फ एक छोटी मूर्ति और माँ की तस्वीर लेकर।'[7]

'त्योहार क्या चीज हमारे लिए?

वह खुद से पूछती है।

हर दिन तो किसी और के त्योहार की बधाई बनकर बीत जाता है।

कभी शादी में आशीर्वाद देती है, कभी बच्चे के जन्म पर झूमती है।

हर बार लोग करते हैं, आपकी दुआ से खुशियाँ आई हैं,

पर क्या किसी ने कभी पूछा कि, तुम्हारी खुशियाँ कहाँ है?'[8]

किन्नर वर्ग जिन्हें समाज द्वारा तिरस्कृत किया गया है उसी समुदाय को हमारी धार्मिक मान्यताओं के

अनुसार कहीं–कहीं शुभ या खुशियों को प्रदान करने वाला भी माना गया है। किन्तु हमारे समाज के स्वार्थी लोगों ने अपनी खुशियों के आगे उनके बारे में एक बार भी नहीं सोचा है कि, उन्हें हम समुदाय, समाज, घर और परिवार से अलग कर देते हैं तो इन लोगों को कहाँ खुशियाँ मिलेंगी। यही करुण भाव उक्त उदाहरण में देखने के लिए मिलते हैं।

किन्नर वर्ग के लोगों के साथ भेदभाव सिर्फ समाज के सामान्य लोगों के द्वारा ही नहीं किया जाता बल्कि, जिन्हें धर्म का ठेकेदार माना जाता है अर्थात् पुजारी या संत जो धार्मिक मतों के अनुसार ईश्वर के सबसे करीबी होते हैं वे लोग भी यह भूल जाते हैं कि, इस मानव की संरचना भी हम सभी की तरह उसी ईश्वर द्वारा ही की गई है। जिसका उदाहरण सिहाग जी के कहानी संग्रह से द्रष्टव्य है :–

'लोग कहते हैं ये न मर्द है, न औरत,
पर मैं कहता हूँ मैं बस मैं हूँ।
मैंने मंदिर के दरवाजे पर दुआ माँगी थी तो पुजारी ने कहा तेरे लिए जगह नहीं। मगर जब भगवान ने आँखें खोलीं तो उन्होंने मुस्कुराकर कहा तू भी मेरी ही बनाई हुई रचना है।'

'कन्धें पर बोझ है नाम का
जिसे समाज ने मजाक बनाया है।
ताली बजाते हैं लोग,
जैसे हम तमाशा हों किसी मेले का,
पर दिल तो वही है,
जो धड़कता है हर अकेले का।
प्यार माँगा तो तिरस्कार मिला,
हक माँगा तो इंकार मिला,
जिंदगी मिली तो कैसी मिली
हर मोड़ पर तंजों का बाजार मिला।'

किन्नर अपने भाव को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि, हम प्यार माँगते हैं पर हमें समाज के द्वारा उसके बदले तिरस्कार ही मिलता है और अगर हमने अपना अधिकार माँगा तो हमें लोग भगा देते हैं। हमें समाज के द्वारा क्यों हर जगह उपेक्षा, परिहास और ताने ही मिलते हैं हमारी भी तो जिंदगी औरों की तरह ही है।

किन्नर वर्ग के लोग समाज के लोगों से बार–बार बस यही गुहार लगाते हैं कि, हम भी ईश्वर की ही संरचना हैं और इसी रंगीन समाज के जरूरी रंगों में से एक रंग (हिस्सा) हैं। फिर हमें क्यों अलग–थलग कर दिया गया है? बाकी लोगों की तरह हमें तो अपनी पहचान बताने में कोई शर्म नहीं लगती है फिर समाज को क्यों शर्म आती है?

किन्नरों के इस भाव को सिहाग जी ने अपनी रचना में कुछ इस तरह से रखा है –

'हम भी खुदा की रचना हैं,
थोड़ा अलग, मगर अधूरे नहीं,
रंगों की इस दुनिया में,

हम भी एक जरूरी स्याही हैं सही।
ना शर्म हैं हमें अपनी पहचान पर,
ना झुकेंगे किसी गलत बयान पर,
हम वो सूरत हैं, जो आईने में मुस्कुराती है,
हम वो धुन हैं, जो हर दिल को जगाती है।'

निष्कर्ष – डॉ. सिहाग की कहानियों किन्नरों के सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत संघर्षों को संवेदनशील और सशक्त तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उनकी पात्र अपने अस्तित्व, पहचान और आत्मसम्मान की लड़ाई में डटे साहसिक और सशक्त व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। कहानियों में दिखाए गए संघर्ष, सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव न केवल पात्रों की आंतरिक पीड़ा को उजागर करते हैं बल्कि, व्यापक सामाजिक संरचना, पारंपरिक मान्यताओं और सांस्कृतिक अवधारणाओं पर भी प्रश्न चिह्न लगाते हैं।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट कि, डॉ. सिहाग की कहानियाँ किन्नरों के अनुभवों और जीवन की वास्तविकताओं को साहित्य में जीवंत करती हैं। उनके लेखन में किन्नर पात्रों के माध्यम से समाज की पूर्वाग्रहपूर्ण मानसिकता, लैंगिक असमानता और सामाजिक बहिष्कार की अभिव्यक्ति है । यह न केवल पाठकों में सहानुभूति और संवेदनशील दृष्टिकोण उत्पन्न करता है अपितु समाज में समानता, मानवाधिकार और लैंगिक विविधता के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न करता है।

अंततः डॉ. सिहाग का कथा साहित्य हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श को सशक्त और स्थायी रूप से स्थापित करता है।

संदर्भ –

1. त्रिपाठी, डॉ. किरण और द्विवेदी, पीयूष कुमार, विमर्श मंजूषा, सुधा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, सन् –2020, पृ.–4.
2. https://www.wisdomlib.org
3. सिंह, नामवर, हिन्दी के नए प्रतिमान, हिंद साहित्य निकेतन, बिजनौर, संस्करण 2016, पृ.–46.
4. महर्षि पाणिनी, अष्टाध्यायी, (अनुवादक– दुर्गसिंह), पृ. 88.
5. तिवारी, डॉ. राजशेखर (संपादक), शब्दार्वण पत्रिका, अंक–2, जुलाई–दिसंबर 2018, पृ.–61.
6. बोहल, डॉ. नरेश सिहाग, बहुत तेज भागती है जिंदगी, एस. एम. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् –2025, पृ.–45.
7. वही, पृ.–63.
8. वही, पृ.–70.
9. वही, पृ.–80.
10. वही, पृ.–120.
11. वही, पृ.–122.

संपर्क– 8604112963, ईमेल – putupiyush@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
Oct. 2025

ISSN : 2395-7115
Page No. : 98-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महापुरूष हरिदेव का भाषा–शैली

डॉ. अनिरूद्ध बायन
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
मध्यकामरूप महाविद्यालय, शोभा, बरपेटा, असम।

महापुरुषों का जीवन की सार्थकता और यश निर्भर करता है उनके भाषा शैली या वागवैचित्रता पर। भगवान श्रीकृष्ण की नीति आदर्श, उनकी युग जयी वाणी गीता में संरक्षित रहने की तरह शंकाराचार्य, प्लेटो, अरस्तु आदि मनिषीयों की आदर्श उनके कृति या वाणी या भाषन के द्वारा आम जनताओं में फैलते है और जिनकी वाणी या भाषा जितनी प्रभावशाली होगा वह उतना ही सफल या महान महापुरुष के रूप में प्रतिस्थित होगा। उनके वैभवशाली प्रतिभा या भाषाशैली अनगिणत अनुगामी के अंतर में प्रकाश या आलोक संचारित होगा। अनेक सदियों तक उनको अपनी वाणी या भाषा द्वारा अमरत्व लाभ करेगा।

भाषिक या वाक चातुर्य के बिना उनके ज्ञान और साधना निष्फल है। महापुरुषों की साधना, लक्ष्य नोति, आदर्श, जीवन, दर्शन आदि का वाहक उनके भाष है। महापुरुषों की भाषा या वाणी स्वाभावोक्ति नहीं है, उनके भाषा की रमणीय, चित्ता कर्षक और हृदयग्राहि उपादानों से समृद्ध है। शंकराचार्य की प्रत्येक रचना अद्वैत वैदांत दर्शन की गुरु गंभीर तत्व से बोझिल होते हुए भी उनके भाषा शैली की सरलता, सहजता तथा रमणीयता के कारण मनोग्राही साहित्य की उदाहारण है।

असम में भी जितने सारे महापुरुषों की आविर्भव हुआ है और उनके द्वारा असम की सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक और बौद्धिक उत्कर्षता के चरम सीमा तक पहुंचाया वह उनके वाणी सम्वलित साहित्यिक कृतियों की भाषा शैली के कारण है। इन रचनाओं में ऐसी भाषिक सौन्दर्य निहित है जिसके द्वारा–युग युग तक मानव जाति को आकर्षित करते आ रहे है। केवल उनके अनुयायियों तक ही उनकी भाषा शैली की शक्ति सीमित नहीं बल्कि उनकी भाषा शैली विभिन्न युग के साहित्यिक, आलोचक और काव्य रसिकों ने भी उनकी रचना में निहित भाषा शैली की प्रशंसा किया है।

असमीया जाति के सर्वांगीण विकास के लिए नैतिक आध्यात्मिक, बौद्धिक आदि सभी दिशाओं में प्रकाश डालने वाले महापुरुषों में से क्रमानुसार श्री हरिदेव (१४२६–१५५६), 'महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (१४४६–१५६) श्री दामोदर देव (१४८८–१५६८), माधवदेव (१४८६–१५६६), प्रमुख्य है। इन महापुरुषों में से श्री हरिदेव जी सबसे बुजुर्ग है। उन्होनें सोलह साल के उम्र में अपने जन्म स्थान नारायणपुर छोड़कर काशी, पुरी आदि अनेक स्थान में वेदादि शास्त्र अध्ययन कर सत्ताइस साल की उम्र में १४५३ सन में बरपेटा जिला के वहिर गांव में सत्र स्थापना कर धर्म प्रचार तथा समाज संस्कार का काम करने लगा। उस समय तक उत्तर पूर्वांचल में कोई भी धमाचार्य

इस प्रकार धर्म प्रचार का काम नहीं किया था। इसलिए हरिदेव महाप्रभु को असम के नव–वैष्णव धर्म या सनातनी परम्परा का प्रमुख प्रवक्त कहा जा सकता है।

महापुरुष श्री हरिदेव जी ने धर्म प्रचार का जो वृहत परिकल्पना हाथ में लिया था उनमें से अन्यतम थे ग्रन्थ प्रणयन। महापुरुष हरिदेव द्वार प्रवर्तित नव वैष्णव भक्ति धर्म का मुल तत्व को निर्धारित करते हुए उन्होंने अपनी मत तथा पंथ की संविधान स्वरूप दो ग्रन्थ रचना किया है– 'शरण–सिद्धान्त' और 'भक्ति रस तरंगिनी'। ये दोनों मूलतः संग्रह ग्रंथ है। शरण–शिद्धान्त में विभिन्न संस्कृत ग्रन्थ की उत्स से भक्ति की तत्व सम्बन्धित विभिन्न तत्व और शरण–भजन की रीति–नीति संग्रह करते हुए उनकी पद्यानुवाद किया था तथा दूसरी में मूलतः भागवत महात्मा और विष्णु के पुराण स्वरूप पूजा,अर्चना और वन्दना और उससे प्राप्त फल के सम्बन्ध में विभिन्न तथ्य शास्त्रीय परम्परा से संग्रहित कर उसका गद्यानुवाद किया है।

इसके अतिरिक्त कुछ भक्ति मुलक गीतों का भी रचना किया था। उन्होंने भागवत का अंश विषयक का अनुवाद किया और तत्व और गीतासार नामक दो अन्य रचना किया था जो अप्रमाणिक है। अब तक उनके प्रामाणिक रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. स्वरचित संस्कृत श्लोक।
2. स्वरचित असमीया पद।
3. अनुदित रचना।

उत्तर पूर्वांचल के मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आंदोलन सर्वभारतीय भक्ति आंदोलन की छाया अवश्य है किन्तु असम के वैष्णव भक्ति परम्परा के स्वरूप और नीति भिन्न थे। उसको समालोचकों तथा विद्वानों ने निश्चित किया था। असम के श्री हरिदेव आदि आचार्यों ने मार्धुर्य मंडित भक्ति भावना का पृष्ठपोषकता न करते हुए हास्य भक्ति युक्त वैष्णव भक्ति का ही प्रवर्तन किया। इस दास्य भक्ति का स्वरूप संधान करने वाला पूर्ववोत्तर की पहला आचार्य श्री हरिदेव जी हैं। हरिदेव जी ने अपने अनेकानेक स्थान में अपने को भगवान का दास रूप में समर्पण किया है–

'कहे द्विज हरिदेव सत्तर पदे आशा।
नकरा नैराश प्रभु करि लयो दास।।'[1]

हरिदेव जो अपने को केवल भगवान का ही दास नहीं बल्कि साधु, संत तथा भकत का भी दास माना है–

'हरिदेव अधम अति मुढ़जन
भकतर मात्र दास राम राम
भकतर मात्र दास।'2 (भकतर गीत)

असमीया वैष्णव भक्ति का अन्यतम वैशिष्ट है विनय भाव। असमीया लोगों ने इस विनयता का पाठ श्री हरिदेव जी से पाये है। बेदादि ग्रन्थों के अगाध पाण्डित्य को अर्जन करने वाला धर्माचार्य के भाषा में जो आत्म लघुता का भाव ध्वनित हुआ है वही वाणी या भाषा परवर्ती काल में समस्त वैष्णव कवि साहित्यिक के भाषा शैली का रीति बन गया है। श्रवण कीर्तन का महत्व, नाम जप का महिमा, जाति भेद का कुफल, सदचरित्र के लोगों का कर्तव्य–अकर्तव्य, आचार–विचार आदि विषय में महापुरुष श्री हरिदेव जी अपनी दृष्टिभंगी–लेकर चला है।

इस धार्मिक विषय के अतिरिक्त सामाजिक और नैतिक विषय का अनेक सारगर्भित वाणी उनके रचना में सन्निविष्ट है जो असमीया जाति की मन–मस्तिक को आकर्षित कर प्रभावित किया है।

श्री हरिदेव जी की भाषा की कोमलता, सरलता और विनम्रता के कारण तत्व युक्त, नीति प्रद विषय को नाना साहित्यिक उपादान से मंडित करते हुए आकर्षनीय बना दिया है। जिस प्रकार शर्करा आदि प्रलेप देकर कटु भेषज स्वाद को सुस्वाद बना लेता है। ठीक उसी प्रकार श्री हरिदेव जी ने अपनी धार्मिक तत्व–युक्त दार्शनिक कथा को भी अपनी भाषा की सरलता और सहजता से अधिक आकर्षनीय और ह्रदय ग्राही बना लिया है। जिससे असमीया साहित्य परम्परा से एक नयी भाषा की परम्परा चल पड़ा है।

महापुरुष श्री हरिदेव जी संस्कृत के विदग्ध पंडित थे। उसने संस्कृत में अनेक श्लोक रचना किये थे। उनके दोनों ग्रंथों में दो सुन्दर कृष्ण स्त्रोत की रचना किया था। जिसमें उसने सर्वानंद सनातन कृष्ण का ऐश्वर्यशाली दिव्य रुप का वर्णना करते हुए भगवाण के ही चरण में भगवत कृपा की भिक्षा किये थे। जिनमें हरिदेव जी के रचना में वर्णों की पुनरावृत्ति उनके रचना की अन्यतम विशेषता है। अनुप्रास की अधिक प्रयोग ने श्री हरिदेव जी की रचनाओं को श्रुतिमधुर, माधुर्य गुण और ह्रदय ग्राही बना दिया है। उनके रचना की पद्यांत समानता, तुक आदि ने अधिक आकर्षनीय बना दिया है। उनके रचनाओं में छेकानुप्रास, और वृत्तानुप्रास अलंकार अधिक पायी जाती है। उदाहरण –

'अचिंत सार विश्वात्मन प्रसाद परमेश्वर।
प्रसीद तुंग तुगां नां प्रसीद शिव मन।
प्रसीद गण गंभीर गंभीरनां महाच्युते।
प्रसीदाव्यक्त विस्तिर्ण विस्तिर्णा नामगोचर।।[3]

उनके रचना के प्राय सभी छन्द में वृत्तानुप्रास की छाया पायी जाती है।

अनुष्टुप्य हरिदेव जी का प्रिय छन्द है। दो एक श्लोक इन्द्रब्रजा छंद में भी लिखा था। छंद शास्त्र में निर्धारित वर्ण का लघु–गुरु का परिमाण श्री हरिदेव जी ने बाध्यबाधकता से मानकर नहीं चला था। पुराणों के छन्द सज्जा को ही अनुकरण कर श्री हरिदेव जी ने श्लोक रचना किया था। उनकी शब्द चयन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हरिदेव जी को संस्कृत कोश शास्त्र पर अद्भूत पाण्डित्य थे।

श्री हरिदेव जी का असमीया पद को दो भागों में विभाजित करते हुए देखा जा सकता है –1. अनुदित पद और 2. स्वरचित पद। शरण सिद्धान्त का पद मूलतः अनुदित पद और भक्ति मुलक गीत समूह स्वरचित पद का उकृष्ट निदर्शन है। अनुवाद के क्षेत्र में शीलता प्रसंशनीय थे। उनका अनुवाद मूलतः आक्षरिक अनुवाद थे। चाहे वह गद्य हो या पद्य पद। उनके अनुवाद में कहीं भी मुलभाव या तत्व कहीं भी इधर उधर नहीं देखा गया है। मूलभाव को बरघ्करार रखने वाला असमीया शब्द न मिलने पर मूल तत्सम शब्द को ही बरकरार रखते थे। दराचल में सहज सरल असमीया शब्दावली से मूलसार और आदर्श को बरकरार रखते हुए अनुवाद करने की सामर्थ रखने की क्षमता ही हरिदेव जी के अनुवाद का अन्यतम विशेषता है। ऐसा अनेक पद मूल पाठ से भी अधिक सहज, सरल श्रुतिमधुर और स्पष्ट होने का दावा किया जा सकता है। वैसा एक उदाहरण गीता के श्लोक का अनुवाद देख जा सकता है–

गीता को श्लोक :

'गीता सुगीता कर्त्तव्य किमन्यै शस्त्रविस्तरैः
या स्वयं पद्माभस्य मुखपद्मद्वनिसुतां।'[4]

श्री हरिदेव जी का असमीय अनुवाद :

'नर गने गीता पाठ करिवेक अवश्य नित्ये
अन्यशस्त्रे नाहि प्रयोजन।
जाना अति प्रतिकारी कृष्णर मुखर सेहि
गीता तत्व वाणी श्रेष्ठ धन।'[5]

अनुवाद के समय मुल कथा को विस्तार करना वैष्णव कवियों का एक सामान्य विशेषता है। वैसे विस्तार करने वाला कथा को व्याख्या नहीं किया जा सकता है। अंग्रेजी में उसे 'पेराफ्रेज' कह सकते हैं। श्रीमन शंकर देव, माधव देव आदि सभी अनुवादक में इस अनुवाद लक्षण देखा जाता है। भट्ट देव द्वारा अनुदित ग्रन्थ में विस्तार की मात्रा कम पाया जाता है। हरिदेव जी के अनुवाद में वैसा विस्तार न के बरावर थे। यहां तक कि हरिदेव जी ने कभी–कभी मूल श्लोक की दो चरण का अनुवाद में ही आवश्यकीय भाव और कथावस्तु प्रकट हो जाने में एक या दो श्लोक अनुवाद करते हुए छोड़ देते है। वैसा उदाहारण 'शरण सिद्धान्त का तीसरी स्तवक में गीता से संग्रहित एकादश श्लोक का अनुवाद को देखा जा सकता है। संस्कृत शब्द का भरमार उनके–रचना का अन्य एक लक्षण है।

हरिदेव जी की फुटकर गीत उच्च–साहित्यिक कृति के रूप में प्रतिस्थित है। उनकी गीत की भाषा में संस्कृत भाषा की छाया प्रस्फुटित होता है। फिर भी उनके पद में जो असमीया प्रादेशक शब्दावली प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त मधुर है, देखिए :

'ब्रह्मा विष्णु हर तिनटि उधान
आशा भैला थाली
शुक सनातन दुखनि सपोटि
नारदे भैला पाक वारि।।'[6]

उनके स्वरचित फुटकर गीतों में कल्पना तत्व की स्वाधीनता अत्यन्त प्रवल रूप में देखा जाता है। फल स्वरूप उपमा सदृश अनेकानेक अलंकार से समूह है। उदाहरण के रूप में उपरुक्त पद को ही ले सकते है। श्री हरिदेव जी के रचना में रूपक तत्व की प्रधानता दिखाई पड़ता है। छोटे–छोटे कल्पित रूपक द्वारा उसने तात्विक कथा को व्याख्या करते हुए दार्शनिक विषय को उपस्थापन किया था। वैसे रचना में व्यंजना शब्दशक्ति का समृद्धि दिखाई पड़ता है –

'भारत रन्तर हाटे हरि नाम रत।
महन्त दोकान दिये करि महा यन्त्र।।
भारत रत्नर हाटे अनेक दोकानी।
निचिनि किनिले भाई मिलाईवो विधिनि।।'[7]

लोक शिक्षा के लिए भी श्री हरिदेव जी ने वैसे रुपक का सहायता लिया है। विषय वासना दुख का कारण, हरिनाम परम सुख सम्पद है। मायात आवद्ध लोकर यातना अपार, वासना विरहित जन आत्मकाम संयमी, मन

मुक्ति का साधक आदि विषयक शिक्षा देने के लिए हरिदेव जी ने व्यवहारिक जीवन से छोटे–छोटे रुपक चुन लिया है। कई गीतों में मानव रुपी कुत्ते को भगवान रुपी गार्हस्थ्य अनुगत्य कर सकते है उसे कहा है। अन्य एक गीत में कहा है वरशी रूपी काल, वासना रूपी टोप देकर मौन रूपी पुरुष को प्रलोभित करते है और रत रूपी उम्र अनदेखा होती है मृत्यु। वरशी में लगे मछली की तरह खीचकर अनेक कष्ट देकर कर विषय भोगी लोगों को काल यात्री समय अनेक कष्ट देते हैं। निरश उपदेश से वैसा रुपक धर्मी शिक्षा आकर्षनीय हेतु अधिक सफल होता है। वैसी रचना में महापुरूष हरिदेव जी की वाक चतुरता का प्रमाण मिलता है।

'भक्ति रस तरंगिणी' में प्राचीन असमीया गद्य का उदाहरण लक्षणीय है। इसमें कुल १०६७ श्लोक है जिनकी गद्यानुवाद सराहनीय है। उनके ही शब्द में प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय वस्तु सन्दर्भ में एक सुन्दर आभास गद्य में मिलता है–

'जो नित्य भागवत शास्त्र अनुशीलन करंत ताहार कोटि जन्मार्जित पाप ध्वंस हवन्त। सर्ववेद उपनिषद सार श्री मद्भागवत।... नरलोक चित्तशुद्धि विधायक भागवत सम पवित्र शास्त्र आमि देखा नाई .....श्रीमद भागवत यदापि सर्वकामर, तथापि एइ भक्तिर शास्त्र निष्काम हुईया श्रवण करिवाक लागि।.... भक्ति आचरणत असमर्थ जने भयविनाश भगवानर चरण– पद्मक शरणागत भावे आश्रय लईलोओं मुक्त हवै पारिवेक।

हए भगवान सेहि सेहि स्थाने सन्निहित थाकंत। .....एहि कर्म भूमि भारतवर्ष पाईया जिसने धर्म–कर्म करंत सेई जन तिनलोक श्रेष्ठ ..... वैष्णव गण देवता स्वरूप बुलि जानिवा.. .. तुमक आमाक आरु महेश्वरक यारा देखे ताहा वैष्णव। जिसन वेद विद्या युक्त, सर्वदा विप्रभक्त आरु परदा विमुख सि सव वैष्णव। हे हरि तुमात आमार जे जन्मे दृढ़ भक्ति थाके... आमार आर अन्य वरे प्रयोजन नाई।..... पुरुश स्वपस वा अन्य म्लेच्छादि नीच जाति सवो यदि हरि पाद सेवक, तो तारास्व वन्दनीय।'[8]

'भक्ति रस तरंगिणी' ग्रन्थ भक्ति विषय से असमीया गद्य साहित्य के दृष्टि से अधिक मुल्यवान है। ये असमीया गद्य साहित्य की प्राचीनतम उपलब्धि है। इस ग्रन्थ की गद्य गठन पद्धति सम्पर्कीय विशेषता इस प्रकार है–

1. **बहु बचन का प्रत्यय के रूप में इस प्रकार प्रयोग किया है–**
   - **(क) सकल :** लोक सकल, ललना सकल, एहि सकल।
   - **(ख) गण :** साधुगण, देवगण, मुनिगण।
   - **(ग) सव :** लोक सव, इ स्व, तोमा सव।
   - **(घ)** ताहर : ताहान्त।
2. **'भक्ति रस तरंगिणी' में हरिदेव जी ने शब्द विभक्ति के क्षेत्र में–**

   प्रथमा–ए

   द्वितीया–क

   तृतीया–द्वार

   चतुर्थ –र

   पंचमी–त
3. इस ग्रन्थ में प्रयुक्त सर्वनाम शब्द इस प्रकार है– आमि, इसब, एई, इहार, एहि, काहाका, कि, कुन, कुनि,

तुमि, तुमार, तोमार, ताक, तार, ताहा, ताक, ताहाक, तुहू, तुवा, निजा, मोर, मई, सेहि, येहि आदि।

'भक्ति रस तरंगिणी' के गद्य की क्रिया रूप इस प्रकार है :

वर्तमान काल – करे, कहे, करय, करु, जन्मे, थाकन्त, हासे, होवन्त, कर, कहियो, शुना।

भुतकाल – आचिलु, कहिल, करिलन्त, गैल, देखिलु।

भविष्य काल – कहिवा, करिवो, करिवु, करिम, पारिवेक।

संयुक्त किया– दर्शन करि, गमन करिलु, श्रवण करिला, आरम्भ करिला।

4. 'भक्ति रस तरंगिणी' प्राप्त कुछ रुप तात्विक लक्षण :

(क) तुलना कारी रुप– शरणागत त्यागीजन चांडाल हन्तेओ अधम। विष्णुर भजन तीर्थत अधिक तीर्थ।

(ख) वल देने वाला रुप– इ ललना सवईवा कुनि
ए तुमिए मोर
से तुमिसे पापरा नासिनी
ओ–देव गणरों।

(ग) अव्यय शब्द– आर, आरोप, यदि, तथापि, हे

(घ) परसर्ग– कृतक, नामक, निकट, न्याय

(ङ) पूर्व प्रत्यय– सः ससम्माने।

इस प्रकार श्री हरिदेव कृत भक्ति–रस तरंगिणी के असमीया गद्य अनुवाद में देखा जाता है कि इसके वाक्य में व्यवहृत शब्दावली सर्वनाम, विभक्ति, क्रिया विभकित, बहु बचनात्मक, और निर्दिष्ट वाचक प्रत्यय कुछ शब्द को छोड़ कर शब्द प्रयोग के क्षेत्र में तत्सम शब्दावली की प्रभुत्व देखा जाता किन्तु वैसी शब्द व्यवहार द्वारा उनके रचना को समझने में कोई समस्या की सृष्टि नहीं किया है। उनके भाषा अत्यन्त प्रांजल तथा हृदय ग्राही है।

संदर्भ :

1. शरण सिद्धांत – हरि देव।
2. हरिदेव रचित गीत– सम्पादक – गणेशचन्द्र वर्मन।
3. भक्तिरस तरंगिणी – हरिदेव।
4. भक्तिरस तरंगिणी – हरिदेव।
5. हरिदेव रचित गीत– सम्पादक – गणेशचन्द्र वर्मन।
6. वही –वही – सम्पादक – गणेशचन्द्र वर्मन।
7. वही – सम्पादक – गणेशचन्द्र वर्मन।
8. भक्तिरस तरंगिणी – प्रथम स्तवक – हरिदेव।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 104-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विनोद कुमार शुक्ल की कहानियों में अभिव्यक्त जादुई यथार्थवाद : 'महाविद्यालय' कहानी संग्रह के संदर्भ में

भुवनेश कुमार प्रधान
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, रांची।

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में विनोद कुमार शुक्ल के कहानी संग्रह 'महाविद्यालय' की कहानियों में अभिव्यक्त जादुई यथार्थवाद का विवेचन किया गया है। जादुई यथार्थवाद एक विशिष्ट साहित्यिक शैली है जिसमें यथार्थ और कल्पना का अद्वितीय समन्वय दृष्टिगत होता है। यह शैली सर्वप्रथम लैटिन अमेरिकी साहित्य में गैब्रियल गार्सिया मार्खेज के माध्यम से उत्कर्ष को प्राप्त हुई। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विनोद कुमार शुक्ल ने इस शैली को स्वदेशी संवेदनाओं से आप्लावित कर एक नवीन आयाम प्रदान किया है। 'महाविद्यालय' संग्रह की कहानियाँ जैसे रुपये, बोझ, मछली, आदमी की औरत, पेड़ पर कमरा, महाविद्यालय आदि निम्नमध्यवर्गीय जीवन की यथार्थपरक पृष्ठभूमि में जादुई तत्वों का सहज समावेश प्रदर्शित करती हैं। इस शोध में गुणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग करते हुए पाठ्य विश्लेषण की विधि अपनाई गई है। प्राथमिक स्रोत के रूप में 'महाविद्यालय' संग्रह की कहानियों का सूक्ष्म पाठ किया गया है तथा द्वितीयक स्रोतों में जादुई यथार्थवाद पर उपलब्ध आलोचनात्मक साहित्य, शोध पत्र एवं पुस्तकों का अवलोकन किया गया है। शुक्ल जी के जादुई यथार्थवाद की विशिष्टता यह है कि उनके यहाँ जादुई तत्व अलौकिक न होकर मनोवैज्ञानिक दबावों, सामाजिक विसंगतियों और मानवीय संवेदनाओं से उद्भूत होते हैं। यह शोध पत्र 'महाविद्यालय' संग्रह की कहानियों के माध्यम से शुक्ल जी के जादुई यथार्थवाद की तकनीकों, विषयगत विशेषताओं और शैलीगत सौंदर्य का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : जादुई यथार्थवाद, महाविद्यालय, निम्नमध्यवर्गीय जीवन, मनोवैज्ञानिक यथार्थ।

मूल आलेख :

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विश्व साहित्य में जादुई यथार्थवाद की एक विशिष्ट धारा का उद्भव हुआ जिसने पारंपरिक यथार्थवादी लेखन को एक नवीन दिशा प्रदान की। यह शैली वास्तविकता और कल्पना के मध्य एक सेतु का निर्माण करती है, जहाँ दोनों इस प्रकार घुल–मिल जाते हैं कि उनके बीच की विभाजक रेखा धुंधली हो जाती है। जादुई यथार्थवाद मूलतः लैटिन अमेरिकी साहित्य की देन है परंतु शीघ्र ही यह विश्व साहित्य की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन गई। हिंदी साहित्य में जादुई यथार्थवाद का आगमन विश्व साहित्य की इस धारा से प्रभावित होकर हुआ, किन्तु यह भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों में रूपांतरित होकर एक स्वतंत्र पहचान स्थापित

करने में सफल रहा। विनोद कुमार शुक्ल इस शैली के प्रमुख हस्ताक्षर हैं जिन्होंने अपनी विशिष्ट भाषिक संरचना और संवेदनात्मक गहराई के माध्यम से जादुई यथार्थवाद को भारतीय मिट्टी में प्रतिष्ठित किया। 'महाविद्यालय' उनका महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है जो जादुई यथार्थवाद के अनुपम उदाहरणों से परिपूर्ण है।

जादुई यथार्थवाद शब्द का प्रथम प्रयोग 1925 ई. में जर्मन कला समीक्षक फ्रांज रोह ने किया था, जिसे उन्होंने 'मैजिक रियलिज्म' के रूप में चित्रकला की एक विशिष्ट शैली के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् साहित्य में इस शब्द का प्रयोग लैटिन अमेरिकी लेखकों द्वारा व्यापक रूप से किया गया। जादुई यथार्थवाद की मूल विशेषता वास्तविक दुनिया में जादुई तत्वों की समीपता का विरोधाभास है। 'डिक्शनरी ऑफ ट्वेंटीथ सेंचुरी कल्चररू हिस्पैनिक कल्चर ऑफ साउथ अमेरिका' में जादुई यथार्थवादी कथा साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "कथा–साहित्य जो कि यथार्थवादी और गैर–यथार्थवादी घटनाओं के बीच भेद नहीं करताय गल्फ जिसमें पात्र की चेतना या वक्ता के परिपेक्ष को तोड़े बिना अलौकिक, पौराणिक येह अकल्पनीय सभी वास्तविकता की संज्ञानात्मक संरचना के रूप में जुड़ते हैं।" मैनेजर पांडे ने दिया तो यथार्थवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "यहाँ मिथक और परिकथाओं के माध्यम से वास्तविकता और सच्चाई की अभिव्यक्ति होती है। इन उपन्यासों में मिथकीय चेतना की ऐतिहासिक चेतना बन रही है और यथार्थ का जादू यथार्थवाद में प्रकट हो रहा है।"

इस प्रकार जादुई यथार्थवाद एक ऐसी साहित्यिक शैली है जो यथार्थ के ठोस धरातल पर जादु के तत्वों को इस सहजता से बिखेरती है कि पाठक और पात्र दोनों उन्हें सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं। वास्तविक स्थान, समय और परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण इस शैली की पहली अपरिहार्य शर्त है। इसके साथ ही, यथार्थ की पृष्ठभूमि में जादुई या अलौकिक तत्वों का प्रवेश इस प्रकार होता है कि वे असामान्य प्रतीत नहीं होते, बल्कि कथा में स्वाभाविक रूप से घुलमिल जाते हैं। जादुई घटनाओं को पात्र और पाठक दोनों सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं, और इन घटनाओं पर न तो आश्चर्य प्रकट किया जाता है और न ही उनकी व्याख्या की आवश्यकता अनुभव की जाती है। यह तर्कसंगत स्वीकृति जादुई यथार्थवाद को अन्य साहित्यिक शैलियों से भिन्न करती है। इसके अतिरिक्त, प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान इस शैली में मिलता है, जहाँ ये प्रतीक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सत्यों को व्यक्त करने का माध्यम बनते हैं। समय और स्थान की परंपरागत सीमाएँ जादुई यथार्थवाद में विलुप्त हो जाती हैं, जिससे भूत, वर्तमान और भविष्य एक साथ उपस्थित हो सकते हैं। इस तरह, यह शैली एक ऐसा अद्भुत संसार रचती है जहाँ वास्तविकता और कल्पना, सामान्य और असामान्य, ज्ञात और अज्ञात सभी मिलकर एक नई सांस्कृतिक और साहित्यिक अनुभूति का निर्माण करते हैं।

हिंदी साहित्य में शुक्ल अपनी विशिष्ट भाषिक बनावट और संवेदनात्मक गहराई के लिए जाने जाते हैं। उनकी एकदम भिन्न साहित्यिक शैली ने परिपाटी को तोड़ते हुए ताजा झोकें की तरह पाठकों को प्रभावित किया, जिसको 'जादुई–यथार्थ' के आसपास की शैली के रूप में महसूस किया जा सकता है। 'महाविद्यालय' संग्रह में ग्यारह कहानियों के माध्यम से शुक्ल ने निम्नमध्यवर्गीय समाज की अभ्यांतरित इच्छाओं, परिस्थितियों और जीवन संघर्ष का गहन चित्रण किया है। रुपये, बोझ, मछली, आदमी की औरत, पेड़ पर कमरा जैसी कहानियाँ कहानी के खास 'शुक्ल–शिल्प' का उदाहरण बन गई हैं। शुक्ल जी रचनाओं के मात्र लेखक या सृष्टा ही नहीं बल्कि भोक्ता भी हैं। इनकी रचनायें अपनी संपूर्ण ताकत और जिजीविषा से सभी को सराबोर कर देती हैं। इस प्रकार,

शुक्ल की कहानियाँ स्मृति और जीवन के संसार में प्रवेश कराती हैं जहाँ आशा और उजास की सम्भावनाएँ सुरक्षित रहती हैं।

'महाविद्यालय' कहानी संग्रह में जादुई यथार्थवाद का सबसे प्रभावी उदाहरण 'रुपये' कहानी में मिलता है, जहाँ शुक्ल ने निम्नमध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक विपन्नता को एक अद्‌भुत मनोवैज्ञानिक प्रसंग के माध्यम से चित्रित किया है। कहानी का मुख्य पात्र मन्नन एक बी.ए. पास युवक है जो क्लर्क की नौकरी की तलाश में है, किन्तु आर्थिक दबाव के कारण उसकी मानसिकता विकृत हो गई है। कहानी में लेखक लिखते हैं कि "दरवाजे की तरफ लगातार देखते–देखते उसे क्षण–भर के लिए लगा कि दरवाजे की जगह एक दस रुपये का नोट नीचे से ऊपर तक तना है। अगर उसने बाहर निकलने की कोशिश की तो वह नोट फट जायेगा।" यह जादुई दृश्य रुपये के प्रति मन्नन की मानसिक ग्रंथि का प्रतीक है, जहाँ वास्तविकता और कल्पना इस प्रकार घुलमिल जाती हैं कि दरवाजा स्वयं रुपये का नोट बन जाता है। यह प्रक्षेपण आर्थिक दबाव से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक परिणाम है, न कि कोई बाह्य जादू। इसी जादुई यथार्थवादी तकनीक के माध्यम से शुक्ल ने मामूली, नगण्य और प्रायः नजर न आने वाले ब्यौरों से निम्नमध्यवर्गीय समाज की अभ्यांतरित इच्छाओं, परिस्थितियों एवं कार्यों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

'मछली' कहानी में शुक्ल का जादुई यथार्थवाद एक प्रतीकात्मक रूप धारण करता है जहाँ स्त्री की सामाजिक पीड़ा को मछली के जीवन के साथ समानांतर किया गया है। कहानी में एक मार्मिक प्रसंग है जहाँ बच्चे मरी हुई मछली की आंख में अपनी परछाई देखते हैं, "दीदी कहती थी, जो मछली मर जाती है, उसकी आंखो में झांकने से अपनी परछाई नहीं दिखती।", आगे कहानी का एक पात्र कहता है कि "तुमसे कुछ नहीं बनता, कहकर दोनों हाथों से मैंने मछली को उठा लिया। फिर मछली को अपने चेहरे के बिल्कुल पास लाकर मैंने देखा तो मुझे आंख में धुंधली–धुंधली परछाई दिखी। ठीक से समझ में नहीं आ रहा था कि यह मेरी परछाई थी या मछली की आंखो का रंग ही ऐसे हो गया था?" यह वास्तविक रूप से असंभव परिस्थिति को लेखक सहज भाव से प्रस्तुत करता है, जिससे मछली और दीदी के दुःख को एकाकार कर देता है। कहानी का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रसंग है, "मुझे लगा कि दीदी के कमरे से दीदी की हल्की–हल्की सिसकियों की आवाज आ रही है। धीरे से दरवाजा खोलकर मैं अंदर गया तो देखा, दीदी सच में अपनी पहनी हुई साड़ी सर तक ओढ़े, करवट लिए सिसक–सिसककर रो रही थी। हिचकी लेते ही पूरा शरीर सिहर उठता था। अँगोछे में लिपटी मछली का लहरना मुझे याद आया।" यहाँ मछली जैसे प्रतीक के माध्यम से स्त्री व्यक्तित्व की पीड़ाओं को अभिव्यक्त किया गया है। शुक्ल का यह प्रतीकात्मक जादू पितृसत्तात्मक विचार के विरुद्ध कथाकार की अपनी अर्जित की हुई दृष्टि को प्रदर्शित करता है, जहाँ स्त्री की त्रासदी को काव्यात्मक भाषा में मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'पेड़ पर कमरा' में शुक्ल का जादुई यथार्थवाद मनुष्य और प्रकृति के बीच के अदृश्य संबंध को दृश्यमान करता है। कहानी में पात्र अपने कमरे में लेटकर पीपल के पेड़ को देखता है और एक अद्‌भुत अनुभूति से गुजरता है, "खाट पर लेटने से खिड़की से सटी पीपल की हरी–भरी शाख दीखती थी। जब शाख थोड़ी भी नहीं हिलती, यहाँ तक कि एक पक्षी भी नहीं हिलता, तब शाख को लगातार देखते रहने पर दो तीन बार उसे लगा कि कमरा भी पीपल के पेड़ पर बना है।" यह जादुई अनुभूति प्रकृति के साथ मानवीय संवेदना का प्रतीक है,

जहाँ शारीरिक और आध्यात्मिक सत्य एक होकर प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य की कथा बन जाते हैं। 'आदमी की औरत' कहानी में शुक्ल पुरुष के वर्चस्ववादी दृष्टिकोण को चित्रित करते हैं। कहानी में जयनाथ अपनी पत्नी के हाथ पर गुदे हुए 'कृष्णाबाई' नाम को मिटाना चाहता है। जादुई तत्व तब आता है जब वह अपने मित्र के साथ खेतों में तीन बेढंगे मकान और एक सुअर को देखकर उसमें अपनी पत्नी का नाम पढ़ता है, "वह देखो, दाहिने हाथ पर तुम्हारी बीबी का नाम खुदा हुआ है, तीन बेढंगे मकान और एक सुअर। बिल्कुल 'कृष्णाबाई'। सुअर 'बाई' की बड़ी 'ई' हैं।"

'महाविद्यालय' कहानी में जादुई यथार्थवाद निम्नमध्यवर्गीय जीवन के कड़वे यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया गया है। 'महाविद्यालय' को शुक्ल जी की प्रतिनिधि कहानी माना जाता है जहाँ मनुष्य और बाजार का द्वन्द्व हमारे समय के विद्रूप का बखान करता है। कहानी का नायक महाविद्यालयीन जीवन और पारिवारिक जीवन के बीच झूलता रहता है। जादुई तत्व यहाँ वातावरण के रूप में प्रकट होता है, "जब सन्नाटा होता था, तब खुली खिड़कियों के ऊपर तालाब की तरफ मुंह किये बगुले बैठे होते थे, जो किसी के आने की आवाज से सर्र से उड़ जाते थे। मछलियों की गंध बहुत आती थी। कमरे को साफ करने वाले का काम फर्श पर झाड़ू लगाना तो था, इसके बाद खिड़कियों से झुक कर पानी में दीवार के किनारे जमा हो गई सूखी फूल की मालाएं, नारियल बूच, केले के पत्ते, माचिस की तीलियाँ इत्यादि भी निकालनी पड़ती थी।" इस विवरण में प्रकृति और संस्थान के बीच का संबंध, पवित्रता और सांसारिकता का मिश्रण दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

विनोद कुमार शुक्ल का 'महाविद्यालय' संग्रह हिंदी साहित्य में जादुई यथार्थवाद का अनुपम उदाहरण है। इस संग्रह की कहानियों में जादुई तत्व कोई बाहरी या अलौकिक शक्ति नहीं, बल्कि मानवीय मनःस्थितियों और संवेदनाओं का परिणाम हैं। जादुई यथार्थवाद लेखन शैली यथार्थवादी विधि से हटकर अपने में प्रतीक, बिंब, कल्पना, स्वप्न, लोक विश्वास, लोक मान्यताएँ, मिथक, किस्सागोई, भूत–प्रेत आदि को समाविष्ट कर एक ऐसे लोक का चित्रण करती है, जो देखने में भले ही जादुई लगे मगर उसका कथ्य यथार्थ ही होता है। शुक्ल जी ने अपनी कहानियों मे इसे पूर्णतः चरितार्थ किया हैं, उनका जादुई यथार्थवाद भारतीय मिट्टी से उपजा हुआ है और उसमें निम्नमध्यवर्गीय जीवन की सच्चाइयां मुखरित हुई हैं। इन कहानियों में जादुई यथार्थवाद केवल एक शैली नहीं है, बल्कि जीवन को देखने का एक नजरिया है। शुक्ल जी ने इस शैली के माध्यम से दिखाया है कि सामान्य जीवन में भी असाधारण क्षण होते हैं, जहाँ यथार्थ और कल्पना के बीच की रेखा धुंधली हो जाती है। यह उनके जादुई यथार्थवाद की विशिष्टता है कि वह पश्चिमी जादुई यथार्थवाद से भिन्न है। जहाँ पश्चिमी जादुई यथार्थवाद में अलौकिक तत्वों का प्रयोग होता है, वहीं शुक्ल जी का जादुई यथार्थवाद मनोवैज्ञानिक और सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। हिंदी साहित्य में जादुई यथार्थवाद की एक मौलिक परंपरा स्थापित करने में विनोद कुमार शुक्ल का अहम योगदान है।

संदर्भ :–

1. Standish, Peter : Dictionary of Twentieth Century Culture : Hispanic Culture of South America, Gale Research Inc; 1995, Page No. 156-157

2. पांडे, मैनेजर : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, तृतीय संस्करण–2006, पृष्ठ संख्या– 269
3. शुक्ल, विनोद कुमार : महाविद्यालय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण– नवंबर 2022, पृष्ठ संख्या–10
4. –वही–, पृष्ठ संख्या–21
5. –वही–, पृष्ठ संख्या–21–22
6. –वही–, पृष्ठ संख्या–24
7. –वही–, पृष्ठ संख्या–47
8. –वही–, पृष्ठ संख्या–68
9. –वही–, पृष्ठ संख्या–91

Email: bhuvneshpradhan225@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 109-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हाशिये से मुख्यधारा तक : हिंदी उपन्यासों में किन्नर पात्रों का आत्मबोध और अस्मिता का संघर्ष

डॉ. प्रवीन शर्मा, शोध पर्यवेक्षिका एवं सह आचार्या,
अनिल कुमार, शोधार्थी,
हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना :

एक लंबे समय से भारतीय समाज किन्नर समुदाय को एक अदृश्य, अस्पष्ट एवं हाशिये पर खड़ा वर्ग ही मानता आया है। यह समुदाय समाज के द्वारा सदियों से तिरस्कार, उपेक्षा, बहिष्कार एवं अन्याय का शिकार बनता रहा है। इस समुदाय के व्यक्तियों को उनके सामान्य जीवन, शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक स्वीकृति से सदैव वंचित ही रखा गया है। साहित्य जगत में किन्नर समुदाय को सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विमर्शों में अनुपस्थित ही रखा गया। हालांकि पिछले कुछ वर्षों से समय के साथ मानवाधिकारों, लैंगिक विविधता एवं समावेशिता आदि विषय पर बढ़ रही बहस के परिणामस्वरूप इस समुदाय के विमर्श को कुछ साहित्यिक स्थान प्राप्त होने लगा है एवं हिंदी साहित्य में विशेषतः उपन्यास विधा ने इस विषय को सबसे ज्यादा प्रमुखता दी। उपन्यासों के किन्नर पात्रों को केवल एक पात्र रूप में न लेकर उन्हें सजीवता, अस्मिता एवं आत्मबोध से युक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। किन्नर विमर्श आधारित यें उपन्यास ने केवल किन्नर समुदाय के जीवन में आई समस्याओं को प्रदर्शित करते हैं, अपितु संघर्ष उपरांत सफलता प्राप्त करने वाले किन्नरों को भी अपनी कथा का हिस्सा बनाते हैं। यें सफल किन्नर संपूर्ण समुदाय के सदस्यों हेतु प्रेरणा स्रोत रूप में पेश हो सकते हैं। हिंदी साहित्य में उपन्यासों के पात्रों को आधार बनाकर उनके आत्मबोध एवं अस्मिता का संघर्ष का विश्लेषण करना ही इस शोध का प्रमुख उद्देश्य रहेगा।

मूल शब्द : आतंकवाद अस्मिता लैंगिक पहचान, सामाजिक बहिष्कार एवं तिरस्कार, किन्नर विमर्श, समावेशन आदि।

शोध के उद्देश्य :

(1) किन्नर विमर्श आधारित उपन्यासों के पात्रों में आत्मबोध की प्रक्रिया का विश्लेषण करना।
(2) साहित्यिक दृष्टिकोण से अस्मिता हेतु संघर्ष को समझना।
(3) उपन्यासकारों की किन्नर समुदाय के प्रति संवेदनशीलता का मूल्यांकन करना।

मूल प्रतिपादन :

किन्नर समुदाय भारत के प्राचीन काल से उपस्थित रहा है। देश के प्राचीनतम ग्रंथ महाभारत में शिखंडी बिरहनल्ला आदि जैसे पात्र एवं खिलजी वंश में मलिक गाफूर जैसे सेनापति आदि का उल्लेख न केवल उनकी समाज में स्वीकार्यत का गवाह है बल्कि उस समय द्वारा उनकी प्रतिभा को पहचानने की क्षमता को भी दर्शाता है। वर्तमान समय में हुई उनकी दयनीय दशा होने के पिछे औपनिवेशिक शासनकाल में 'आपराधिक जनजाति अधिनियम, 1871' के 28 जनवरी, 1897 में हुआ संशोधन है। इस संशोधन ने उन्हें अपराधिक जनजाति घोषित कर सामान्य जन के मन में उनकी छवि धूमिल करने का काम किया। इसने इन्हें राजा, महाराजाओं, सामंतों एवं जमीदारों के रहमों करम पर जीने हेतु छोड़ दिया। इस प्रकार उनकी समाज में घृणास्पद स्थिति हो गई। उनकी स्थिति को जब हिंदी साहित्य ने देखा एवं समझा तो इन्हें अपने में स्थान देते हुए इनके दशा व दिशा को विमर्श रूप में अपना लिया। इस क्रम में हिंदी उपन्यासों, यथा; यमदीप (नीरजा माधव), तीसरी ताली (प्रदीप सौरभ), पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा (चित्रा मुद्गल), जिंदगी 50–50 (भगवंत अनमोल), हॉफमैन ए पेन फुल जर्नी (भुवनेश्वर उपाध्याय), किन्नर कथा (महेंद्र भीष्म), मैं पायल (महेंद्र भीष्म), अस्तित्व की तलाश में सिमरन (डॉ. मोनिका देवी) आदि ने उनके जीवन को समाज की मुख्य धारा के समक्ष रखा।

इन उपन्यासों में एक किन्नर के जन्म से लेकर अपने आत्मबोध एवं अस्मिता के संघर्ष की कथा को स्वर दिया गया गया है। उपन्यासों के पात्र हास्य अथवा विलक्षण रूप में नहीं बल्कि संघर्षशील एवं संवेदनशील व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं।

आत्मबोध : एक आंतरिक क्रांति :

एक व्यक्ति समाज की परिभाषाओं से परे जब स्वयं में अपने अस्तित्व को महसूस करता है तो उस अवस्था को उसका आत्मबोध कहा जाता है। एक व्यक्ति अपने आत्मबोध की प्राप्ति आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन, ध्यान व आत्म चिंतन, गुरु के मार्गदर्शन, प्रकृति से जुड़कर, जीवन के अनुशासनों पर विचार कर आदि तरीकों से करता है किंतु एक किन्नर के जीवन में आत्मबोध की प्रक्रिया दर्द, पीड़ा, अपमान, बहिष्कार, अस्वीकार एवं तिरस्कार की पृष्ठभूमि से होकर गुजरती है।

मैं भी औरत हूँ (डॉ. अनसूया त्यागी) यह उपन्यास मूलतः एक किन्नर व्यक्ति की आत्मा में निहित स्त्रित्व की खोज की यात्रा है। इसमें किन्नर पात्र रोशनी जब भाल्य चिकित्सा से अपनी बहन मंजूला की भांति पूर्ण स्त्री नहीं बन पाती है तो वह पढ़ाई में खूब मेहनत करते हुए एम.एन.सी. कंपनी में सी.ई.ओ. जैसा महत्वपूर्ण पद प्राप्त करती है एवं वहाँ ओंकार पटेल के रूप में एक सच्चा प्रेमी एवं तेजस्विनी व मयंक सावंत के रूप में एक संपूर्ण परिवार प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार रोशनी अपने किन्नर रूप को अभिशाप न मानते हुए, अंततः आत्मबोध की प्राप्ति करने में सफल होती है।

तीसरी ताली (प्रदीप सौरभ) यह उपन्यास संपूर्ण किन्नर समुदाय हेतु एक प्रेरणा स्रोत के रूप में सामने आता है। उपन्यास का मुख्य पात्र विनीता शुरू में तो समाज एवं परिवार से उत्पीड़न पाने से दुःखी होकर घर त्याग देती है किंतु उपन्यास की कथा के बहाव में अंततः वह गे वर्ल्ड की ब्यूटी क्वीन बन 'जी टीवी' के सीरियल 'द छक्का' के माध्यम से अपने समुदाय के अन्य किन्नरों को भी जीवन में आत्मबोध की प्राप्ति हेतु प्रेरित करती है।

मैं पायल (महेंद्र भीष्म) यह उपन्यास एक किन्नर बच्चे को अपने पिता से मिली यातना से शुरू होकर उसके अपने समुदाय में ऐसे पद पर आसीन होने तक की यात्रा है जहाँ अपने संपूर्ण समुदाय के उत्थान हेतु जीवन भर प्रयासरत रहती है। पायल का जीवन अश्रुमय घटनाओं की आपबीती बनकर उभरा है किंतु स्वाभिमान के साथ। पायल न केवल अपने आत्मबोध हेतु प्रयासरत रहती है अपितु अपने संपूर्ण समुदाय को भी आत्मबोध प्राप्ति की ओर प्रेरित करती है।

श्रापित किन्नर (डॉ. मुक्ति शर्मा) यह उपन्यास किन्नर समुदाय हेतु प्रयोग होने वाले अपने इस शीर्षक को बदलने की ओर अग्रसर देखा जा सकता है। उपन्यास की दो पात्र हीना एवं नरगिस अलग–अलग परिस्थितियों में अपने जीवन में सफलता प्राप्त करती है। उपन्यास की पात्र नरगिस किन्नर डेरे के परिवेश में रहते हुए स्नातक उपाधि के उपरांत नौकरी प्राप्त करती है जबकि हीना अपने माता–पिता की छत्रछाया में डॉक्टर बन जाती है। इस प्रकार दोनों अपने जीवन में संघर्ष करते हुए अंततः आत्मबोध को प्राप्त कर लेती है।

अस्मिता का संघर्ष :

अस्मिता एक संस्कृत भाषा का शब्द है जोकि स्वयं को 'मैं हूँ' की भावना से देखने एवं अपनी व्यक्तिगत पहचान को विशिष्ट पहचान प्राप्त करवाने से होता है। किन्नर समुदाय के जीवन में अस्मिता का संघर्ष केवल इस बाहरी दुनिया से ही नहीं अपितु अपनी अंर्तआत्मा व समाज के द्वंद्वं से भी होता है। किन्नर समुदाय के व्यक्तियों को समाज से लड़ते हुए अपने नाम, शारीरिक संरचना, संवेदना एवं इच्छाओं के साथ–साथ अपनी अंतरात्मा से भी संघर्ष करना पड़ता है।

हिंदी साहित्य के उपन्यासों में चित्रित किन्नर पात्रों का संघर्ष बहुस्तरीय देखा गया है, यथा; सामाजिक, कानूनी, मानसिक, पारिवारिक स्तर आदि। किन्नर पात्रों का यह संघर्ष मात्र सामाजिक स्वीकृति पाने का ही नहीं अपितु मानवाधिकारों के लिए भी है।

जिंदगी 50–50 (भगवंत अनमोल) यह उपन्यास किन्नर समुदाय के प्रति एक ही परिवार की दो पीढ़ियों की सोच में आए परिवर्तन की कथा है। इस उपन्यास में किन्नर पात्रों द्वारा अपनी अस्मिता को पहचानने के तरीके अलग–अलग दिखाए गए हैं। एक किन्नर पात्र हर्षा उर्फ हर्षिता तो अपने पिता द्वारा प्राप्त प्रताड़ना के बावजूद भी उन्हें अपनी जमीन बचाने में खुद को कुर्बान कर देने में अस्मिता प्राप्त कर लेती है जबकि अन्य किन्नर पात्र सूर्या को अपने माता–पिता के सानिध्य में रहते हुए डिटेक्टिव एजेंसी स्थापित कर अपने जीवन को सफल बनाने में। दोनों ही पात्र अपनी अस्मिता हेतु संपूर्ण उपन्यास में संघर्षरत दिखते हैं।

हॉफमैन ए पेन फुल जर्नी (भुवनेश्वर उपाध्याय) इस उपन्यास का पात्र अर्जुन अपने माता–पिता के सहयोग से अपने जिले में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पद को प्राप्त कर स्वयं हेतु समाज को ताली बजाने को विवश कर देता है। समाज को अर्जुन अपने बाहरी एवं भीतरी द्वंद्वों से जूझते हुए अंततः अपनी अस्मिता प्राप्ति के संघर्ष में विजयी हो जाता है।

उपन्यासकारों का दृष्टिकोण :

किन्नर विमर्श आधारित उपन्यासों की रचना करने वाले उपन्यासकार की दृष्टि किन्नर समुदाय के प्रति सहानुभूति से आगे बढ़कर गरिमा, संवेदनशीलता एवं आत्मसम्मान की ओर अग्रसर होने लगी है। इतना ही नहीं, आत्मकथाओं के साहित्यकार समानुभूति के तत्वों को भी अपनी रचनाओं में स्थान दे रहे हैं। इसका अर्थ यह है

कि किन्नर समुदाय के जीवन का यथार्थ जैसा उनके मन में स्थापित है, ठीक वैसे का वैसा ही पाठकों के मन तक पहुँच रहा है। हालांकि आत्मकथाओं में रचनात्मक कौशल कम ही देखा गया है किंतु फिर भी वह किन्नर समुदाय की पीड़ा, दर्द एवं संघर्ष को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम है। हिंदी साहित्य में महेंद्र भीष्म, चित्रा मुद्गल, भुवनेश्वर उपाध्याय एवं भगवत अनमोल आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में किन्नर समुदाय को केंद्र का विषय बनाया बल्कि समाज से एक बड़े स्तर के बदलाव की भी माँग करते भी दिखते हैं। उपन्यासकार महेंद्र भीष्म तो स्वयं समाज में जागरूकता का प्रचार करने हेतु समय–समय पर रेडियो पर अनेकों कार्यक्रमों एवं सभाओं का आयोजन करते हैं। वहीं दूसरी ओर उपन्यासकार चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' के अंत में वंदना बेन शाह द्वारा अपने बेटे विनोद की घर वापसी की अपील करवाई है एवं उसे संपूर्ण जायदाद में बराबर का हिस्सेदारी भी घोषित करवाया है। यह किन्नर समुदाय को परिवार एवं समाज में स्वीकृति दिलाने में एक महत्वपूर्ण प्रयास साबित हो सकता है।

निष्कर्ष :

इस शोध से यह स्पष्ट है कि हिंदी उपन्यासों के किन्नर पात्र अब केवल प्रतीक मात्र ही नहीं है अपितु एक सजग अस्मिता के वाहक के रूप में सामने आ रहे हैं। इन पात्रों का आत्म क्रांति है। इन पात्रों का आत्मबोध मात्र एक प्रपांतरण ही नहीं, अभपितु एक आत्म क्रांति भी है। इनका अस्मिता हेतु संघर्ष मात्र सामाजिक अस्वीकार्यता के ही विरूद्ध ही नहीं है बल्कि साहित्य में एक लंबे समय से उनकी दशा एवं दिशा पर रही अमूकता के विरुद्ध भी है। ऐसे पात्रों के जरिए हिंदी साहित्य में एक नवीन दृष्टि, संवेदना एवं नए विमर्श का उद्भव हो रहा है जोकि समाज को और ज्यादा समावेशी एवं मानवीय बनाने की दिशा में प्रयासरत दिख रहा है। किन्नर पत्रों की उपन्यास विधा में प्रस्तुति अब मात्र हाशिये तक ही सीमित नहीं रह गई है तथापि उनकी उपस्थिति अपनी आवाज, अस्मिता एवं सत्ता के साथ साहित्य में दर्ज हो रही है। उनका आत्मबोध केवल एक व्यक्तिगत जागरूकता न होकर सामाजिक प्रतिरोध का रूप भी है।

शोध में वर्णित उपन्यासों ने किन्नर समुदाय को मात्र पीड़ित ही नहीं अपितु सक्रिय, संघर्षशील, एवं जागरूक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन उपन्यासों ने किन्नर विमर्श को आत्मसात करते हुए एक नवीन साहित्यिक क्रांति की ओर अपने कदम बढ़ाने में मदद की है जोकि वंचितों को मुख्यधारा में शामिल करने का कार्य कर रही है।

संदर्भ सूची :

1. मैं भी औरत हूँ, डॉ. अनसूइया त्यागी, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2008
2. तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
3. जिंदगी 50–50, भगवंत अनमोल, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
4. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
5. श्रापित किन्नर, डॉ. मुक्ति शर्मा, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2019,
6. हाफमेन ए पेनफुल जर्नी, भुवनेश्वर उपाध्याय, अमन प्रकाशन, कानपुर, 1 जनवरी 2020

अनिल कुमार, शोधार्थी, पता : श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।
ईमेल आईडी : akhoth2@gmail.com, सम्पर्क सूत्र : 94664–61015

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 113-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Application of Radioisotopes in Agriculture, Industries And Healthcare

Bharti Bahuguna

Assistant Professor, Chemistry Department, GDC Haldwani City, Kishanpur, Goulapar, Haldwani.

Abstract :

When the International Atomic Energy Agency was established in 1957, one of its primary objectives was to promote the broader application of radioisotopes in industry, research, medicine, and agriculture. For instance, radioisotopes and controlled radiation are utilized to enhance food crops, preserve food, explore groundwater resources, sterilize medical equipment, analyse hormones, manufacture X-ray tubes, control industrial processes, and investigate environmental pollution. In medicine, radioisotopes play a central role in the diagnosis and treatment of cancer. Radiotherapy with Iodine-131 and Iridium-192 is aimed at destroying cancer cells. However, radioisotopes also pose potential risks to human health and the environment if not handled properly, causing damage to cells and increasing the risk of cancer and other health problems.

Keywords : Radionuclide, radiation, radioactive tracer, tracer technique, nuclear medicine, Therapeutic radiation.

INTRODUCTION :

Radioactive isotopes do not differ chemically from their stable counterparts for the same element, but do contain radioactive elements that may be readily detected. If we replace one (or more) atom (s) with radioisotopes in a compound, we can track them by monitoring their radioactive emissions. This type of compound is called radioactive tracer (or radioactive label). Radioisotopes may be employed to label the trails of biochemical reactions or to quantify the distribution of a substance in a living organism. (OpenStax? Chemistry: Atoms First 2e? Chapter 20 Nuclear Chemistry?-Uses of Radiochemistry) Radioisotopes are of central importance in many areas. Due to their radioactivity, the isotopes are utilized in tracing, imaging, diagnosis, and therapy. In agriculture, the isotopes are utilized mainly for plant nutrient uptake research, investigation of the movement of water and nutrients in the soil, planning pest control campaigns, improvement of crops by mutation

breeding, and food storage by irradiation. By introducing fertilizers with radioisotopes such as phosphorus-32 (P-32), scientists can investigate the efficiency of nutrient uptake by plants from the soil. By utilizing deuterium (a non-radioactive isotope of hydrogen), scientists can investigate the movement of water in the soil profile and plant tissue and optimize irrigation management.

Radioisotopes are used mainly in industrial processes. Radioisotopes are also employed in certain manufacturing processes to induce desired chemical reactions, for example, the polymerization of wood impregnated with monomers. The bactericidal effect of ionizing radiation has been employed for the sterilization of medical products and devices[1]. Efficiency measurement of blast furnace is optimized using Cobalt-60, Lanthanum-140, Scandium-46, Silver-110m, and Gold-198 for residence time calculation and efficiency optimization. Gamma sterilization and industrial radiography utilize Cobalt-60 for sterilization, measurement of density, and fill height detection. Sewage and liquid waste movement studies utilize Gold-198 and Technetium-99m for tracing ocean pollution and measuring sand displacement.

The application of radioisotopes in the field of healthcare and medicine, in particular, has been very extensive. Radioisotope techniques are aiding diagnosis and prognosis in a variety of diseases, as well as providing relief through both curative and palliative treatment. The diagnostic techniques are performed in vitro using radioimmunoassay and in vivo using radiopharmaceuticals[1]. In medicine, radioisotopes play a central role in the diagnosis and treatment of cancer. Radiotherapy with Iodine-131 and Iridium-192 is aimed at destroying cancer cells. Hyperthyroidism and thyroid cancer are diagnosed and treated successfully with Iodine-131. Brachytherapy, an internal radiation therapy, employs permanent implant seeds of Iodine-125 or Palladium-103 for the treatment of early prostate cancer. Iodine -125sources for brachytherapy of certain intraocular tumours affecting the eyes are also in use. Cobalt-60 is extensively applied in the sterilization of medical equipment, making hospitals and laboratories safe. The extensive applications of radioisotopes demonstrate their vital role in scientific progress, industry, and medicine.

APPLICATION OF RADIOISOTOPES :

Radioactive elements emit a variety of radiations and energy particles during decay, which are used in health care, agriculture, Industry, and environmental studies for basic research and in a wide range of applications.

- **Application in Agriculture** : Radioisotopes are used to improve the quality and productivity of agricultural products as well as for optimum utilisation of fertiliser, insecticide, and pesticides without harmful effects to plants and mankind. The isotopic tracer technique (also known as atomic methods) was first proposed by GC de Hevesy and FA Paneth in 1913. This technique is based on the

fact that the chemical properties of various isotopes of elements are very similar. Isotopic techniques are useful and effective tools in agriculture, where they are used to assess the soil water and nutrient status, particularly in the immediate vicinity of crop roots. Radioisotopes such as P-32 and N-15 have been labelled as fertilizer and have been used to study the uptake,retention, and utilization of fertilizers[2,6]. Phosphate and sulphate labelled with P-32 and S-35 are used for studying the efficacy, quantity, correct time of application, mode of application, etc. The radio isotopes like Mn-54, Co-57, Fe-59,and Zn-65 are used as radiotracers to establish the role of the nutrients and estimate their optimal amounts[3]. For plant uptake and physiological studies, stable isotopes such as N-15 and O-18 are used as tracers. Recently, the isotopic technique using carbon isotopes was introduced for agricultural research in Nuclear Malaysia [16]. Green plants assimilate carbon from atmospheric carbon dioxide (CO2) through the process of photosynthesis. Carbon dioxide is composed of two stable isotopes, the less abundant C-13 and the lighter C-12. During photosynthesis, the plant discriminates against the heavier isotope in favour of the lighter one. The N-15 isotope dilution technique is used to quantify N_2 fixation by legume crops and N-fixing bacteria. The advantage in using the N-15 isotope dilution method is that it is able to differentiate nitrogen taken up from the plant from fertiliser and soil, from that biologically fixed[4].

Radioisotopes have played an important role in enhancing agricultural productivity sustainably. They are highly useful in optimizing fertilizer use, which can reduce costs and minimize environmental damage. Phosphorus-32 is employed in plant sciences to track how plants absorb fertilizer from roots to leaves. The phosphorus-32-labelled fertilizer is applied either hydroponically or through water in the soil, and its usage can be monitored via emitted beta radiation[5]. Radioactive isotopes also improve the quality and yield of agricultural products while aiding in insect, pest, and disease management. Pest control often uses the sterile insect technique (SIT), where large numbers of male flies are sterilized with gamma radiation before release into the field. These sterile males compete with normal males for mates, resulting in infertile eggs from their mating. This method was effectively used along the US–Mexican border to prevent flies from entering California, and it played a crucial role in eradicating screwworms in the southern USA, Mexico, Central America, and Panama (Radioisotopes in Food & Agriculture. UPDATED FRIDAY, 25 APRIL 2025)

Ionizing radiation is extremely useful in preserving agricultural and edible commodities. Many products used in our daily lives have, in some way, benefited from radiation during their production[6]. Ionizing radiation from isotopes like Co-60 and Cs-137, as well as electron accelerators, can be used for food preservation. When food is exposed to radiation, its interaction with DNA causes the death of microorganisms and insects[7]. In the United States, the F.D.A. (Food and Drug Administration) is in

charge of regulating food irradiation. Irradiated foods are required to show the symbol that is known as the radura on their label. Among these potential foods that are supposed to show that symbol are: meats (Pork, Beef, Chicken), shrimp, lobster, fruit, veggies, shellfish, and spices. Contrary to the belief of some people, irradiation of food does not make the food itself radioactive [8].

- **Application in Industry -** Industrial application of radioisotopes and radiation can be broadly classified into three categories, namely, radiation processing, non-destructive testing based on attenuation of radiation, and radiotracer application. Sterilization of medical products: Ionising radiation has been used as a bactericide for the sterilization of medical products and devices on a commercial scale. This technique is mainly a cold process. It is applied to disposable medical products that are manufactured from temperature-sensitive plastics.The gamma rays penetrate through these sealed packages and destroy microorganisms. Major advantages of this process are high inactivation factors, the ability to sterilize the product in its final package, enhancement of the shelf life of the products, and no carryover of toxic residues. Some of the products regularly sterilized are syringes, surgical dressings, blades, absorbent cotton wool, infusion sets, surgical kits, and certain antibiotics and ophthalmic ointments. Sewage Sludge Hygiene: The sludge is digested in anaerobic /aerobic digesters and discharged to drying beds for dewatering. The dried sludge is disposed of in sanitary landfills. India has set up a plant at Vadodara to hygienize sludge produced in one of the sewage treatment plants of the city and to produce pathogen-free sludge, which could be used as manure.

Treatment of Flue gases : A technique using electron beam radiation to convert the gaseous pollutant into useful fertiliser constituents like ammonium sulphate and ammonium nitrate. Radiation is now widely used for vulcanization of natural rubber latex instead of the conventional method using sulphur, which results in the formation of carcinogens in rubber. Radiation cross-linking of polymers imparts dimensional stability to polymers, thereby extending the working temperature range [9,10].

Use of radioisotopes in industry is in smoke detection. Smoke detectors employ a tiny amount of radioactive substance, like Americium-241, that is an emitter of alpha particles. The particles ionize the air and thus make a small electric current. When smoke is in the air, it disrupts the flow of ions and reduces the current [11]. The leakage in long and buried pipelines or those in industrial plants can be monitored with a short-lived isotope like Br-82(t1/2=32.3h). Minute leaks have also been detected, leading to savings of cost, energy, and man-hours. Similarly, leaks in dams and reservoirs can also be detected. Gamma radiography is used for non-destructive examination of castings and welds[1].

- **Application in Healthcare –** The application of radioisotopes in the field of healthcare and medicine, in particular, has been very extensive. Radioisotope techniques are aiding diagnosis and

prognosis in a variety of diseases, as well as providing relief through both curative and palliative treatment. The diagnostic techniques are performed in vitro using radioimmunoassay and in vivo using radiopharmaceuticals[1]. (Fundamentals of radiochemistry). In medicine, especially, radioactivity plays a crucial role, with application in both diagnosis and treatment of various diseases, including cancer. However, radioisotopes also pose potential risks to human health and the environment if not handled properly, causing damage to cells and increasing the risk of cancer and other health problems. Their use is regulated and monitored to ensure safety, which has led to a steady increase over the past few decades. Overall, radioactive isotopes are a valuable tool in a wide range of fields, and their continued development and application will remain important for years to come[6]. The technique of Radioimmunoassay/Immunoradiometricassay (RIA/IRMA) is now a standard practice in clinical medicine. Ready-to-use RIA/IRMA kits are now available for almost all hormones, drugs, and many other important antigens. Many problems of infertility have been diagnosed by the assay of the protein hormones, luteinizing hormone, follicle-stimulating hormone, and the steroid hormones, namely testosterone, estradiol, etc. Assays for tumour makers such as thyroglobulin (Tg), prostate-specific antigen (PSA), alpha-fetoprotein (AFT), and carcinoembryonic antigen(CEA) are used in the prognosis/ diagnosis of cancer and screening of patients. (Fundamentals of radiochemistry, page no. -315) Radiopharmaceuticals are open-source radioisotope products in the form of solutions, capsules, and injections. Sealed sources of Co-60 and Cs-137 are used for teletherapy and brachytherapy for the treatment of cancer.

The radiopharmaceuticals can be classified as :

A. Simple Radiochemical - I-131 as sodium iodide and Cr-51 as sodium chromate. Sodium iodide is used even now for the diagnosis of some thyroid disorders and for the therapy of thyrotoxicosis and thyroid cancer.

B. Labelled Compounds - Iodine labelled radiopharmaceuticals include I-123/131 labelled heparin for kidney function studies and I-123/131 labelled metaiodobenzylguanidine (MIBG) for neuro-endocrine tumours.

C. Coordinate complexes of Radio metals- The radionuclide Tc-99m, In-111, and Re-186/188 labelled compounds fall in this category [1].

Positron Emission Tomography, or PET scan, is a type of nuclear medicine imaging.PET is most often used in cancer care, where fluorine-18 acts as the tracer. It is considered the most accurate non-invasive way to detect and assess most cancers. PET is also valuable for heart and brain imaging. Newer methods combine PET with CT scans, which helps match the two images and improves diagnosis by about 30% compared to using a gamma camera alone. PET offers important information for many

diseases, including dementia, heart disease, and cancer. When PET is combined with MRI, especially for brain scans, it allows for detailed imaging of soft tissue and advanced analysis[12]. A PET scan helps doctors determine how the organs and tissues inside your body are actually functioning. This procedure uses positron-emitting radioisotopes such as C-11, N-13, O-15, or F-18. The principal radiopharmaceuticals used are fluorodeoxyglucose (FDG) with F-18, water with O-15, and ammonia with N-13.PET scans are used in Neurology, Cardiology, and Oncology. Myocardial perfusion imaging (MPI) uses thallium-201 chloride or Tc-99m to help detect and predict the outcome of coronary artery disease. Among therapeutic applications, radionuclide therapy is the most widely used. Selective irradiation of the unwanted cells is the main goal of these procedures. The ability to target the abnormal tissues with the maximum doses of radiation. Radioisotopes are used in radiotherapy to treat cancer by damaging or destroying cancer cells. Radioactive iodine (I-131) is used to treat hyperthyroidism by destroying overactive thyroid tissue[13]. Radioisotopes like Radium-223 can be used to target and treat bone metastases in patients with certain cancers. Polycythaemia vera is a haematological disorder characterized by the overproduction of red blood cells in the bone marrow. The radioisotope phosphorus-32 (P-32) is administered to regulate this abnormal cell proliferation. Malignant tumours exhibit sensitivity to ionizing radiation, which enables targeted irradiation to control or eradicate specific cancerous tissues. This may be called radiosurgery.

Teletherapy - In this therapy, the radiation source commonly used is Co-60 because of certain desired characteristics like high specific activity, high radiation output per curie, and long half-life.

Brachytherapy – Brachytherapy procedures are more cost-effective, more localized to the target tumour, and provide less radiation to the body overall. Thyroid cancer, arguably the most effective type of cancer treatment, is frequently treated with iodine-131 [13]. Thyroid conditions that are not cancerous are also treated with it. Particularly, iridium-192 implants are utilized in the breast and head. Cancers that have been treated with brachytherapy are Prostate, Breast, Oesophageal, Uterine, Anal/Rectal, and Head and neck[14].

NOTE -

The “m” in Tc-99m stands for “metastable,” indicating that this is an unstable isotope.

Ionizing radiation is used in CT, PET, X-ray, and isotopic research. On the other hand, ionizing radiation is not used in ultrasounds or magnetic resonance imaging (MRI).

CONCLUSION -

Today, radioisotopes play a critical role in various aspects of human life, and their property to spontaneously emit radiation is successfully used in medicine, agriculture, consumer products, and various industries. Radioisotopes play an important role in pharmacokinetics and drug metabolic

studies. Radiotracers provide vital information with respect to the proof of the mechanism of action of the drug in vivo. The use of radioactivity has a bright future because new and creative applications are anticipated as a result of ongoing technological and scientific developments. For example, radioisotopes may be used to develop new and improved cancer treatments and diagnostic imaging. As worries about pollution and climate change grow, radioisotopes may also play a bigger role in environmental monitoring and cleanup initiatives. Food preservation by irradiation is a cold process and does not bring any change in the freshness and texture of food. Almost all the packaging material currently used in the food industry, e.g., plastic bags, laminated plastic film with aluminium foil, etc., is suitable for irradiation. The procedure is environmentally friendly and uses less energy. Overall, radioactivity is likely to continue playing a significant role in many different fields, with its impacts continuously growing.

Further research is needed to compare the efficiency of stable isotopes to conventional radioisotope technologies in various fields such as agriculture, Industrial, Medicinal, etc because stable isotopes do not emit radiation and are safer for workers. Their usage reduces environmental contamination and health hazards associated with using radioactive materials [15].

REFERENCES -

1 D.D.Sood,A. V. R. Reddy, N. Ramamurthy; Fundamentals of Radiochemistry ; Dec. 2010, 4thedition.IANCAS)

2. C.G.Lamm; Applications of Isotopes and Radiation in Agriculture* ; IAEA BULLETIN-VOL 21, NO.2/3)

3. G.Harderson, Use of Nuclear Technique in Soil Plant Relationship, Training Courses Series No. 2.IAEA,Vienna (1992).

4. Affrida Abu Hassan Nur Humaira' Lau Abdullah; Knowledge document series isotopic tracer techniques for soil nutrient and water studies. https://www.nuclearmalaysia.gov.my/penerbitan/ebook/fileAttach/Agro.pdf

5. B. Singh ,J. Singh & A. Kaur "Applications of Radioisotopes in Agriculture". International Journal of Biotechnology and Bioengineering Research, vol. 4, no. 3, pp. 167–174, 2013.

6. A.L. Siyal ,A. Hossain ,F.K. Siyal , T.Jatt , &S. Iram . "Use of Radioisotopes to Produce High-Yielding Crops in Order to Increase Agricultural Production". Chemistry Proceedings, vol. 10, no. 1, 2022, doi: 10.3390/IOCAG2022-12267

7. A.K.Sharma,Guest Editor, Preservation of Food by Ionising Radiation, IANCAS Bulletin, 14(1)1998.)

8. https://chem.libretexts.org/Bookshelves/Introuctory_Chemistry/Chemistry_for_Changing_Tim Mumbai (1994).
10. D.D.Sood, A.V.R.Reddy, S.R.K.Iyer, S.Gangadharan, and Gursharan Singh; Application of Radioisotopes and Radiation in Industrial Development, NAARRI, Mumbai 998).
11. S.G. Hutchison and F.I. Hutchison ; "Radioactivity in Everyday Life". J Chem Educ, vol. 74, no. 5, p. 501, May 1997, doi: 10.1021/ed074p501.)
12. https://world-nuclear.org/information-library/non-power-nuclear-applications/radioisotopes-research/radioisotopes-in-medicine#:~:text=Diagnostic%20radiopharmaceutic
13. Therapeutic application of Radiopharmaceuticals for Diagnosis and Therapy,IAEA-TECDOC 1228 (2001), IAEA Vienna.
14. https://world-nuclear.org/information-library/non-power-nuclear-applications/radioisotopes-research/radioisotopes-in-medicine#:~:text=Diagnostic%20radiopharmaceutic)
15. K.A. Snyder, S.A. Robinson, S. Schmidt, K.R. Hultine.Stable isotope approaches and opportunities for improving plant conservation Conserv. Physiol., 10 (2022), Article coac056, 10.1093/conphys/coac056
16. https://www.nuclearmalaysia.gov.my/penerbitan/ebook/fileAttach/Agro.pdf??

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 121-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Foodways in Transit : Culinary Practices, Identity and Social Networks among Bengali Migrants in Lucknow

Dr. Arvind Kumar Gupta
Assistant Professor, Agra College, Agra

Abstract :

Migration is not only a physical relocation but also a cultural reconfiguration. Among the Bengali migrants in Lucknow, food serves as a key medium of cultural retention, adaptation, and social networking. This research examines the role of culinary practices in sustaining identity, fostering community cohesion, and mediating intercultural exchange. Using ethnographic data and quantitative findings from field research among Bengali migrants, the paper explores how foodways function as cultural codes, emotional anchors, and instruments of acculturation. The analysis reveals that food is both a cultural continuity and a social strategy, allowing migrants to negotiate belonging in a multicultural urban environment. The study contributes to migration sociology by situating food as a central element in identity and network formation.

Keywords : migration, Bengali migrants, Lucknow, foodways, cultural identity, social networks, acculturation.

1. Introduction :

Migration involves not merely the movement of people but also the migration of **memories, emotions, and tastes**. As Bengali migrants move from eastern India to cities such as Lucknow, they carry with them distinctive culinary habits, food-related rituals, and cultural symbols that help them reconstruct a sense of home. Food becomes a form of **cultural memory** and a **social language** through which belonging is negotiated in new spaces.

In Lucknow—historically a center of Nawabi cuisine and refined urban culture—the arrival of Bengali migrants introduces a dynamic culinary dialogue. Bengali foodways such as *fish chop*, *rosogolla*, *mutton kosha*, and *bhapa shondesh* not only sustain nostalgia but also serve as cultural

signifiers that connect migrants to each other and to the larger community. The city's Durga Puja pandals, tea stalls, and Bengali clubs become vibrant spaces of **food-based sociability**.

This paper aims to analyze how food practices among Bengali migrants in Lucknow shape identity, community, and interaction. It asks :

- How do Bengali migrants reproduce their culinary traditions in Lucknow?
- How does food serve as a tool for social networking and acculturation?
- What transformations occur when Bengali culinary practices encounter Lucknow's food culture?

2. Review of Literature

2.1 Food and Culture :

Food is one of the most powerful and enduring markers of culture, identity, and social life. It is not simply a biological necessity or a means of nourishment, but a **symbolic language** through which people communicate belonging, distinction, and emotion. The preparation, consumption, and sharing of food reflect the historical evolution, geographical context, social hierarchies, and moral values of a community. Every meal, ingredient, or culinary practice can therefore be viewed as a **social text** that encodes meanings about kinship, class, religion, and collective memory. In this sense, food functions as both a **material artifact** and a **cultural performance**.

Dilly Devi (1986) argues that food systems are integral parts of the socio-cultural nexus and are intimately linked with social, material, and ideological realities. The act of eating, in this framework, represents more than the fulfillment of hunger; it embodies ritual order, social cohesion, and symbolic distinction. For example, in India, the preparation and sharing of food are guided by deeply embedded cultural logics related to purity, pollution, and hierarchy. What one eats, who cooks it, and with whom one shares it all communicate one's position in the moral and social order. Thus, food becomes a **medium of classification** and a **mirror of society**.

In the context of Bengali culture, food occupies an even more elaborate place in the construction of identity. Bengali cuisine—rich in fish, rice, sweets, and mustard oil—has historically been associated with **aesthetic refinement and emotional expressiveness**. The Bengali meal is not merely a routine but an artistic experience that combines sensory pleasure with moral and affective dimensions. Ritual foods such as *bhog* during Durga Puja, *payesh* during birthdays, or *mishti* during social visits symbolize the blending of spirituality and sociability. Through these culinary traditions, Bengalis not only nourish their bodies but also reaffirm their cultural worldview—a worldview that celebrates abundance, artistry, and emotional warmth.

Anthropologists have long emphasized the relationship between **food and identity**. Mary Douglas (1972) described meals as "codes" through which societies express their structures of meaning

and order. Claude Lévi-Strauss (1966), in his "culinary triangle," proposed that the transformation of food—from raw to cooked—mirrors the transformation of nature into culture. Building on these ideas, Arjun Appadurai (1988) argued that food is a "highly condensed social fact," carrying within it histories of trade, colonialism, class, and gender. Culinary practices, therefore, are sites where global forces intersect with local traditions, creating new cultural forms. In migration contexts, these intersections become especially visible, as migrants attempt to **recreate familiar tastes in unfamiliar settings**, negotiating both continuity and change.

Food, moreover, carries **emotional and mnemonic power**. The sensory dimensions of taste and smell often evoke deep memories of home, family, and childhood. As Sutton (2001) explains in his study of Greek migrants, food acts as a "mnemonic device" that brings the past into the present. For Bengali migrants in Lucknow, the aroma of mustard oil, the texture of steamed rice, or the sweetness of *rosogolla* can instantly transport them back to the alleys of Kolkata or the riverbanks of the Ganges. This act of remembering through food allows migrants to sustain a sense of belonging and continuity despite geographic displacement. Thus, food becomes a **repository of memory**, a portable homeland that travels across borders.

At the same time, food practices are not static; they are shaped by **social interaction and adaptation**. As Bengalis encounter new ingredients, cooking techniques, and dietary norms in Lucknow, their cuisine evolves in response to local influences. This dynamic interplay between preservation and innovation reflects the broader sociological process of **acculturation**. Migrants retain certain core symbols of their cuisine—such as fish or sweets—as identity markers, while incorporating elements of the host culture to express flexibility and openness. For instance, many Bengali migrants in Lucknow enjoy the local *chaat* or *tunday kabab* alongside their traditional dishes, demonstrating a cultural negotiation between heritage and modernity. Food, therefore, serves as both **a site of resistance** (against cultural erasure) and **a site of dialogue** (toward intercultural understanding).

Furthermore, food plays a central role in defining **social relationships and community networks**. Sharing a meal is one of the oldest and most intimate forms of social bonding. Within the Bengali migrant community, communal eating during festivals like Durga Puja or Poila Baishakh reaffirms collective identity and solidarity. These occasions embody what Émile Durkheim (1912) called *collective effervescence*—the heightened sense of unity and energy experienced when individuals come together in ritual contexts. In the pandals of Lucknow, food stalls serving *bhapa shondesh*, *mochar chop*, and *mutton kosha* not only feed the body but also nourish the social spirit. Eating becomes an act of remembrance, celebration, and reaffirmation of cultural belonging.

Contemporary sociologists have also explored food as a form of **soft power and cultural**

diplomacy. The concept of *gastrodiplomacy* (Wilson, 2013) suggests that sharing one's cuisine can bridge cultural divides and foster empathy. Bengali migrants in Lucknow, through their open food stalls and culinary hospitality, engage in everyday gastrodiplomacy—winning hearts through their flavors and warmth. A respondent in this study captured this sentiment aptly when she said, "We Bengalis win hearts with our *rosogolla*." Food here functions as a **social connector**, transforming cultural difference into conviviality.

Finally, food must be understood as part of the **moral economy** of society. The exchange of meals and sweets during festivals or family gatherings is not merely economic but symbolic. It conveys respect, love, and reciprocity. As Marcel Mauss (1925) argued in *The Gift*, such exchanges create moral obligations that sustain social harmony. Among Bengali migrants, offering food to neighbors, inviting friends for *bhog*, or distributing sweets after religious rituals becomes a moral practice that reproduces trust and solidarity in the diaspora.

In summary, food is both **a mirror and a maker of culture**. It embodies collective history, mediates identity, sustains emotional bonds, and structures social relationships. Among Bengali migrants, it is through food that culture travels, transforms, and survives. Foodways thus serve as vital sociological indicators of how communities adapt to change while preserving the flavors of belonging.

2.2 Food and Migration :

Migration has long been a defining feature of human civilization, shaping economies, social relations, and cultural landscapes. However, the cultural dimension of migration—especially as expressed through **food practices**—has only recently gained prominence in sociological inquiry. While traditional migration theories (Ravenstein, 1885; Lee, 1966) emphasized push-and-pull factors such as employment or resource distribution, newer perspectives foreground **identity, belonging, and cultural reproduction** as key aspects of the migratory experience. Food, as one of the most tangible and emotional aspects of everyday life, becomes a crucial lens to understand how migrants sustain continuity amidst dislocation.

When people migrate, they carry not only their physical possessions but also **intangible cultural baggage**: languages, rituals, and, significantly, recipes and tastes. These culinary repertoires act as cultural markers that help migrants maintain a sense of self and community in alien environments. As Cwiertka (2006) argues, foodways are among the most durable cultural forms because they are deeply embedded in both the body and memory. For Bengali migrants in Lucknow, the continued preparation of traditional dishes like *machher jhol*, *luchi-aloor tarkari*, and *rosogolla* represents a conscious attempt to **recreate home through taste**. The kitchen becomes a site of remembrance and resistance—a space where migrants assert their identity in a new social setting.

The relationship between food and migration is not unidirectional. While migrants bring their culinary traditions to new places, they also adapt to the host culture's ingredients, tastes, and social norms. This dual movement reflects the process of **acculturation**, a concept defined by Redfield, Linton, and Herskovits (1936) as the mutual exchange of cultural features between groups in contact. In culinary terms, this exchange manifests in the blending of local and migrant cuisines, leading to what scholars call **hybrid foodscapes** (Heldke, 2003). In the case of Lucknow, Bengali migrants maintain their culinary distinctiveness through their love of mustard oil, fish, and sweets, while simultaneously embracing local dishes such as *tunday kebab*, *chaat*, and *mughlai paratha*. This culinary interaction not only reflects adaptation but also fosters a sense of mutual curiosity and respect between the two communities.

The sociology of migration has increasingly acknowledged food as a central site of **cultural negotiation and emotional anchoring**. Avtar Brah (1996) uses the term "diaspora space" to describe a social field where identities are constantly formed and reformed through interactions among migrants and locals. Food becomes a crucial element of this space, mediating relationships of difference and commonality. For instance, Bengali migrants in Lucknow organize food festivals and community feasts during Durga Puja, Poila Baishakh, and Saraswati Puja, inviting locals to taste their delicacies. Through these shared experiences of eating and hospitality, **food transforms from a boundary marker into a bridge of social connection**.

Anthropologists have observed that migrants often recreate symbolic geographies of home through food practices. Bell and Valentine (1997) describe how "the migrant's kitchen becomes an archive of nostalgia and a workshop of identity." For Bengalis in Lucknow, the act of shopping for specific spices, preparing fish in mustard oil, or serving sweets after every meal becomes a ritual performance of cultural memory. These culinary gestures are **emotional technologies** that counter the alienation of migration. They reproduce the rhythms of everyday life that migrants once knew in their homeland, allowing them to feel at home in a foreign city.

At the same time, food practices reveal internal transformations within migrant identities. The first generation of migrants tends to preserve traditional recipes and cooking methods, while younger generations innovate and experiment, incorporating local influences and global flavors. This generational shift reflects what Bourdieu (1984) termed the **habitus**—a system of embodied dispositions that evolves through social experience. For example, second-generation Bengali youth in Lucknow may enjoy both *mutton kosha* and *Chinese noodles*, symbolizing their dual identity as Bengalis and Lucknowites. The dining table, in this sense, becomes a microcosm of cultural hybridity. Food is also a medium through which **social networks** among migrants are created and maintained.

Sharing meals, exchanging recipes, or organizing food-based gatherings strengthens social ties within the community. These practices embody what Granovetter (1973) called "the strength of weak ties," as they extend beyond family networks to include friends, colleagues, and neighbors. The Bengali Club in Lucknow, for instance, not only organizes cultural events but also facilitates culinary exchange—members contribute dishes for communal feasts, and women's groups hold cooking competitions. Such events transform food into a **social technology of bonding**, sustaining both emotional and practical forms of mutual aid among migrants.

Furthermore, food practices intersect with **gender and class** in the migrant context. Women often emerge as the custodians of culinary heritage, responsible for preserving and transmitting traditional recipes. In Bengali households, women's cooking labor is both cultural and emotional—through food, they maintain family cohesion and cultural continuity. Men, on the other hand, often engage with food in public spaces such as restaurants and pandals, where eating becomes a performative act of social identity. This gendered division of culinary labor reflects broader patriarchal structures but also enables women to exercise **cultural agency** within the private sphere.

The migration of food practices also affects the host society. As migrants establish eateries or food stalls, they introduce new tastes and aromas into the urban foodscape, contributing to **culinary diversification**. In Lucknow, Bengali sweets like *rosogolla* and *sandesh* have gained popularity among non-Bengalis, while local confectioners have adapted these items with regional twists. This process mirrors what Appadurai (1996) calls *global ethnoscapes*—the fluid circulation of people, commodities, and ideas that reshape local cultures. Thus, food not only sustains migrant identity but also **enriches the host culture**, fostering intercultural dialogue through everyday acts of consumption. Food and migration are also bound together by **emotional and psychological dimensions**. For migrants, familiar tastes provide comfort and security in unfamiliar surroundings. As Parkhurst Ferguson (1998) notes, "food becomes the ultimate metaphor for assimilation, integration, and nostalgia." The inability to access familiar ingredients or replicate authentic flavors can lead to frustration or loss, while discovering a community that shares one's taste preferences can produce a profound sense of belonging. In the Bengali context, the search for authentic fish or sweets in Lucknow represents not just a culinary quest but a **journey toward emotional homecoming**.

In sum, food and migration are intertwined in a continuous cycle of movement, memory, and meaning. Food allows migrants to reconstruct cultural boundaries, sustain emotional well-being, and establish social networks that mitigate the isolation of displacement. It embodies both **continuity and transformation**, reflecting how people adapt to new environments without abandoning their roots. For Bengali migrants in Lucknow, every meal is more than sustenance—it is an act of

remembrance, resilience, and renewal. Their culinary practices illuminate how migration is not only about moving across space but also about **re-creating the taste of home in transit**.

2.3 Food as Memory and Identity :

Food is one of the most intimate mediums through which individuals remember, recreate, and express their identities. The act of cooking and eating connects the sensory and the social, the personal and the collective, the past and the present. It is through food that people narrate who they are, where they come from, and what they wish to preserve or transform. In migration studies, food functions not only as a cultural signifier but as an **embodied archive of memory**—a repository of experiences, emotions, and identities that travel across space and time.

Maurice Halbwachs (1992) introduced the notion of **collective memory**, arguing that remembering is a social process sustained by interaction and shared symbols. For migrants, food is among the most potent of these symbols. It materializes memories that might otherwise remain abstract. The smell of fried fish, the sight of steaming rice, or the texture of a sweet like *rosogolla* can evoke vivid recollections of family gatherings, festivals, and childhood homes. These sensory memories, often involuntary, allow migrants to relive moments of belonging and emotional security even in alien environments. Thus, as Connerton (1989) notes, memory is not stored merely in the mind but enacted through bodily practices—through gestures, routines, and tastes repeated over time.

Among Bengali migrants in Lucknow, food serves as a crucial thread connecting them to their homeland. The everyday preparation of *machher jhol* (fish curry), *luchi* (puffed bread), or *payesh* (rice pudding) is not only an act of sustenance but also a ritual of remembrance. These foods evoke the cultural landscape of Bengal—the riverine geography, the seasonal rhythms, and the emotional ethos that define Bengali life. As respondents in the field study emphasized, "we migrate with our taste and our feelings." Food thus becomes a portable homeland, a sensory vessel through which the memory of Bengal travels and survives in the cosmopolitan milieu of Lucknow.

Arjun Appadurai (1981, 1988) describes food as a "highly condensed social fact," meaning that culinary practices encapsulate multiple layers of meaning—economic, cultural, emotional, and moral. Migrants' food memories, in particular, condense narratives of displacement and continuity. They transform absence into presence: cooking familiar dishes becomes a way to fill the void of separation. As Sutton (2001) explains in his study of Greek migrants, food is both "a means of remembering and a practice that produces memory." This duality is vividly evident among Bengalis in Lucknow, for whom cooking and sharing traditional food is both an act of nostalgia and a strategy of adaptation. Each meal reaffirms the continuity of identity amid the flux of migration.

Food memories also have a **collective dimension** that reinforces community solidarity. During

Durga Puja, for instance, the preparation and consumption of *bhog*—a sacred offering of rice, lentils, and vegetables—bring the migrant community together in a shared emotional experience. Eating the same dishes that are consumed in Kolkata or Siliguri synchronizes migrants' sense of time and belonging with their homeland. The collective preparation of *bhog* or sweets like *bhapa shondesh* during festivals serves as an embodied form of collective memory, what anthropologist Paul Connerton (1989) would call *commemorative performance.* Through such performances, cultural identity is not simply remembered but **re-enacted**, reaffirmed through repetition and participation.

Moreover, food memories play a crucial role in **intergenerational identity transmission**. For first-generation Bengali migrants, cooking serves as a pedagogical act—they teach their children and grandchildren how to prepare traditional dishes, narrating stories about ancestral villages and family customs in the process. These domestic rituals transform the kitchen into a classroom of culture, where recipes become lessons in history and identity. The younger generation may not have direct experiences of Bengal, but through taste and smell, they inherit a sense of belonging. As Krishnendu Ray (2004) notes, "food memories are not only recollections but acts of cultural reproduction." They ensure that the flavors of home persist even when geography and language begin to fade.

At the same time, food-related memories are not purely nostalgic; they also reflect **selective remembering and creative adaptation.** Migrants reinterpret their culinary traditions in response to new environments and availability of ingredients. In Lucknow, where freshwater fish or specific Bengali spices may be hard to find, migrants experiment with local substitutes. Such adaptations, while altering the "authentic" taste, generate new forms of attachment. As Lu and Fine (1995) observe, authenticity itself is a social construct negotiated within communities. For Bengali migrants, authenticity lies less in perfect replication than in the act of **re-creating the emotional essence** of home through food.

The relationship between food, memory, and identity is also mediated by **gendered experiences.** Women, traditionally the primary cooks in Bengali households, carry the heaviest burden of cultural reproduction. Through their culinary labor, they preserve family traditions and emotional continuity. Cooking becomes a form of what Pierre Bourdieu (1977) called *habitus*—an embodied disposition that expresses social values and aesthetic sensibilities. A mother teaching her daughter to prepare *cholar dal* or *aloor dom* transmits not just technique but also a way of being Bengali. Yet, women also innovate, blending old and new recipes, thereby ensuring that memory remains dynamic rather than static.

For men, food memories often manifest in public and performative ways—through eating

together at community gatherings, clubs, and festivals. Sharing food in these spaces reaffirms collective identity and mutual recognition. As one male respondent explained, "eating together during Durga Puja feels like being back in Kolkata." Such communal experiences link food with **collective nostalgia**, a shared emotional terrain that strengthens intra-community bonds.

In addition to preserving the past, food memories help migrants **negotiate their present identities** in multicultural settings. In Lucknow's plural foodscape, Bengali migrants assert difference through their unique culinary traditions while simultaneously engaging with local tastes. This negotiation produces what Stuart Hall (1990) terms *"new cultural identities"*—hybrid, fluid, and situational. The Bengali migrants' food identity, therefore, is not a relic of the past but a living synthesis of multiple influences. Their preference for both *rosogolla* and *chaat*, for example, reflects a layered identity that accommodates tradition and adaptation.

Food also functions as a **mnemonic bridge** across social boundaries. Sharing Bengali dishes with Lucknowite neighbors or colleagues fosters cross-cultural understanding and dismantles stereotypes. Such acts of hospitality transform private memories into public gestures of connection. This resonates with Marcel Mauss's (1925) theory of the gift: offering food creates reciprocal bonds and moral obligations that reinforce social cohesion. In this way, food memories extend beyond personal nostalgia to become instruments of social integration.

Finally, the memory-identity relationship in foodways underscores the resilience of migrant cultures. Despite geographical dislocation and generational change, the Bengali migrants of Lucknow continue to cultivate the emotional geography of home through their culinary practices. Their kitchens become sanctuaries of remembrance; their meals, narratives of endurance. As one respondent beautifully summarized, "Our fish, our sweets, our mustard oil—they are not just food. They are our identity in taste."

Thus, food functions simultaneously as **archive, performance, and identity marker**. It archives the past in recipes and rituals; it performs belonging through communal eating; and it marks identity through sensory and emotional continuity. For Bengali migrants, memory is not a static recollection but a dynamic cultural practice sustained through the daily act of cooking, eating, and sharing. Through food, they transform migration from a story of loss into one of renewal, where every meal becomes a bridge between home and elsewhere.

3. Theoretical Framework :

The study draws upon three interconnected sociological frameworks :

- **Pierre Bourdieu's (1984) concept of habitus** — Culinary preferences and practices reflect embodied cultural dispositions. Bengali migrants' attachment to fish or sweets expresses their class

and regional habitus even in new environments.

- **Symbolic Interactionism (Blumer, 1969)** — Shared meanings of food are co-constructed in interaction. Eating together at Durga Puja pandals, for example, reaffirms collective identity.
- **Acculturation Theory (Redfield, Linton, & Herskovits, 1936)** — Food becomes a key domain of mutual cultural influence between migrants and host societies.

These perspectives together illuminate food not merely as sustenance but as **social text** — an arena where identity, belonging, and adaptation are continuously negotiated.

4. Methodology

4.1 Research Design :

This research is based on qualitative and quantitative data gathered among Bengali migrants residing in Lucknow. The approach combines ethnographic observation, interviews, and statistical tabulation of culinary preferences.

4.2 Sampling :

- **Sample size :** 50 Bengali migrants residing in neighborhoods such as Model House, Gomti Nagar, and Jankipuram.
- **Profile:** Teachers, students, NGO workers, homemakers, and professionals.
- **Gender:** 56% female, 44% male.
- **Migration type:** Mostly post-1990 internal migration from Kolkata, Howrah, and Siliguri.

4.3 Data Collection Tools :

- Participant observation during Durga Puja and Bengali New Year (*Poila Baishakh*) celebrations.
- Semi-structured interviews focusing on food memories, eating habits, and festival participation.
- Tabulation of food preferences collected through questionnaires.

4.4 Data Analysis :

Data were coded thematically around three domains — **culinary practices**, **identity expression**, and **social networking** — with supporting quantitative data drawn from tables in the field notes.

5. Findings and Analysis

5.1 Migration, Food, and Cultural Continuity :

Migrants carry with them not only belongings but also **taste memories**. As your Chapter 4 notes, Bengalis "migrate with their food habits, beliefs, and emotions." In Lucknow, they recreate the essence of Bengal through cuisine — from cooking *machher jhol* (fish curry) in mustard oil to organizing *bhog* at community events.

Durga Puja emerges as the central site of this cultural reproduction. The festival transforms the city into a temporary Bengal, where food stalls sell *mochar chop*, *bhapa shondesh*, *alu posto*, and *rosogolla*. These spaces are not merely commercial; they are **performative arenas of identity** where food, music, and language converge.

5.2 Food as Social Connector :

During Durgotsav, Bengali migrants meet at pandals like Bengali Club, Boys' Anglo, Model House, and Vidyant Hindu P.G. College. Eating together — sharing sweets, fish dishes, and tea — creates moments of **"collective effervescence"** (Durkheim, 1912). Such gatherings help maintain intra-community ties while also inviting interaction with local Lucknowites who increasingly visit these pandals for food and festivity.

Respondent Maneesha summarized :

"Eating outside is not just eating — it's learning, socializing, and sharing joy."

5.3 Quantitative Snapshot: Food Preferences

Food Item	Liked by Bengali Migrants (%)
Fish Chop	91%
Mutton Kosha	74%
Bhapa Shondesh	83%
Rosogolla	93%
Cholar Dal	69%
Rice	69%

This data indicates that **non-vegetarian dishes dominate** Bengali migrants' preferences, reflecting the coastal and riverine origin of Bengal's cuisine.

Another dataset shows :

Dietary Type	Percentage
Vegetarian	22%
Non-Vegetarian	66%
Eggitarian	12%

Clearly, non-vegetarianism is integral to Bengali cultural identity, carried intact even in Lucknow's predominantly Awadhi-vegetarian foodscape.

5.4 Urban Foodscapes and Hybridization :

In public eating spaces, Bengali migrants explore both **ethnic** and **local cuisines** :

Street/Restaurant Food Item	Liked by Migrants (%)
Chicken	92%
Mutton	84%
Fish	93%
Paneer Curry	76%
Rice	91%

The blending of *chaat* and *Chinese fast food* with traditional Bengali tastes reveals **acculturative hybridity** — the fusion of Lucknowi and Bengali culinary cultures.

5.5 Acculturation Through Food :

As the chapter notes, acculturation between Bengali migrants and Lucknowites is **bidirectional**. While Bengalis adopt Lucknow's "pehle aap" *tehzeeb* and eat *tunday kebab*, locals visit Durga Puja pandals, taste Bengali sweets, and even greet in Bengali phrases like *Ami bhalo achi*. This culinary exchange transforms the city's social fabric, generating mutual curiosity and empathy.

5.6 Food, Gender, and Domestic Spaces :

Within households, women remain the primary custodians of culinary tradition. Preparing *sada aloor tarkari*, *luchi*, and *mishti doi* becomes a form of **emotional labor** — preserving identity through daily routines. At the same time, male members often engage in social eating — at clubs, eateries, or food stalls — turning food into an instrument of public sociability.

5.7 Case Narratives :

Aparajita Banerjee (36), Teacher :

"Life is about eating, travelling, and not taking tension… we eat out every weekend." Her narrative represents an emerging **urban Bengali modernity**, where food becomes leisure and pleasure, not just tradition.

Reeti Roy (42), NGO Worker :

"There must be sweetness in every Bengali thing — a sweet completes the meal." Her emphasis on *mishti* symbolizes the emotional sweetness Bengalis associate with life and relationships.

Aparna Mitra (24), Student :

"During Durga Puja, I dance and eat with my friends; food connects us to home." Her testimony highlights how food rituals reinforce intergenerational identity among young migrants.

6. Discussion

6.1 Food as Cultural Memory :

Food acts as a **mnemonic bridge** connecting migrants to their homeland. The sensory

experiences of taste and smell reconstitute home in alien spaces. Bengali dishes like *rosogolla* and *machher jhol* are not mere recipes—they are carriers of cultural nostalgia.

6.2 Social Networks and Community Formation :

Regular food-based gatherings — Durga Puja feasts, community dinners, and Bengali Club events — serve as **networks of solidarity**. Migrants exchange information, assistance, and emotional support in these settings. Thus, food networks double as **social safety nets**.

6.3 Acculturation and Culinary Dialogue :

The process of acculturation in Lucknow is marked by **reciprocal influence**. While Bengalis adapt to local tastes, Lucknowites embrace Bengali dishes, particularly sweets. This aligns with Redfield's definition of acculturation as a two-way cultural exchange without complete assimilation.

6.4 Food and Urban Belonging :

Eating practices make visible claims to space and belonging. By opening Bengali eateries, organizing food stalls, or cooking traditional dishes during festivals, migrants **inscribe their presence** on Lucknow's cultural map. Food becomes both a **marker of difference** and a **tool of integration**.

6.5 The Emotional and Symbolic Economy of Food :

Food exchanges during festivals embody what Mauss (1925) termed *the gift*. Offering sweets or meals creates obligations of reciprocity, reinforcing social ties. Bengali migrants thus participate in a **moral economy of sharing**, which sustains both community and cross-cultural friendship.

7. Theoretical Implications :

- **Bourdieu's Habitus :**
- Bengali migrants' food habits express embodied dispositions rooted in regional taste hierarchies. Even in Lucknow, mustard oil, rice, and fish signify their culinary identity.
- **Symbolic Interactionism :**
- Through shared eating rituals, meanings of food are reconstructed in Lucknow's social context — turning meals into communicative acts.
- **Acculturation and Cultural Hybridization :**
- Bengali food practices in Lucknow exemplify *cultural creolization* — where culinary practices blend yet retain distinct identities.

8. Conclusion :

For Bengali migrants in Lucknow, food serves as a bridge between **memory and modernity**, **tradition and transformation**. It is through food that migrants relive their Bengal while integrating into the cosmopolitan culture of Lucknow.

Foodways create spaces of sociability, mediate emotions of nostalgia, and articulate cultural

identity. Festivals like Durga Puja transform cuisine into a performative act of belonging, while everyday food practices sustain cultural resilience.

Thus, **food in transit** is not merely sustenance; it is a living narrative of migration — where taste becomes testimony, and the kitchen becomes a site of cultural continuity.

References :

1. Appadurai, A. (1988). *How to Make a National Cuisine: Cookbooks in Contemporary India.* Comparative Studies in Society and History, 30(1), 3–24.
2. Bourdieu, P. (1984). *Distinction: A Social Critique of the Judgment of Taste.* Harvard University Press.
3. Blumer, H. (1969). *Symbolic Interactionism: Perspective and Method.* University of California Press.
4. Connerton, P. (1989). *How Societies Remember.* Cambridge University Press.
5. Dilly Devi. (1986). *Food System and Socio-Cultural Nexus.* New Delhi: Concept.
6. Durkheim, E. (1912). *The Elementary Forms of Religious Life.* Allen & Unwin.
7. Naidu, S. (2014). *Food and Social Networks among Nigerian Migrants.* African Studies Review, 57(3), 81–98.
8. Portes, A. (1999). Immigration theory for a new century. *International Migration Review*, 31(4), 799–825.
9. Rao, V. (1997). *Ritual, Hierarchy, and the Social Meaning of Food.* Sociological Bulletin, 46(2), 119–133.
10. Redfield, R., Linton, R., & Herskovits, M. (1936). *Memorandum on the Study of Acculturation.* American Anthropologist, 38(1), 149–152.
11. Vertovec, S. (2009). *Transnationalism.* Routledge.
12. Wilson, R. (2013). *Gastrodiplomacy and the Soft Power of Food.* The Hague Journal of Diplomacy, 8(2), 161–183.

Email : arvindgupt1202@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 135-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल के उपन्यासों में चित्रित नारी विमर्श

परमजीत सिंह, शोधार्थी
डॉ. अजयपाल सिंह, निर्देशक एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय, मंडी गोबिंदगढ़ पंजाब।

डॉ. फुल्ल की रचनाओं में नारी का बेहतरीन चित्रण किया गया है। उनकी कुछ कहानियों में भी नारी पर विचार रखे गए हैं। कहीं ईमानदारी की प्रतिमा, कहीं देशभक्ति में सराबोर, कहीं–कहीं प्रेम में सिमटी, कहीं पतिव्रता धर्म का पालन करती और कहीं कामुकता में लिप्त दिखाया गया है। डॉ. फुल्ल ने नारी जीवन के किसी भी पहलू को अनछुआ नहीं रखा है। नारी जीवन का आधार है। नारी के बिना संसार का अस्तित्व नहीं स्वीकारा जा सकता। जिस प्रकार जीवन के लिए आदमी आवश्यक है, उसी प्रकार नारी की महता को भी नकारा नहीं जा सकता। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं या ऐसा कहें कि दरवाजे के दो पाट जिनके एक दूसरे के साथ जुड़ने से ही घर में उनके महत्व का पता चलता है, वैसे ही स्त्री और पुरुष हैं। चाहे औरत का कार्य मात्र खाना पकाना या बच्चों को पालना नहीं है, फिर भी जन्म देने और महत्व का गुण नारी को श्रेष्ठ तथा विशेष बनाता है। पिता का कार्य भी महत्वपूर्ण है लेकिन आगंतुक है। उसका कार्य सहयोग का है। मनुष्य न तो प्राकृतिक रूप से बच्चों को जन्म देता है और न ही अपने स्तनों से दूध पिला सकता है। भगवान ने यह गुण ममतामयी नारी को ही सौंपा है। मेरे विचार से एक दूरदर्शी सोच ही नारी के बारे में विस्तार पूर्वक लिखने की हिम्मत कर सकती है। डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने जहां नारी के ममतामयी, निश्चल, पतिव्रता, चरित्र का चित्रण किया, वहीं बड़ी सहजता से वर्तमान समय में फैलती कामुकता को सांकेतिक मुद्रा में भी स्पष्ट किया और कहीं आस्था कहीं प्रत्यक्ष कहीं अप्रत्यक्ष दृश्य में दिखाकर अपनी विवेकशीलता का परिचय दिया है। अपने उपन्यासों में डॉक्टर फुल्ल ने कामुकता का वर्णन ही नहीं किया, बल्कि उसके पीछे के कर्म को भी बड़ी संजीदगी से लिखा है।

नारी यदि कहीं–कहीं अपने पथ से भ्रष्ट होती दिखाई गई है तो उसके पीछे क्या कारण और परिस्थितियां रही, उन्होंने समझाने का प्रयास भी किया, जो कहीं न कहीं नारी को गलत या कलंकित करने वाली दृष्टि का बचाव करते हुए दिखाई देते हैं। पुराने प्रेम में फंसकर जहां औरत गलत कदम उठाने के लिए तैयार है, वहीं पुरुष भी इसके लिए बराबर का हकदार है। नारी मां के रूप में देवी है और उसे भगवान के तुल्य स्वीकारा गया है। मां के बारे में दुर्मिल सवैया में लिखी मेरी पुस्तक छंद गंगा की पंक्तियां निम्नलिखित हैं :–

जब माँ रहती दुख क्रंदन में, सहती कहती कुछ राज नहीं।
वह गीत सुहागन से महके, इन सा मनभावन साज नहीं।

वह तो रहती दुख ही सहती, उसका खुश जीवन आज नहीं।
कुछ सोच विचार नहीं करते, इस मां गुरू का सरताज नहीं।।

डॉक्टर फुल्ल के उपन्यास हारे हुए लोग में नारी शक्ति पुरुष कर्मचारियों के हमेशा ही निशाने पर रही है। वे हमेशा कमरा नंबर 16 में बैठकर महिला कर्मचारियों को एक दूसरे के साथ जोड़कर ठहाके लगाते हैं। उनके लिए नारी केवल मनोरंजन का साधन मात्र है। ठीक उसी प्रकार जैसे द्रोपदी का उपवास महाभारत में कौरवों द्वारा हुआ। द्रौपदी की मनोदशा को प्रकट करती मेरी पुस्तक 'छंद गंगा' में वर्णित निम्नलिखित पंक्तियां इस प्रकार से हैं, जो इस बात को सार्थक करती हैं :– **अरसात सवैया**

भीतर बाहर द्वंद छिड़ा मन, देख रही अबला हिय से जली।
कौरव फूंक रहे यह अंतस, कुंठित होकर मूर्छित हो कली।
हाथ लगाकर खींच रहा नर, केश खुले रूलती चलती भली।
टूट रही हर आस कलेवर, ठेठ रही विपदा उर में ढली।।

बेटी के रूप में नारी की महिमा अपार है जिस घर में बेटी हो, वह घर आंगन महक उठता है। बेटी की किलकारियों से चारों तरफ का माहौल गुंजित हो उठता है। यह भाव मेरी पुस्तक 'अनसुनी कुछ गीतिकाएं' में गीतिका 'बिटिया हँसाएगी' से स्पष्ट होता है, जिसमें मैंने अपने भावों को बेटी के प्रति समर्पित करते हुए लिखा है :–

हुई बिटिया सभी को वो हँसाएगी,
नयन भर स्वप्न सबको ही दिखाएगी।
करेगी प्रेम सबसे ही यहां रहकर,
धरा पर नेह की गंगा बहाएगी।
मिलेगी जब कभी कुछ भी खुशी उसको,
महकते पुष्प सी वो खिलखिलाएगी।
चमकती फूल सी वह पंख फैलाए,
पिता के सूखते आंगन सुहाएगी।
स्वयं के कष्ट सारे ही छुपा करके,
गले माता-पिता को वह लगाएगी।
कभी जो मायके से आ रहा भाई,
उसी की राह में पलकें बिछाएगी।
कर कोविद सदा ही नेह बिटिया से,
चमक कर इस धरा पर जगमगाएगी।।

बेटी के रूप में नारी लहलहाती खेती की तरह होती है, जिसके पकने का इंतजार हर कोई करता है। हमारे समाज में कुछ दरिंदे तो इसे छोटी उम्र में भी नोचने से गुरेज नहीं करते और फिर वह मजबूर हो जाती है, उम्र भर जलालत की जिंदगी जीने को और कुछ तो यह सदमा सह नहीं पाती और अपने आपको काल का ग्रास बना लेती हैं।

इतना ही नहीं नारी मायके और ससुराल दोनों घरों को संभालने का मादा भी रखती है। लोग तो ऐसा मानते हैं कि मायके का घर उसका नहीं होता और ससुराल का भी नहीं, जबकि मेरे विचार से उसके दो घर होते हैं, एक वह जहां उसने अपना बचपन हँसी खुशी से बिताया होता है और दूसरा जहां वह अपनी जिम्मेदारियां निभाने के लिए जाती है। मेरी पुस्तक 'छंद गंगा' में उलाला चंद्रमणि छंद में लिखा यह पद इस बात को स्पष्ट करता है :–

डोली में सज कर चली, बेटी दूजे द्वार पर।
दोनों घर संभालती, गर्वित ऐसी नार पर।।

हमें नारी पर गर्व होना चाहिए निम्न पंक्तियों को भी देखिए छंद गंगा में उलाला छंद में लिखी गई है :–

आंचल भरकर दूध से, सब रस देती लाल को।
लोरी गाती माँ बाबरी, चूमे नित उस भाल को।।

उपरोक्त पद में नारी के ममत्व को दर्शाया गया है। मैंने पहले भी इस बात का वर्णन किया है, ममत्व एक विशेष गुण है, जो केवल नारी को ही प्राप्त है। इस गुण ने ही नारी को विशेष बनाया है। सब्र करने वाली और सहनशील बनाया है। मेरा अनुभव है कुछ दिनों के लिए मेरी ड्यूटी सी.आर.सी सुंदरनगर में लगी जहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (CWSN) को लेकर उनकी माताएं प्रतिदिन आती थीं। अपने बच्चों के लिए थेरेपी सीखती थीं। ऐसे विशेष बच्चों के साथ रहना, उनके हर दुख को संजीदगी से अपनाना। एक नारी के सहनशील होने का परिचय देता है। शायद हम ऐसे पर्यावरण में कुछ घंटे भी न बिता सकें, जहां वे अपने बच्चों के लिए अपनी ममता बरसा रही हैं और उनके स्वस्थ होने की आस कभी नहीं छोड़ती। उनको हर समय किसी न किसी करिश्मे का इंतजार रहता है।

औरत के भिन्न–भिन्न रूप, उसकी जिम्मेदारियां, चाहे पुरुष से छोटी दिखाई पड़ती हैं, परंतु यह भी सत्य है कि यदि पुरुष को यही जिम्मेदारियां दो दिन के लिए निभानी पड़ जाएं तो उसके पसीने निकल जाएं। आज की नारी सजग है, अपने अधिकारों के लिए और समाज में फैली कुरीतियों को उखाड़ फेंकने के लिए भी तैयार है। आज की नारी पुरातन रूढ़ियों की जंजीरों से जकड़ कर नहीं रहना चाहती। प्राचीन काल से सती प्रथा, बाल विवाह, जैसी कुरीतियाँ विद्यमान थी। जो की मात्र कोरी ढकोंसलेबाजी थी। आज की पत्नी को पतिव्रता होने के लेक्चर दिए जाते हैं। औरत को कथाओं में पति को भगवान मानने के प्रवचन दिए जाते हैं। उसका पति चाहे अपने कर्मों से भगवान कहलाने लायक है या नहीं। अपितु नारी को यह बातें जोर–शोर से ठोक ठोक कर कहीं जाती हैं। पति चाहे पूरा दिन बाहर की औरतों पर मुँह मारता रहे। उसके लिए कोई उपदेश नहीं है। आज की नारी सजग है, प्रेरणा है, समाज के लिए आईना है। वह पुरुष की भांति रोजगार में हाथ बंटा रही है। मजदूरी में बराबर तसला उठाती है, बेलचा चलाती है, खेत में ट्रैक्टर चलाती है, ट्रांसपोर्ट की बस चलाती है, कंडक्टरी करती है, पुलिस में सेवा दे रही है, डॉक्टर है, नर्स है, शिक्षिका है, और तो और वह सेना में सैनिक के रूप में भी कार्य कर रही है। पुरुष जैसा साहस पालकर पूरी दुनियां के लिए प्रेरणा बन गई है। जिसका जीता जागता उदाहरण आज के परिपेक्ष में एयर फोर्स की कमांडेंट सोफिया कुरैशी और व्योमिका सिंह ने दिया है। दोनों महिला सैनिकों ने भारतीय शौर्य के पराक्रम को दिखाते हुए ऑपरेशन सिंदूर को सफल बनाने का भरसक पर्यत्न किया। पाकिस्तान के 24 ठिकानों पर मिसाइलें दाग कर, उसका सीना छलनी किया। ऐसी महान नारियों पर पूरे भारत

ने गर्व किया। भारतीय नारी को कमजोर और कम आंकने वाले घटिया सोच के मालिकों के मुँह पर यह एक बहुत बड़ा तमाचा है। भारतीय नारी द्वारा देश के लिए लड़ना बड़े गौरव की बात है। केवल सोफिया कुरेशी तो सैन्य अभ्यास के लिए पूरे विश्व की सेना अभ्यास टीम का नेतृत्व कर चुकी है।

यह तो एक नारी के पराक्रम का नवीनतम उदाहरण था, जबकि नारी तो पुराने समय से ही बहुत बहादुरी की मिसाल रही है। रानी झांसी, सरोजिनी नायडू, मीराबाई, सावित्रीबाई फूले, बीबी फातिमा, कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, मीरा सेठ, प्रतिभा पाटिल, द्रौपदी मुर्मू जैसे कुछ बड़े नाम इसमें शामिल किए जा सकते हैं। ऐसे ही सैकड़ो और भी उदाहरण हैं, जो अदृश्य हैं। जिनका जिक्र करना संभव नहीं है। सुनीता विलियम्स भी भारतीय मूल की अंतरिक्ष यात्री हैं, जिन्होंने 286 दिन तक अंतरिक्ष में रहकर एक नया कीर्तिमान बना दिया है। आज की उन लड़कियों को ऐसी महान विभूतियों से प्रेरणा लेनी चाहिए। आज की लड़कियां चकाचौंध में अपना जीवन गवाने में मस्त हैं। कुछ नशे में चूर होकर अपने माता–पिता के रुतबे को चूर–चूर करने में तत्पर हैं और कुछ अय्याशी में बहककर अपना बेड़ा गर्क कर रही हैं। आज की नारी एक खुंटे से बंधकर नहीं रहना चाहती। उसे भी स्वतंत्रता चाहिए। वह अपना जीवन खुशी और आनंद से बिताना चाहती है। वह अपने सपनों को पूरा करने के लिए अमीर बनने के लिए जिस्म की नीलामी से भी गुरेज नहीं करती। आज की युवा नारी लौंग इलायची मुँह में डालकर कॉफी का आनंद लेना चाहती है। जहां नारी का रूप पूजनीय है, उसे बरकरार रखना भी आज की पीढ़ी का दायित्व है। ऊंचाइयों की चाहत करना गलत नहीं है, परंतु उसे पाने के लिए मेहनत का सहारा लेना ही उचित मार्ग है। अनुचित कार्य से पाई गई सफलता ज्यादा दिनों तक नहीं टिकती। नारी अपनी क्षमताओं के अनुसार आज भी कार्य करे तो वह किसी भी परिचय की मोहताज नहीं है।

'गंगा गए तो गंगा दास, जमुना गए तो जमनादास'

जैसे लोग समाज के लिए खतरा हैं। ऐसे लोग जय जयकार से प्रसिद्धि तो पा लेते हैं, लेकिन समाज के सही पथ प्रदर्शक नहीं बन सकते। भारतीय फिल्म इंडस्ट्री में ऐसे सैकड़ों उदाहरण है जहां औरतों ने कामयाबी पाने के लिए जिस्म की नीलामी लगाई है। ऐसा कुछ औरतें तो स्वीकार भी करती हैं। बहरहाल मेरा मकसद नारी विभिन्न नारी के विभिन्न रूपों का परिचय करवाना है।

त्याग और तपस्या की मूरत नारी :– डॉ. सुशील कुमार फुल्ल के साहित्य में वर्णित नारी को कई रूपों में विवेचित किया गया है। यह डॉक्टर फुल्ल की समृद्ध सोच का फल है कि उन्होंने नारी को किसी एक चरित्र में नहीं बांधा, बल्कि समाज में विद्यमान उनके हर स्वभाव, हर व्यवहार, व हर पहलू को दिखाया है। उपन्यास मिट्टी की गंध में मनोज और शालिनी दोनों आदर्शवादी सोच के स्वामी हैं। शालिनी के रूप में नारी को त्याग और तपस्या की मूरत बताया गया है। उपन्यास में ही –

नारी के सम्मान में सन 1975 अंतर्राष्ट्रीय नारी वर्ष आते ही पोस्ट पर किसी नारी को ही लिया जाना चाहिए। सुंदर सिंह की धर्मपत्नी से बढ़कर उपयुक्त उम्मीदवार और कौन हो सकती है?

इन पंक्तियों के डॉक्टर फुल्ल के मन में नारी के प्रति सम्मान और अंदर की भावना झलकती है। नारी समर्पण और त्याग का प्रतीक मानी जाती है। नारी के समाज के लिए अद्वितीय योगदान को कभी भी बुलाया नहीं जा सकता। नारी गरीबी के दौर में भी अपने परिवार, अपने पति का साथ नहीं छोड़ती। ऐसी पतिव्रता का सम्मान होना ही चाहिए। एक पतिव्रता नारी अपने पति के सुख के लिए अपनी इच्छाओं का त्याग करने से

हिचकिचाती नहीं है। अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को दांव पर लगाकर वह परिवार के लिए समर्पित होकर कार्य करती है। ऐसी औरतों की प्रतिबद्धता आज के युग में कम ही देखने को मिलती है। उपन्यास मिट्टी की गंध में वर्णित यह पंक्तियां देखिए :–

'अपने ही घर में, अपने ही देश में, कोई बाहर का आदमी होता है क्या? बेवकूफ... जाहिल कहीं के....।
उसे यूं बोलते सुनकर उसकी पत्नी रूक जाती है,
कभी सिर में मालिश कर,
कभी उसे नींद की गोली देकर सुलाने की कोशिश करती है।
वह भुत बन बैठा है।
उसकी पत्नी शालिनी भी घबराई हुई लगती थी।
मित्र भी अभी तक चुप ही बैठे थे।
कहीं कोई गड़बड़ हो गई थी।
भाभी जी आप इन्हें समझा क्यों नहीं देती?
महाजन ने मौन भंग करते हुए शालिनी से कहा।'

उपरोक्त पंक्तियां एक आदर्शवादी सोच से भरी हुई नई की वेदना और स्वभाव बलिदान को दर्शाती हैं वरना आजकल स्त्री के पास एक दूसरे के लिए समय ही कहां है फिर भी यदि इस स्वार्थी युग में नारी पति का साथ दे रही है तो हमें समझ जाना चाहिए कि वह कितनी उच्च कोटि की सोच वाली है।

चिंता का स्वर :–

कई बार नारी गृहस्थ के जाल में चिंतायुक्त दिखाई देती है। यह जीवन है इसमें हजारों विकृतियां हैं। एक समस्या खत्म नहीं होती उतनी देर में दूसरी आन पड़ती है। बस इसी दौर में नारी कई बार पसोपेश में परेशान व चिंतित भी दिखाई देती है। यह मिट्टी की गंध उपन्यास में लिखित निम्न पंक्तियों से पता चलता है :–

'हां मनोज तुम्हें कोई भी बात सोच समझकर करनी चाहिए! साहनी ने भी अपना मत व्यक्त किया। क्यों आज ऐसा क्या हो गया आप सीधी बात क्यों नहीं बताते? शालिनी ने चिंतातुर स्वर में पूछा।'

शालिनी की व्याकुलता और चिंता समाज में जीवित हर उस नारी की चिंता है जो अपने परिवार को अपने जीवन से अधिक महत्व देती है। जिसका जीवन उसे अपने परिवार के बिना संभव प्रतीत नहीं होता है।

सलाहकार के रूप में सहगामिनी :–

परिवार के मुखिया के रूप में कई बार पुरुष महत्वपूर्ण फैसले लेने में द्वंद्व की स्थिति में होता है। ऐसे में एक आदर्श सहगामिनी ही होती है जो उसका सहयोग करती है। उसे उचित सलाह देती है। उसकी सलाह अपनत्व का प्रतीक होती है। उपन्यास 'मिट्टी की गंध' की शालिनी और मनोज का रिश्ता कुछ ऐसा ही है। निम्न पंक्तियां देखिए :–

'यह भी हर बात में टांग अड़ाते हैं। सौ बार कहा है कि अपने काम से काम रखो।' शालिनी ने अभी मत व्यक्त किया।

उपरोक्त पंक्तियां गुस्से में अधिकार स्वरूप कही गई हैं। ऐसे त्याग य आदर्शवादी सोच की महिला परिवार

में किसी भी सदस्य को पथभ्रष्ट नहीं होने देती। उसका प्रयास हमेशा ही परिवार को एकजुट रखने और प्रगति पथ पर अग्रसर रखता है। ऐसी नारी का अनुभव हमेशा ही समाज के लिए हितकारी होता है।

कई बार वह हौसला और ढांढ़स बंधाती है। नेताओं के नारे तो लगते ही रहते हैं। हालांकि वह बाकियों को खुश रखने का प्रयास करते–करते स्वयं उदास हो जाती है। मेरे विचार से औरत वह झूला है, जिसका सहारा लेकर सभी झूलते हैं, अर्थात जीवन का आनंद लेते हैं। जब–जब दिल करता है लोग बैठ जाते हैं, गोदी में मीठी नींद का मजा, मीठे स्वप्न, कामयाबी की सीढ़ियाँ, सब कुछ आनंदमयी रहता है, परंतु वह स्वयं इसी बात से आनंदित होकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर जाती है। वह अपनी उदासी को कभी दर्शाती नहीं है। चाय–पान के बाद मित्र तो चले गए, पर शालिनी उदास थी। शालिनी मनोज को अपने प्रदेश में नौकरी करने की कई बार सलाह दे चुकी थी। मनोज ही एक ऐसा आदर्शवादी व्यक्ति दिखाया गया है, जो प्रदेश से ऊपर उठकर देश के लिए कुछ करना चाहता था। जब भी उसने कहीं किसी और प्रदेश में नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया, तब उसका सिलेक्शन मात्र यह कह कर टाल दिया गया, कि तुम किसी अन्य प्रदेश से हो। इसीलिए शालिनी हमेशा मनोज को अपने प्रदेश में नौकरी की सलाह देती है। निम्न पंक्तियां इस बात का परिचय देती हैं :–

'मनोज ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। शालिनी ठीक ही तो कहती थी जब उसे अपने प्रदेश में नौकरी मिल रही थी, तो वह नहीं गया था। उसका विचार था, प्रदेश से ऊपर उठकर देश के किसी भी कोने में नौकरी करना, अधिक वांशनीय है। इससे विषमता आती है।'

यहां शालिनी कहीं न कहीं देश के भ्रष्ट तंत्र को समझ चुकी है। और इसीलिए वह अपने ही प्रदेश में नौकरी की सलाह देती है, क्योंकि बाहरी राज्यों में नौकरी के लिए बड़ी सिफारिश चाहिए और बाहरी राज्यों के व्यक्ति के लिए कोई सिफारिश करे भी क्यों?

समाज की नाकारात्मक सोच का शिकार नारी :–

नारी चाहे जितनी भी पवित्र हो, वह किसी भी लड़के के साथ यदि बात तक कर ले, तो इस समाज की नकारात्मक सोच उसे चरित्रहीन साबित करने में लग जाती है। सच तो यह है कि आजादी के इतने वर्ष बाद भी उसे आजादी नहीं है। उसे परिवार के बड़े बुजुर्गों द्वारा किसी गलत रास्ते पर चलने से रोका जाना सही है। परंतु समाज का ऐरा गैरा, नत्थू खैरा जब उसके चरित्र का निर्धारण करता है, तो नारी अपने विवेक और समझदारी से विरोध करती हुई भी नजर आती है। डॉक्टर फुल्ल के उपन्यास 'नागफाँस' में वर्णित पंक्तियां इस बात को स्पष्ट करती हैं :–

'वह कुछ कह कर नहीं गई?
उसने फिर पूछा!
नहीं !
क्यों ?
उसकी मर्जी।
क्या वह पहले भी ऐसे ही जाती थी?
मुझे नहीं मालूम!
तुम हमेशा उसकी बातों पर पर्दा डालती हो!

तो और क्या मैं उसकी बातों को उछालती फिरू?
है तो वह...
क्या ?
वह सचमुच ऐसी ही है।
कैसी ?
जैसी तुमने अभी कहा।
मैंने तो कुछ नहीं कहा।
हूं तो वैसी ही जैसी लोग कहते हैं।
लोग तो किसी को खुश नहीं देखना चाहते।'

मेरा मानना है कि समाज के दो बराबर महत्व वाले प्राणियों के लिए सामाजिक मान्यताएं और मापदंड अलग–अलग नहीं होने चाहिए। चाहे आदमी हो या औरत दोनों के बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। फिर दोनों के लिए मापदंड अलग क्यों? अपनी चाहे जहां मर्जी मुंह मारे, घूमे फिरे, कोई कुछ नहीं कहता और यदि नारी ऐसा करे तो चरित्रहीन कहलाती है। यह मानसिक भेदभाव गलत है।

संकीर्ण मनोवृत्ति का प्रहार :–

डॉक्टर फुल्ल ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज को आईना दिखाने का प्रयास किया है। जहां कहीं भी उन्हें समाज में विकृति या गंदी सोच या फिर गलत धारणाएं दिखाई दी हैं, उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए उन्हें लिखकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह लेखक की पीड़ा है जो कागजों पर आकर टिकी और जन जागरण का कार्य किया। इस घटिया और विघटनकारी सोच ने समाज के भोले–भाले तबके को चूसने का प्रयास किया है। इसी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में गरीब और ज्यादा गरीब तथा अमीर और ज्यादा अमीर होता गया। लालची राजनीतिज्ञों ने कुर्सी के लिए झूठ सच बोलकर वोट बटोरने का कार्य किया और जीत जाने के बाद साधारण जनता को लूटने में कोई भी कोर कसर नहीं छोड़ी। निम्न पंक्तियां उपन्यास 'मिट्टी की गंध' में लिखी गई हैं, परंतु संपूर्ण भारतवर्ष की राजनीति पर व्यंग्य करती प्रतीत होती हैं :–

'मेरे नव उद्घाटित प्रदेश के भाइयो मैं तुम सबको बधाई किन शब्दों में दूं, मैं तो मात्र इतना ही कहना चाहता हूं, कि मैंने आपकी सेवा का प्रण लिया है। आप शायद कहेंगे कि मैं तो यहां का रहने वाला नहीं, लेकिन नहीं आप मेरी कुल परंपरा को नहीं जानते! मेरे शरीर की संरचना में इसी प्रदेश की मिट्टी की महक है। मेरे दादा के परदादा सन 1801 ईस्वी में इसीक्षप्रदेश में ही जन्मे थे। आप चाहें तो उस समय के किसी पंडित की पुरानी लाइब्रेरी की छानबीन करवा सकते हैं। इन पंक्तियों में दिखाया गया है कि लोग चुनाव जीतने के लिए कितने घिनौने पन पर उतर आते हैं।'

मैं तो यह कहना चाहता हूं कि, यह व्यंग्य वर्तमान की राजनीति पर तो बिल्कुल ही सही बैठता है। जहां देश का शीर्ष नेतृत्व, मैं नाम लेकर संबोधित नहीं करना चाहता, जिसे भी प्रदेश के चुनाव में रैली को संबोधित करना है, वही बोल देता है भाइयों बहनों मेरा तो इस प्रदेश से बहुत पुराना नाता है। मैंने यहां कई दिन गुजारे हैं। फिर किन हालातों में दिन गुजारे हैं, उसका जिक्र और लोगों की भावना के साथ खेलने का कार्य बड़े ही जोर–शोर से किया जाता है।

चुनाव के समय तो नेता पागल हो जाते हैं और अपनी घटिया सोच से जितना झूठ बोलने की क्षमता रखते हैं उतना बोलते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि लोग इनके झूठ के झांसे में आ भी जाते हैं। भारतीय राजनीति का यह दुर्भाग्य रहा है कि नेता चाहे जो भी वादा या भाषण में मंचों से पढ़े, चुनाव जीतने के बाद वादे पूरे हों या नहीं उस पर किसी का कोई अंकुश नहीं और न ही वादे पूरे होने के लिए उन्हें कोई वाद्य कर सकता है। एक बार मनोज अपने गांव गया हुआ था उसका गांव इन्हीं नेता के चुनाव क्षेत्र में पड़ता था।

चुनाव नजदीक आ रहा था। नेता लोग लगभग उसी प्रकार अपना शिकार ढूंढ रहे थे जिस प्रकार सूअर मैल के ढेरों में खाद्य पदार्थ ढूंढने में तल्लीन होते हैं। उनकी गिद्ध दृष्टि से वह भी नहीं बच पाया था। यहां मैं लेखक से बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ क्योंकि यहां देश के नेताओं की तुलना लेखक ने सूअरों से कर डाली है और यह यथार्थ भी दिखाई पड़ता है। यह दौड़ मात्र कुर्सी की है और कुर्सी मिलते ही (तू कौन और मैं कौन) जब तक चुनाव चलता है, वह घर–घर घूम घूम कर, हाथ जोड़–जोड़ कर गिरगिट की तरह रंग बदलते रहेंगे। परंतु यह महज चुनाव तक की ही प्रक्रिया होती है, उसके बाद यदि आम जनता कोई कार्य करवाना चाहे तो फिर रहो उनके ऑफिस के चक्कर लगाते।

'वह अपने स्टडी रूम में बैठा सोच रहा था, राजनीति के बदलते दांव पेंच, गिरगिट के से रंग, प्रदेश में अनेक नेता एकाएक कैसे उग आए। मानों रात्रि में अचानक अनेक छत्रक उग आए हों। यहां कुछ लोग उन्हें आगे पीछे नारे लगाने वाले भी रखने पड़ते हैं, ताकि लोगों को भ्रमित किया जा सके। लोग समझें कि यह नेता कोई छोटा–मोटा नहीं बल्कि यह बड़ी हस्ती है। लोग सम्मोहित हों, उनका दिमाग वाश किया जा सके। ये सारा बना बनाया और सोची समझी चाल के माध्यम से किया गया ड्रामा होता है। बस ऐसे ही चलती है यह घिसी पिटी राजनीति।

चुलबुली नारियों की यौनेच्छा में पनपती विघटनकारी सोच :–

यह दृष्टता भी ओछी मानसिकता और नारी की संकीर्ण मनोवृत्ति को जन्म देती है जब वह किसी पराए मर्द के साथ अपने अंग प्रत्यंग स्पर्श करके बेशर्मों की तरह आनंद की अनुभूति लेती है। उपन्यास 'कहीं कुछ और' में भावना तथा अजीत अंदर चले गए थे। ड्योढ़ी में चलते–चलते भावना ने अपना वक्ष जान बूझकर उसकी पीठ से लगा दिया था। अजीत लड़खड़ाता–लड़खड़ाता बचा था। वह लड़खड़ाता हुआ बोल क्षमा करना भावना मैं जान बूझकर नहीं अड़ा था। वह ठहाका लगाते हुए बोली मुझे तो बड़ा आनंद आया। क्या तुम्हें चोट लगी? यहां नारी का खुलापन बेशर्मी की हदें पार करने को आतुर है। अजीत के अंगों के स्पर्श के लिए उसकी जीभ लालायित दिखाई पड़ती है। पुराने जमाने की नारी की भांति उसमें जरा भी कंट्रोल नहीं है। वह अपना आपा खोने के लिए भी तैयार है। यह एक भटकाव की स्थिति है, जहां वह बिना लाज शर्म के खुलेआम हो चली है। वह सारी जंजीरों को तोड़कर आनंद के लिए उतारू है। मैं समझता हूं कि पुरुष स्त्री के शरीर की संरचना भगवान ने एक दूसरे के लिए ही बनाई है। चाहे वक्ष हैं, चाहे गुप्तांग हैं, सभी चीजें सामान्य नहीं हैं। कुदरत ने एक बड़ी सोच के साथ इन चीजों की उत्पत्ति की है और एक दूसरे के लिए ही बनाई हैं। लेकिन प्राकृतिक मर्यादाएं, मानवीय नियम, तोड़कर बेशर्मों की भांति यदि खुलेआम सेक्स की धज्जियां उड़ाने के बारे में नारी उतारू है, तो समाज का पतन निश्चित है। डॉक्टर फुल्ल ने जो भी इस समाज में घटित होते देखा उसे कमसिन भावों से ऊपर उठकर प्रकट करने की कोशिश की है। स्त्री के वक्ष जहां ममत्व के लिए आवश्यक अंग हैं व प्रकृति

द्वारा प्रतिपादित हैं, वहीं यौनेच्छा की पूर्ति के लिए भी एक आवश्यक अंग हैं। वैसे ही नारी की योनि प्रस्व के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है, वैसे ही शारीरिक यौनेच्छा आनंद के लिए भी प्रकृति का एक अनमोल उपहार है। एक मर्यादित पुरुष कभी भी पराई स्त्री की ओर आंख उठाकर नहीं देखता। जितने भी विकृत किस्से सुने जाते हैं वे सब मनचलों के द्वारा ही संचालित होते हैं। ऐसा ही नारी के लिए भी कहा जा सकता है एक मर्यादित और आदर्शवादी सोच की नारी कभी भी खुलेआम यौनेच्छा का इजहार नहीं करती। लज्जा और शर्म औरत के गहने हैं। वह शर्माकर, लज्जाकर या सांकेतिक भाषा में ही किसी के वश में जाने की हामी भरती है। यह नारी की संकीर्ण सोच का ही उदाहरण है जहां भावना ठहाके लगाकर कहती है, मुझे तो बहुत आनंद आया। क्या तुम्हें चोट लगी? यह भारतीय नारी की पहचान नहीं है। यह तो पाश्चात्य नारी का ही रूप हो सकता है।

संदर्भ :– [5]

1. छंद गंगा कविता संग्रह, लेखक परमजीत सिंह 'कोविद', 'कहलूरी' प्रकाशक विज्ञात प्रकाशन, हरियाणा, वर्ष 2022
2. अनसुनी कुछ गीतिकाएं लेखक परमजीत सिंह 'कोविद' 'कहलूरी' प्रकाशक विज्ञात प्रकाशन, हरियाणा, वर्ष 2023
3. कहीं कुछ और (1978), गोयल बुक डिपो, पालमपुर।
4. मिट्टी की गंध (1982), भावना प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली–91
5. नागफांस (1984), प्रवीन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली–30
6. फूलों की छाया (1982), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
7. हारे हुए लोग (1990), किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दिल्ली–6
8. खुलती हुई पाँख (1992), भावना प्रकाशन, दिल्ली–91
9. बंटवारा (2012), जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली–32
10. उड़ान (2014) इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली–51
11. खिसकती हुई जमीन (2022), इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर दिल्ली–51
12. हिमाचल के हिंदी उपन्यासों में नई परिवेश का विकास, निर्मल प्रकाशन दिल्ली–32, 2008

dr.ajaypal@deshbhagatuniversity.in

CONTACT : 9799188117

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 144-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों पर उसका प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

Dr. Mahesh Chand Gurjar
Education Department, Assistant Professor
Smt. ANAR DEVI TEACHER'S TRAINING COLLEGE BAKHARANA
(KOTPUTLI-BEHROR) 303105

सारांश :

जलवायु परिवर्तन आज की वैश्विक चुनौतियों में सबसे गंभीर समस्या के रूप में उभर रहा है। इसके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव न केवल पर्यावरण, कृषि और स्वास्थ्य पर देखे जा रहे हैं, बल्कि जल संसाधनों पर भी गहराई से पड़ रहे हैं। जल संसाधन किसी भी राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक संरचना की रीढ़ होते हैं। भारत जैसे देश, जहाँ कृषि मुख्यतः मानसूनी वर्षा और नदियों पर निर्भर करती है, वहाँ जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के पैटर्न में असामान्यता, बाढ़ और सूखे की बढ़ती घटनाएँ, तथा भूजल स्तर में गिरावट गंभीर चिंता का विषय बन गए हैं। इस शोध–पत्र में जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों के बीच पारस्परिक संबंधों का भौगोलिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि बदलती जलवायु कैसे नदियों के प्रवाह, हिमनदों के पिघलने, भूजल संसाधनों और मानसूनी वर्षा को प्रभावित कर रही है। साथ ही, जल संकट के समाधान हेतु जल प्रबंधन, संरक्षण नीतियों और सतत विकास की दिशा में संभावनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

कुंजी शब्द :- जलवायु परिवर्तन, जल संसाधन, भूगोल, मानसून, सतत विकास, जल प्रबंधन।

प्रस्तावना :-

जल पृथ्वी पर जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। मानव सभ्यता का विकास नदियों और जल स्रोतों के आसपास हुआ है। आज जलवायु परिवर्तन की तेजी से जल संसाधनों की उपलब्धता और स्वरूप प्रभावित हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन का अर्थ है – वायुमंडलीय तापमान, वर्षा, पवन प्रणाली और मौसमी चक्र में दीर्घकालिक बदलाव। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है। भारत में कृषि लगभग 60 प्रतिशत मानसूनी वर्षा पर निर्भर है, इसलिए वर्षा चक्र की अनियमितता जल संकट और खाद्य सुरक्षा पर असर डालती है।

भूगोलिक दृष्टि से यह समझना आवश्यक है कि बदलती जलवायु जल संसाधनों के वितरण और उपयोग

को कैसे प्रभावित कर रही है। यह अध्ययन केवल पर्यावरणीय चिंता नहीं, बल्कि सतत विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध–पत्र का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों के बीच संबंध को स्पष्ट करना है। विशेष रूप से यह अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों पर केंद्रित है :

1. जलवायु परिवर्तन की प्रकृति और कारणों को समझना।
2. जलवायु परिवर्तन का जल संसाधनों (नदियों, भूजल, वर्षा, हिमनद) पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. भारत में जलवायु परिवर्तन और जल संकट की भौगोलिक असमानताओं का अध्ययन करना।
4. जल संकट से निपटने के लिए अपनाई जा रही नीतियों और योजनाओं का मूल्यांकन करना।
5. सतत विकास और भविष्य की जल सुरक्षा हेतु संभावित समाधान प्रस्तुत करना।

कार्यप्रणाली :

इस शोध–पत्र में मुख्य रूप से वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति (Descriptive & Analytical Method) का उपयोग किया गया है। अध्ययन को भूगोलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों के बीच पारस्परिक संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है।

इस कार्यप्रणाली के अंतर्गत :

1. **साहित्य समीक्षा :**

- जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों से संबंधित पूर्व प्रकाशित शोध–पत्र, पुस्तकों और रिपोर्टों का अध्ययन किया गया।
- संयुक्त राष्ट्र (UN), विश्व बैंक, IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change), तथा भारत सरकार की जलवायु और जल संसाधन से संबंधित रिपोर्टों का उपयोग किया गया।

2. **भौगोलिक दृष्टिकोण :**

- विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों (हिमालयी क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र, तटीय क्षेत्र, शुष्क क्षेत्र) पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

3. **आँकड़ों का विश्लेषण :**

- वर्षा के आँकड़े, तापमान में वृद्धि, भूजल स्तर की गिरावट और बाढ़–सूखा घटनाओं के आँकड़े का अध्ययन किया गया।

4. **सीमा (Scope of Study) :**

- यह अध्ययन मुख्यतः भारत पर केंद्रित है, किंतु जहाँ आवश्यक है वहाँ वैश्विक दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है।

जलवायु परिवर्तन : परिभाषा और वैश्विक परिप्रेक्ष्य

(क) परिभाषा :

जलवायु परिवर्तन का अर्थ है पृथ्वी की जलवायु प्रणाली में दीर्घकालिक बदलाव, जैसे तापमान, वर्षा, हवाएँ और समुद्री स्तर में परिवर्तन। IPCC के अनुसार, यह मुख्यतः ग्रीनहाउस गैसों की वृद्धि, वनों की कटाई

और औद्योगिक प्रदूषण के कारण हो रहा है।

(ख) वैश्विक परिप्रेक्ष्य :

1. **तापमान वृद्धि :** 20वीं सदी से औसत वैश्विक तापमान लगभग 1.1 C बढ़ा है।
2. **हिमनद पिंघलना :** आर्कटिक और अंटार्कटिका के ग्लेशियर तेजी से पिंघल रहे हैं, जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है।
3. **वर्षा पैटर्न और जल संकट :** बाढ़ और सूखे की घटनाएँ बढ़ रही हैं, जिससे जल की उपलब्धता और कृषि प्रभावित हो रहे हैं।
4. **समुद्री स्तर वृद्धि :** 2100 तक समुद्र का स्तर 1 मीटर तक बढ़ सकता है, जिससे लाखों लोग प्रभावित होंगे।

भारत में जलवायु परिवर्तन और जल संसाधन :

भारत एक विविध भौगोलिक और जलवायु वाले देश के रूप में जाना जाता है। यहाँ नदियों, झीलों, भूजल स्रोतों और मानसूनी वर्षा के माध्यम से जल संसाधन उपलब्ध होते हैं। लेकिन जलवायु परिवर्तन ने इन संसाधनों पर गहरा असर डाला है।

(क) वर्षा और मानसून पर प्रभाव :

- भारत की कृषि लगभग पूरी तरह मानसूनी वर्षा पर निर्भर है।
- पिछले दो दशकों में मानसून के पैटर्न में अनियमितता देखने को मिली है। कभी अत्यधिक वर्षा के कारण बाढ़ आती है, तो कभी सूखे की घटनाएँ बढ़ रही हैं।
- विशेष रूप से राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र जैसे शुष्क क्षेत्र सूखे के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं।

(ख) नदियों और भूजल पर प्रभाव :

- गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र जैसी प्रमुख नदियों का प्रवाह अब अस्थिर हो गया है।
- हिमालयी ग्लेशियर के पिंघलने से शरद ऋतु में नदियों का जल स्तर बढ़ जाता है, जबकि गर्मियों में जलस्तर कम हो जाता है।
- भूजल का स्तर लगातार गिर रहा है, खासकर उत्तर पश्चिम भारत और महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों में।

(ग) क्षेत्रीय असमानताएँ :

- **उत्तर भारत :** हिमनदों के पिघलने और बाढ़ की घटनाओं का खतरा बढ़ा है।
- **दक्षिण भारत :** वर्षा कम और भूजल स्तर घट रहा है।
- **शहरी क्षेत्र :** बढ़ते शहरीकरण से जल की खपत बढ़ी है और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव तेजी से महसूस होते हैं।
- **ग्रामीण क्षेत्र :** सिंचाई और पेयजल की समस्या गंभीर है।

(घ) कृषि और जल संकट :

- अनियमित मानसून और बाढ़–सूखे की घटनाओं के कारण कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- सिंचाई के लिए जल संसाधनों का दोहन बढ़ा, जिससे जल संकट और गंभीर हो गया।

जलवायु परिवर्तन और जल संकट : भूगोलिक विश्लेषण :

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारत में जल संकट कई रूपों में उभर रहा है। भूगोलिक दृष्टिकोण से इसे समझना अत्यंत आवश्यक है।

(क) सूखा :

- शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र जैसे राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक में सूखा की घटनाएँ बढ़ रही हैं।
- वर्षा की अनियमितता, बढ़ता तापमान और भूजल दोहन सूखे को और गंभीर बना रहे हैं।
- सूखा न केवल कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है, बल्कि पेयजल और ऊर्जा संकट को भी बढ़ाता है।

(ख) बाढ़ :

- नदियों का असामान्य प्रवाह और अत्यधिक वर्षा से उत्तर भारत और उत्तर–पूर्वी राज्यों में बाढ़ की घटनाएँ आम हैं।
- हिमालयी ग्लेशियर के पिघलने से नदी घाटियों में जलस्तर अचानक बढ़ जाता है, जिससे जनजीवन और कृषि पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

(ग) हिमनदों का पिंघलना और ग्लेशियल रिस्क :

- हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियर तेजी से पिंघल रहे हैं।
- इससे न केवल नदियों का प्रवाह अस्थिर हुआ है, बल्कि ग्लेशियल झीलों में बाढ़ का खतरा भी बढ़ गया है।

(घ) मानसून की अनिश्चितता :

- मानसून का आगमन और अंत दोनों असमय हो रहे हैं।
- यह कृषि, जलाशयों और पेयजल उपलब्धता को प्रभावित करता है।
- भूगोलिक दृष्टि से यह असमानता अलग–अलग क्षेत्रीय जल संकट उत्पन्न करती है।

(ङ) कृषि और सामाजिक प्रभाव :

- जल संकट के कारण फसलों की पैदावार घटती है, सिंचाई पर निर्भरता बढ़ती है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार संकट और खाद्य सुरक्षा की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
- शहरी क्षेत्रों में जल आपूर्ति में कमी और जल स्रोतों का प्रदूषण बढ़ता है।

जल प्रबंधन और संरक्षण : नीतियाँ एवं पहल :

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से उत्पन्न जल संकट से निपटने के लिए भारत में विभिन्न सरकारी और स्थानीय स्तर की नीतियाँ एवं प्रयास किए जा रहे हैं। भूगोलिक दृष्टि से इनके प्रभाव और उपयोगिता का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

(क) सरकारी नीतियाँ :

1. जल जीवन मिशन :

- ग्रामीण और शहरी घरों में स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए।
- जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन और जल वितरण पर जोर।

2. नदियों का जोड़ने की योजना :

- सूखा प्रभावित और जल–समृद्ध क्षेत्रों के बीच पानी का संतुलित वितरण।
- क्षेत्रीय जल असमानताओं को कम करने का प्रयास।

3. राष्ट्रीय जल नीति :

- जल का सतत और न्यायसंगत उपयोग।
- भूजल और सतही जल दोनों के संरक्षण पर ध्यान।

(ख) स्थानीय और सामुदायिक प्रयास :

- गाँवों में बारिश का पानी संचित करना, तालाब और जलाशयों का निर्माण।
- सामुदायिक जल प्रबंधन समितियाँ और जल उपयोग की जागरूकता।
- कृषि में ड्रिप इरिगेशन और कम जल खपत वाली तकनीकों का उपयोग।

(ग) भूगोलिक दृष्टि से समाधान :

- सूखा प्रभावित क्षेत्रों में भूजल स्तर बढ़ाने के लिए भू–जल पुनर्भरण तकनीकें।
- बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में जलाशयों और बाँधों के माध्यम से जल का नियंत्रण।
- तटीय और हिमालयी क्षेत्रों में जलवायु अनुकूल प्रबंधन योजनाएँ।

(घ) नीतियों की चुनौतियाँ :

- कुछ योजनाओं का क्रियान्वयन असमान है।
- शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण जल स्रोतों पर दबाव बढ़ रहा है।
- जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितता के कारण दीर्घकालिक योजना आवश्यक है।

सतत विकास और भविष्य की संभावनाएँ :

जलवायु परिवर्तन और जल संकट से निपटने के लिए सतत विकास की दिशा में कदम उठाना अनिवार्य है। जल संसाधनों का संरक्षण केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी आवश्यक है।

(क) सतत जल प्रबंधन :

- वर्षा जल संचयन और भूजल पुनर्भरण की तकनीकों को अपनाना।
- नदियों, झीलों और तालाबों का संरक्षण और उनके पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा।
- जल का पुनः उपयोग और अपशिष्ट जल का उपचार।

(ख) कृषि और जल संरक्षण :

- कम जल खपत वाली कृषि तकनीकें, जैसे ड्रिप इरिगेशन और सूखा प्रतिरोधी फसलें।
- वर्षा आधारित कृषि और जल–निर्भर क्षेत्रों के लिए अनुकूल खेती।
- कृषि अपशिष्ट और जल स्रोतों का संयोजन कर स्थायी कृषि मॉडल तैयार करना।

(ग) नीति और सामुदायिक भागीदारी :

- स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- जल उपयोग और संरक्षण पर शिक्षा और जागरूकता।

- सरकारी नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए निगरानी और मूल्यांकन।

(घ) भविष्य की संभावनाएँ :

- तकनीकी नवाचार जैसे सेंसर आधारित जल प्रबंधन, डिजिटल मॉनिटरिंग और स्मार्ट वाटर सिस्टम।
- जलवायु परिवर्तन के अनुकूल भौगोलिक योजना और क्षेत्रीय मॉडल।
- सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के अनुसार जल सुरक्षा सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष :

इस शोध–पत्र से स्पष्ट होता है कि जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों का सम्बन्ध जटिल है। वर्षा पैटर्न, नदियों का प्रवाह, भूजल स्तर और हिमनदों का पिंघलना प्रभावित हो रहे हैं। भारत में इसका असर सूखा, बाढ़ और मानसून की अनियमितता के रूप में दिखाई देता है।

भूगोलिक दृष्टि से विभिन्न क्षेत्र अलग–अलग प्रभावित हो रहे हैं। उत्तर भारत में बाढ़ की संभावना बढ़ी है, जबकि शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र सूखे की चपेट में हैं। जल प्रबंधन और संरक्षण की नीतियाँ, जैसे जल जीवन मिशन और भूजल पुनर्भरण, इस समस्या से निपटने में महत्वपूर्ण हैं। सतत विकास और तकनीकी नवाचार जैसे स्मार्ट वाटर सिस्टम और ड्रिप इरिगेशन भविष्य में जल सुरक्षा सुनिश्चित करेंगे।

संदर्भ सूची :

1. IPCC. (2023). जलवायु परिवर्तन 2023 : प्रभाव, अनुकूलन और संवेदनशीलता। अंतरसरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल।
2. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार. (2022). राष्ट्रीय जल मिशन : वार्षिक रिपोर्ट। नई दिल्ली : भारत सरकार।
3. विश्व बैंक. (2021). भारत में जल : प्रवृत्तियाँ और चुनौतियाँ। वॉशिंगटन डी.सी. : विश्व बैंक प्रकाशन।
4. कुमार, आर., एवं सिंह, आर. (2018). भारत में जल संसाधन और जलवायु परिवर्तन : एक भौगोलिक अध्ययन। नई दिल्ली : स्प्रिंगर।
5. शर्मा, पी. (2020). भारत की नदियों और कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव। पर्यावरण अध्ययन पत्रिका, 45(2), 112–130।
6. संयुक्त राष्ट्र. (2021). सतत विकास लक्ष्य : लक्ष्य 6 – स्वच्छ जल और स्वच्छता। न्यूयॉर्क : संयुक्त राष्ट्र प्रकाशन।
7. अग्रवाल, ए., एवं नारायण, एस. (2019). वैश्विक उष्णकटिबंध और भारत में जल संकट। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 54(23), 30–38।

Email- Jangalmahesh@Gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 150-156

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Comparative Study of Self-Confidence and Attitude Among Higher Secondary School Students (with reference to Mandsaur City)

Dr. Yogita Somani, Principal
Saraswati Shiksha Mahavidyalaya, Mandsaur (M.P.)

Abstract :

This research presents a comparative study of self-confidence and attitude among higher secondary school students. For the study, a sample of 200 students (100 boys and 100 girls) from Class 10 of a higher secondary school was selected. For data collection, the researcher used the standardized self-confidence scale developed by Smita Bhawalakar, which consists of 23 items. For attitude, the standardized scale developed by Prof. S.P. Ahluwalia was used, which contains 90 questions. The research findings revealed that the self-confidence of female students in higher secondary school was more effective than that of male students. The attitude of both male and female students in higher secondary school was found to be similar, and there was no significant difference between the self-confidence and attitude of the students.

Keywords - Self-confidence, Attitude, and Students

Introduction :

Education is the first step in human civilization. In the modern era, it is difficult to imagine human existence without education. With the advent of innovation in all fields in this era, the pace of social change is accelerating, and in a democratic environment, the concept of independent and free thought is becoming stronger behind the individual. Education makes a person self-reliant. An educated person is not a burden on society and successfully performs their tasks. The Indian-Western consumer culture has made individuals materialistic. People have raised their level of aspirations. They have started feeling highly ambitious in the race for materialism; their aspirations have made them dull and ineffective, and they have become highly ambitious, abandoning the distinction between good and bad. Education develops self-confidence, abilities, and qualities in human life. Development in education increases self-confidence in individuals, and it is through education that a person develops

the qualities of their personality. Education is the key to all-round development.

Schools and teachers play a vital role in the overall development of the country. The all-round development of students primarily depends on teachers through schools. Students studying in these schools are ensuring their significant contribution to their all-round development. The Indian philosophy of education encompasses the all-round development of the individual. If a country wants to accelerate its progress, it must continuously improve its education system. It is essential to bring about timely changes in the education system. Therefore, in addition to government institutions, there are many private schools that are working in the field of education for the promotion and dissemination of education. The self-confidence and attitude of commerce students and girls studying in higher secondary schools differ.

Self-confidence :

Self-confidence refers to believing in one's own abilities, which makes a person self-reliant. It is related to trusting one's own decisions, not being timid, and feeling competent in doing what one wants to do. Self-confidence is one aspect of a person. A person's self is made up of their soul, feelings, thoughts, hopes, fears, hard work, and desires. He views the world through all these aspects. Self-confidence is a positive attitude that helps a person establish themselves in the world. A self-confident person is socially competent, emotionally mature, intellectually capable, successful, satisfied, optimistic, self-reliant, independent, and decisive, and also possesses leadership qualities. According to Good, "Self-confidence refers to a person's belief in their own abilities."

Attitude :

Every person has their own perspective through which they perceive the world. This perception of various objects by an individual is called attitude. In the present research study, the responses of trainees towards the continuous and comprehensive evaluation process during the study of commerce and science students of higher secondary school have been considered as attitude. In other words, attitude is the feeling and belief of a person towards a specific event. Attitude indicates the viewpoint of a person, due to which they behave in a specific way towards an object, situation, institution, or person.

According to Skinner, "Attitude is defined as a generalized mental disposition towards a group of people or an institution."

Previous Research :

Patnaik (2019) conducted a comparative study of male and female B.Ed. trainees in the context of self-confidence and social intelligence. The objective of the research was to compare the mean scores of self-confidence of male and female B.Ed. trainees. The result of the research was that a

significant difference was found in the mean scores of self-confidence among male and female teacher trainees of B.Ed.

Patil (2020) conducted a comparative study of students of the Arts and Science faculties based on risk-taking ability, self-confidence, and logical ability. The objectives of the research were: 1. To compare the students of the Arts and Science faculties based on their risk-taking ability, 2. To compare the students of the Arts and Science faculties based on their self-confidence. The results of the research were: 1. The mean risk-taking ability of science faculty students was significantly higher than the mean risk-taking ability of arts faculty students. 2. Confidence was found to be significantly higher among arts faculty students compared to science faculty students.

Patel (2022) studied the effectiveness of the dialogue method in relation to self-confidence and personality of eighth-grade students. The objectives of this study were: 1. To compare the mean pre-test and post-test scores of self-confidence among students treated with the dialogue method, and 2. To study the significance of personality change among students treated with the dialogue method. The conclusions of this study were: 1. The dialogue method was found to be significantly effective in developing self-confidence among students, and 2. The dialogue method was found to be significantly effective in transforming introverted personalities into extroverted personalities among students.

Kumar (2023) conducted a comparative study of the aspiration levels, interest adjustment, and attitudes of tribal and non-tribal students at the secondary level in Arunachal Pradesh. The objectives of the present study were: 1. To compare the aspiration levels of tribal and non-tribal students from classes 9 to 12. For this study, 150 tribal and 150 non-tribal students were selected as a sample. The sample included both boys and girls. Singh and Tiwari's Aspiration Level Test was used for data collection. The results were: 1. A difference was found in the aspiration levels of tribal and non-tribal students, and 2. Non-tribal students showed a higher aspiration level.

Rationale :

The researcher is concerned with knowing whether there is any difference between confidence and attitude among students. Furthermore, the researcher is also concerned about what happens if teachers find their students talented, creative, and intelligent, or whether there is any program in schools to care for them so that their confidence and attitude can be enhanced along with their high level of ability. It is necessary to study how confidence and attitude are being enhanced in higher secondary school students and what effect it is having on them. Therefore, this area was selected by the researcher for the study.

Statement of the Problem :

"A Comparative Study of Confidence and Attitude among Higher Secondary School Students."

(In the context of Mandsaur city)

Objectives :

The objectives of the study were as follows :

- To conduct a comparative study of the mean scores of confidence among male and female students of higher secondary school.
- To conduct a comparative study of the mean scores of attitude among male and female students of higher secondary school.
- To conduct a comparative study of the mean scores of confidence and attitude among students of higher secondary school.

Hypotheses :

The following hypotheses were formulated for the study :

- There will be no significant difference in the mean scores of self-confidence between male and female students of higher secondary schools.
- There will be no significant difference in the mean scores of attitude between male and female students of higher secondary schools.
- There will be no significant difference in the mean scores of self-confidence and attitude among higher secondary school students.

Research Methodology :

Sample :

For the present research study, a sample of 200 students (100 boys and 100 girls) from class 10th of higher secondary schools was selected using a random sampling method.

Tools :

In the present research study, data related to the self-confidence and attitude of higher secondary school students were collected. For the collection of this data, the researcher used a standardized self-confidence test scale developed by Smita Bhawalkar. It contains 23 statements. For attitude, a standardized scale developed by Prof. S.P. Ahluwalia was used, which contains 90 questions.

Method :

In this research, the researcher used the survey method.

Data Collection -

For data collection, the researcher obtained permission from the principals of higher secondary schools in Mandsaur city and administered the self-confidence and attitude scales to the 10th-grade students in a friendly environment. They were also assured that the information provided by them

would be kept completely confidential and would be used only for research purposes. Finally, the researcher expressed gratitude to the principals, teachers, and students of the schools.

Data Analysis :

In the present study, the collected data was analyzed using an independent t-test to test the hypotheses.

Results and Discussion :

Objective 1 : To conduct a comparative study of the mean scores of confidence among male and female students of higher secondary school.

Table 1

Summary of Mean Scores of Self-Confidence among Male and Female Students of Higher Secondary Schools

Self-Confidence	N	M	SD	't'value	df	Inference	Level of Sig.
Male Students	100	35.85	6.75	2-13*	198	Significant	.05
Female Students	100	38.29	6.58				

The above table shows that the mean confidence score of higher secondary school male students is 35.85 with a standard deviation of 6.75, and the mean confidence score of higher secondary school female students is 38.29 with a standard deviation of 6.58. The calculated t-value is 2.13, which is significant at the 0.05 level of significance (t-critical = 1.98). Therefore, the null hypothesis, **"There will be no significant difference in the mean confidence scores of higher secondary school male and female students,"** is rejected.

This means that a significant difference was found in the mean confidence scores of higher secondary school male and female students. Female students in higher secondary school have higher confidence levels compared to male students. In conclusion, it can be said that the confidence level of female students in higher secondary school was more pronounced than that of male students.

Objective 2 : To conduct a comparative study of the mean scores of attitude among male and female students of higher secondary school.

Table 2

Summary of Mean Scores of Attitude among Male and Female Students of Higher Secondary Schools

Attitude	N	M	SD	't'value	df	Inference
Male Students	100	36.79	6.54	0.695	198	Not Significant
Female Students	100	36.35	6.86			

The above table shows that the mean attitude score of higher secondary school male students is 36.79 and the standard deviation is 6.54, while the mean attitude score of female students is 36.35 and the standard deviation is 6.86. The calculated t-value is 0.695, which is not significant at the 0.01 or 0.05 level of significance (t-critical value = 1.98). Therefore, the null hypothesis, **"There will be no significant difference in the mean attitude scores of male and female higher secondary school students,"** is accepted.

This means that no significant difference was found in the mean attitude scores of male and female higher secondary school students. The mean attitude scores of male and female higher secondary school students are similar. In conclusion, it can be said that the attitudes of male and female higher secondary school students were found to be similar.

Objective 3 : To conduct a comparative study of the mean scores of confidence and attitude among students of higher secondary school.

Table 3

Summary of mean scores for self-confidence and attitude among senior secondary school students.

Students	N	M	SD	't'value	df	Inference
Self-Confidence	200	57.25	7.54	1.56	398	Not Significant
Attitude	200	58.38	6.86			

The above table shows that the mean confidence score of higher secondary school students is 57.25 and the standard deviation is 7.54, and the mean attitude score of the students is 58.38 and the standard deviation is 6.86, and the value of z is 1.56, which is not significant at the 0.01 or 0.05 level

of significance ($p > 0.05$). Therefore, the null hypothesis, "**There will be no significant difference in the mean scores of confidence and attitude of higher secondary school students,"** is accepted. That is, it can be said that no significant difference was found in the mean scores of confidence and attitude of higher secondary school students. The mean scores of confidence and attitude of higher secondary school students are similar. In conclusion, it can be said that the confidence and attitude of higher secondary school students were found to be similar.

Conclusion :

- The confidence of female students in higher secondary school was more effective than the confidence of male students.
- The attitude of male and female students in higher secondary school was found to be similar.
- The confidence and attitude of higher secondary school students were found to be similar.

Educational Implications :

- A comparative study of the attitude and confidence of students at the secondary school level in rural and urban areas can be conducted. The same can be done by taking a sample of students at the higher secondary school level and college level.
- A comparative study can be conducted on the attitude and confidence of students from schools affiliated with the Central Board of Secondary Education, Madhya Pradesh Board of Secondary Education, Rajasthan Board of Secondary Education, or any other board.
- The methods and techniques used in schools and colleges can be studied independently.
- A large-scale study can also be conducted on teachers and members of society under this study.

References :

1. Patil, P.K.: A study of arts and science faculty students based on risk-taking, confidence and reasoning ability. Unpublished M.Ed. Dissertation, Devi Ahilya University, Indore, 2001.
2. Patnaik, Himanshu: A Comparative Study of Self-Confidence and Social Intelligence among Male and Female B.Ed. Trainees, Unpublished M.Ed. Dissertation, Devi Ahilya University, Indore, 1998.
3. Bhatnagar, Suresh, Educational Psychology, R. Lal Book Depot, Meerut, 1992.
4. Agarwal, J.C., Education Research: An Introduction, Arya Book Depot, New Delhi, 1996.
5. Tyagi, Gurusaran Das and Nand, Education in Emerging India, Vinod Pustak Mandir, Agra.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 157-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ. संजीत कुमार तिवारी, शोध निर्देशक
नीलम सोनी, शोधार्थी
मैटस विश्वविद्यालय, गुल्लू, आरंग, रायपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश :

प्रस्तुत शोध में ''रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन'' किया गया हैं। शोध के लिये उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन न्यादर्शन की यादृच्छिक विधि से किया गया। न्यादर्श के रूप में 100 विद्यार्थियों (50 छात्र एवं 50 छात्राओं) का चयन किया गया। प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा बलविन्दर सिंह एवं सुरजीत लाल द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण सोशल मीडिया मापनी का एवं प्रो. वी. पी. शर्मा एवं आराधना गुप्ता द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण शैक्षिक आकांक्षा मापनी प्रयोग किया गया। इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। शोध परिणामों से प्राप्त हुआ कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द – विद्यार्थी, सोशल मीडिया, शैक्षिक आकांक्षा।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग को सामाजिक मीडिया का दौर कह सकते हैं। सोशल मीडिया में स्वयं की सक्रिय भागीदारी होती है जिससे प्रयोक्ता अधिक अपनापन महसूस करता है। वह खुलकर अपनी बात रख सकता है तथा दूसरों की प्रतिक्रियाएँ जानना चाहता हैं। सामाजिक मीडिया की ही देन है कि फेसबुक को विश्व का सर्वाधिक लोकप्रिय सोशल साइट कहा जाता हैं। सोशल मीडिया द्वारा हम अपने सम्पर्कों का दायरा बढ़ाते हुए अधिक से अधिक लोगों तक अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं। सोशियल नेटवर्किंग साइट्स एक तरह की वेबसाइट्स हैं जिससे जुड़कर हम इस साइट पर पहले से जुड़े अन्य लोगों से भी जुड़ सकते हैं। इन लोगों में हमारे वर्तमान और कई सालों पहले बिछड़े हुए दोस्त तथा हजारों कि.मी. दूर रह रहे हमारे परिजन तथा मित्र भी हो सकते

हैं। इन साइटों पर जुड़कर हम बिना किसी शुल्क के चाहे जितनी देर तक विचार विमर्श कर सकते हैं। यही नहीं हम एक–दूसरे के फोटो और विडियों भी देख सकते हैं। विडियोकॉल के जरिये हम दूर रहकर भी आमने सामने बात कर सकते हैं। अन्य किसी माध्यम की अपेक्षा ये सस्ते तथा सुलभ होते हैं इसलिए सोशल साइट्स काफी लोकप्रिय होती जा रही है। सामाजिक मीडिया एक अपरम्परागत मीडिया हैं, यह एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे इंटरनेट के माध्यम से पहुंच बना सकते हैं। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे संसार को जोड़े रखता हैं। यह संचार का एक बहुत अच्छा माध्यम हैं। यह द्रुत गति से सूचनाओं के आदान–प्रदान करने, जिसमें हर क्षेत्र की खबरें होती हैं, को समाहित किए होता है।

बालक का सर्वांगीण विकास शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है, क्योंकि बालक जन्म के कुछ वर्षों के बाद विद्यालय में प्रवेश करता है और विद्यालयों में निर्मित समूह का सदस्य बनता है। विद्यार्थियों के सम्पूर्ण विकास में उनके समूहों के सदस्यों की पारस्परिक अन्तर्क्रिया का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक विद्यार्थियों की सफलता और विकास एक सीमा तक विद्यार्थियों एवं उनके सहपाठियों के साथ स्वीकृति एवं सुरक्षा की भावना पर निर्भर करता है। व्यक्तित्व विकास एवं आत्म संकल्पना के विकास में स्वीकृति एक मुख्य भूमिका का निर्वहन करती है। अस्वीकृति प्रायः न केवल व्यक्तित्व विकास को अवरूद्ध करती है बल्कि आत्मविश्वास को भी अवरूद्ध करती है। एकाकीपन एवं अस्वीकृति की भावनाएं प्रायः निराशा के स्त्रोत होते हैं। प्रत्येक अनुकूल सामाजिक परिस्थितियां अहम् को जन्म देती हैं, आत्मविश्वास को बढ़ाती हैं और अपनेपन का आभास कराती हैं। कोई भी इंसान उस शिखर तक कभी नहीं पहुँच पाता जहां सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता हो। यह बात निःसंदेह सत्य है कि किसी भी स्तर पर या किसी भी उम्र में सोशल मीडिया, उनकी शैक्षिक आकांक्षा एवं व्यक्तिगत मूल्य, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार की परिस्थिति का अभाव व्यक्ति को कष्ट और दुःख में डाल देती है, जबकि इस प्रकार की परिस्थिति होने पर व्यक्तित्व विकास एवं बेहतर समाज के निर्माण में मदद मिलती है।

सोशल मीडिया :

सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है कि यह इंटरनेट आधारित अनुप्रयोगों का एक ऐसा समूह है जो प्रयोक्ता–जनित सामग्री के सृजन और आदान–प्रदान की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी से ऐसे क्रियाशील मंचों का निर्माण करता है जिनके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय प्रयोक्ता–जनित सामग्री का संप्रेषण एवं सह–सृजन कर सकते हैं, उस पर विचार–विमर्श कर सकते है और उसका परिष्कार कर सकते हैं। यह संगठनों, समुदायों और व्यक्तियों के बीच संसार में महत्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तनों को अंजाम देता है। 2000 के दशक के शुरू में सॉफ्टवेयर विकास कर्ताओं ने अंतिम इस्तेमाल कर्ताओं को इस बात में सक्षम बनाया कि वे वर्ल्डवाइड वेब पर स्थिर और निष्क्रिय पृष्ठों को देखने के बजाय अधिक परस्पर क्रियाशील बन सके, ऑन लाइन या वास्तविक समुदायों में प्रयोक्ता–जनित सामग्री का इस्तेमाल कर सके। इसकी परिणीति वेब 2.0 के रूप में हुई और सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि इससे एक अद्भुत प्रयोग का सृजन हुआ जिसे अब हम सोशल मीडिया कहते हैं। सोशल मीडिया सामाजिक नेटवर्किंग वेबसाइटों जैसे–फेसबुक, ट्विटर, लिंकर, यू–ट्यूब, लिंक्डइन, पिंटेरेस्ट, माइस्पेस, साउंडक्लाउड और ऐसे ही अन्य साइटों पर इस्तेमाल कर्ताओं को विचार–विमर्श, सृजन, सहयोग करने तथा टेक्स्ट, इमेज, ऑडियो

और विडियों रूपों में जानकारी में हिस्सेदारी करने और उसे परिष्कृत करने की योग्यता और सुविधा प्रदान करता है। यह सच है कि सोशल मीडिया ने इंटरनेट का लोकतंत्रीकरण किया है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने भाषण और अभिव्यक्ति के आदर्शो को संरक्षित किया है किंतु इसके साथ ही यह भी उतना ही सही है कि इसने ऐसे दैत्यों को भी जन्म दिया है जो घात लगाए रहते है और लगता है कि उनकी संख्या बढ़ रही है। हाथ में रखे जाने वाले मोबाइल उपकरणों जैसे – स्मॉर्टफोन और टैबलेट्स की संख्या तेजी से बढती जा रही है और इन उपकरणों पर इंटरनेट की उपलधता से वास्तविक समाजीकरण में तात्कालिता की भावना कई गुणा बढ गई है। इसके जरिए न केवल अति संवेदनशील और युवा दिलों को प्रभावित करने वाली अनुचित सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है, बल्कि निंदनीय मानसिकता वाले व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के जघन्य प्रयोजनों के लिए इस माध्यम का प्रयोग करने की छूट भी मिल जाती है।

शैक्षिक आकांक्षा :

आकांक्षा को मुख्य रूप से वातावरण व व्यक्तिगत कारकों द्वारा प्रभावित हुआ माना जाता है। वातावरण में अभिभावकों की महत्वाकांक्षा, सामाजिक–आकांक्षा, सफल व्यक्ति का प्रभाव, संस्कृति, सामाजिक मूल्य, प्रतिस्पर्द्धा इत्यादि आते हैं, जबकि व्यक्तिगत आकांक्षा में इच्छायें, व्यक्तित्व, पूर्व अनुभव, मूल्य व रूचि, लिंग, सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि व वंश तथा परिवार की पृष्ठभूमि आती है। कार्यों की सफलता व असफलता आकांक्षा को उच्च व निम्न बनाती है। जब विद्यार्थी को एक परीक्षा में सफलता मिल जाती है तो वह आगे होने वाली परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सुगम समझता है, किन्तु इसके विपरीत यदि विद्यार्थी को असफलता मिलती है तो वह विद्यार्थी उत्साह खो बैठता है, जिससे उसका आकांक्षा–स्तर निम्न हो जाता है।

पूर्व शोध का अध्ययन :–

कुप्पूस्वामी सुनीथा (2020) ने किशोरों की शिक्षा पर सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट के प्रभाव का अध्ययन किया। शोध में पाया कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स, ऑरकुट, फेसबुक, मायस्पेस और यूट्यूब आदि किशोरों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहा है तथा अब यह दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुका है। लोग सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। इस शोधकर्ता ने सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रभाव का अध्ययन किया है। अध्ययन से पता चलता है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स किशोरों को उनके अध्ययन से भटकाती हैं। हालांकि इसका एक अच्छा अच्छा पक्ष भी है अधिकांश किशोरो सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर यूट्यूब आदि के माध्यम से अपने ज्ञान में वृद्धि भी करते हैं। इस तरह सोशल नेटवर्किंग साइट्स का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव है जरूरत है उसके सकारात्मक तरीके से उपयोग की।

डिकर्सन (2021) ने शैक्षिक आकांक्षाओं पर माध्यमिक विद्यालयों के साथी समूह के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में इंग्लैण्ड के माध्यमिक विद्यालय के कक्षा–9 एवं 11 के किशोर विद्यार्थियों को शामिल किया गया। अध्ययन में देखा गया कि छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा उनके साथी समूहों द्वारा कैसे प्रभावित होती है? अध्ययन में निष्कर्ष पाये गये कि उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाले छात्रों के साथ स्कूल जाने वाले व स्कूल में साथ रहने वाले साथी समूहों में उच्च शैक्षिक आकांक्षायें हैं। अनिवार्य शिक्षा के बाद की शिक्षा की प्राप्ति के लिये अधिक अकांक्षा रखने वाले स्वआकांक्षी साथी समूह के साथ रहने वाले छात्रों में भी उच्च शैक्षिक आकांक्षायें पायी गयीं हैं।

कुमार एवं यादव (2022) द्वारा माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के विभिन्न भौक्षिक आकांक्षा समूहों की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। अध्ययन में कक्षा–10 के 400 विद्यार्थियों को प्रतिदर्श के रूप में शामिल किया गया। अध्ययन में निष्कर्ष प्राप्त हुए कि विभिन्न शैक्षिक आकांक्षा समूहों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत की विमा समझ एवं ई–संसाधनों के प्रयोग में सार्थक अन्तर है जबकि विभिन्न शैक्षिक आकांक्षा समूहों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत की अन्य विमाओं एकाग्रता, योजना, अन्तर्क्रिया, अध्ययन से सम्बन्धित वातावरण एवं अभ्यास में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

समस्या कथन

''रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन।''

उद्देश्य :

अध्ययन के निम्न उद्देश्य है –

- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :

अध्ययन की निम्न परिकल्पनाएं हैं :–

- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध प्रविधि

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का चयन न्यादर्शन की यादृच्छिक विधि से किया गया। न्यादर्श के रूप में 100 विद्यार्थियों (50 छात्र एवं 50 छात्राओं) का चयन किया गया।

उपकरण :

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा निम्न प्रश्नावली का प्रयोग किया गया–

- **सोशल मीडिया :–** बलविन्दर सिंह एवं सुरजीत लाल द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण सोशल मीडिया

मापनी का प्रयोग किया गया।

- **शैक्षिक आकांक्षा :–** प्रो. वी. पी. शर्मा एवं आराधना गुप्ता द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण शैक्षिक आकांक्षा मापनी का प्रयोग किया जायेगा।

शोध विधि :

इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तो का संकलन –

शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों के संकलन हेतु विद्यालय के प्राचार्यो से अनुमति प्राप्त कर विद्यार्थियों से सोशल मीडिया एवं शैक्षिक आकांक्षा से संबंधित प्रामाणिक मापनी को सोहार्द्रपूर्ण वातावरण में भरवायी गई।

प्रदत्तो का विश्लेषण :

प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु संकलित प्रदत्तो का विश्लेषण **स्वतंत्र टेस्ट** द्वारा किया गया।

परिणाम एवं विवेचना :

- **उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

छात्र	N	M	SD	't'value	df	Inference
सोशल मीडिया	50	48.78	5.71	16.62*	98	Significant
शैक्षिक आकांक्षा	50	31.92	4.39			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 48.78 एवं प्रमाणिक विचलन 5.71 है एवं छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 31.92 एवं प्रमाणिक विचलन 4.39 है, तथा का मान 16.62 है, जो के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।''** निरस्त की जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 48.78 हैं, जो छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 31.92 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक

स्तर के विद्यालयों के छात्रों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान, छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

- **उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

छात्रायें	N	M	SD	't' value	df	Inference
सोशल मीडिया	50	42.49	8.77	3.42*	98	Significant
शैक्षिक आकांक्षा	50	35.53	11.67			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्राओं का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 42.49 एवं प्रमाणिक विचलन 8.77 है एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 35.53 एवं प्रमाणिक विचलन 11.67 है, तथा t का मान 3.42 है, जो r के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **"उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।"** निरस्त की जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्राओं का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 42.49 हैं, जो छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 35.53 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्राओं का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान, छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

- **उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 03

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

विद्यार्थी	N	M	SD	't' value	df	Inference
सोशल मीडिया	100	43.15	8.51	8.45*	198	Significant
शैक्षिक आकांक्षा	100	34.49	10.59			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 43.15 एवं प्रमाणिक विचलन 8.51 है एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 34.49 एवं प्रमाणिक विचलन 10.59 है, तथा t का मान 8.45 है, जो r के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **'उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।'** निरस्त की जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान 43.15 हैं, जो विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों का मान 34.49 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों का सोशल मीडिया के माध्य फलांकों का मान, विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

निष्कर्ष :

- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सोशल मीडिया का उनकी शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. भटनागर, सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ 1992।
2. अग्रवाल, जे. सी., एजुकेशन रिसर्च एन इन्ट्रोडक्शन, आर्य बुक डिपो, न्यू दिल्ली 1996।
3. एम. के. मंगल, शुभ्रा मंगल, व्यवहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियॉ।
4. अस्थाना एवं श्रीवास्तव, विपिन एवं विजया, शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीं।

5. पाण्डेय, के0 पी0 (2005) : शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
6. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड, सुनीता (2013) : शिक्षा मनोविज्ञान, भारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पाण्डा, अनिल कुमार (2018) : अनुसंधान विधियाँ एवं सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी, साहित्य रत्नालय, कानपुर।
8. आडे, संतोष रामचन्द्र (2018) वैश्वीकरण में मीडिया की भूमिका इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट वॉ. 3, इश्शू–4, पृ. 63–66
9. कौर एवं हुसैन (2018) सामाजिक मीडिया का प्रचलन एवं युवाओं पर इन का प्रभाव इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमिनिट्रिज एण्ड सोशल साइंस रिसर्च वॉ. 4 इश्शू–2, पृ. 30–34
10. कुसुम (2016) किशोरावस्था में बालिकाओं पर दूरदर्शन के प्रभाव (फैजाबाद के नगरीय क्षेत्र के सन्दर्भ में), इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवॉस एजुकेशन एण्ड रिसर्च वॉ. 1, इश्शू 2, पृ. 31–32

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 165-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ. मीता पारिख, शोध निर्देशक
श्रीमती प्रेरणा सक्सेना, शोधार्थी
मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

सारांश :

प्रस्तुत शोध में ''शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन'' किया गया है। शोध के लिये शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन न्यादर्शन की यादृच्छिक विधि से किया गया। न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया। प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा डॉ. बीना शाह द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण सामाजिक आर्थिक स्तर मापनी का एवं शैक्षिक उपलब्धि के लिये विद्यार्थियों की कक्षा 10वी के वार्षिक परीक्षा परिणामों का प्रयोग किया गया। इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। शोध परिणामों से प्राप्त हुआ कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया। शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया। शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द – विद्यार्थी, सामाजिक आर्थिक स्तर, शैक्षिक उपलब्धि।

प्रस्तावना :

आज की प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया में, शिक्षा सामाजिक रूप से वंचित लोगों के लिए अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। गरीब वातावरण में रहने वाले विद्यार्थी स्कूलों में अपना अच्छा प्रदर्शन और सामाजिक जीवन में उपलब्धियाँ विकसित नहीं कर सकते हैं, जबकि संपन्न परिवारों से आने वाले विद्यार्थी बेहतर संज्ञानात्मक क्षमताएँ, योग्यताएँ और अन्य कौशल दिखाते हैं। विद्यार्थियों की अपनी सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति के प्रति धारणा या दृष्टिकोण एवं उनके ऑनलाइन शिक्षण का शैक्षिक उपलब्धि पर काफी प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। यह मानव की एक विशेष उपलब्धि है। अतीतकाल से मनुष्य ने जागरुक रहकर अपनी वॉक शक्ति का और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, समुदाय और समुदाय के बीच और संतति के बीच अपने व्यावहारिक अनुभव भंडार का संचार करने के लिए उपयोग किया है। इनमें प्राकृतिक घटनाओं, नियमों, विधि निषेध की संकेत भाषा का उपयोग है ताकि व्यक्ति स्मृति के माध्यम से पूरी जाति जीवित रह सके। शिक्षा एक सामाजिक विकास की आवश्यकता है। समुदाय की स्वभाविक विशेषता रही है। उसने सामाजिक विकास के हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप देने में सहायता की है। स्वयं शिक्षा का विकास काफी अवरुद्ध नहीं हुआ। मनुष्य के सर्वोच्च आदर्शों को इसने प्रवाहित किया है। मार्ग को भी शिक्षा ने काफी सच्चाई से अंकित किया है, जिसमें कुछ युग उत्थान के हैं, कुछ पतन के हैं, कुछ संघर्ष के हैं, और कुछ संतुलन और बिखराव के हैं। शिक्षा का प्रारंभ बेसिक विद्यालय से होता है इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे देश में शिक्षा की व्यवस्था करने वाली सरकारें बेसिक विद्यालय के उचित संगठन तथा संचार की ओर विशेष ध्यान दें। विद्यालय समाज का लघु रूप है। जिस प्रकार समाज में विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले लोग तथा अलग–अलग धर्म मानने वाले लोग रहते हैं। उसी प्रकार विद्यालय में अध्ययन हेतु आने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक आर्थिक स्तर तथा जाति धर्म आदि विभिन्न होते हैं। विद्यालय में अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र दिखने में स्मार्ट लगते हैं लेकिन गुणों के आधार पर परस्पर भिन्न होते हैं गुणों में भिन्नता के कारण उनकी विद्यालय में शैक्षिक उपलब्धि में भी भिन्नता पाई जाती है।

छात्र की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर निम्न होता है, जिसके आधार पर शिक्षक उसका आकलन करते हैं। शिक्षक आकलन के आधार पर ही योजनाएं बनाते हैं। नई योजनाओं के आधार पर शिक्षण कार्य करने पर छात्रों को उसकी सामग्री के अनुसार शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सफल होता है। छात्र की शैक्षिक उपलब्धि को उसकी सफलता, रुचि, अध्ययन की आदत, वातावरण आदि अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इसलिए एक शिक्षक के लिए यह परम आवश्यक है कि शिक्षण योजनाएं बनाते समय शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का ध्यान रखें। इस प्रकार से शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से शैक्षिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रगति को सुनिश्चित किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का संतुलित एवं सर्वाधिक विकास होता है। आधारशिला शिक्षा ही है। किसी भी जाति समाज देश तथा देश की उन्नति उसकी शिक्षा पर ही निर्भर करती है। इस शिक्षा हर किसी के जीवन में सफल होने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है। इससे जीवन की चुनौतियों को कम करने में बहुत ही मदद मिलती है। मुश्किल जीवन में शिक्षा अवधि के दौरान प्राप्त ज्ञान के किसी को उनके बारे में आश्वस्त करता है।

सामाजिक आर्थिक स्थिति :

सामाजिक–आर्थिक स्थिति से तात्पर्य सामाजिक व आर्थिक स्थिति के जटिल संमिश्रण से है। यह व्यक्ति को जिस समाज में वह रहता है, में एक विशेष संस्थिति, उसके भौतिक सम्पत्ति व संसाधनों तथा सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिष्ठा, शक्ति व प्रभाव के आधार पर प्रदान करता है। इसमें उसकी परिस्थिति यथा जाति, पारिवारिक प्रतिष्ठा, शिक्षा का स्तर, व्यवसाय, वार्शिक आय व कुल सम्पत्ति आदि आते हैं। इलियट और मैरिल के अनुसार– ''परिस्थिति व्यक्ति का एक पद है जिसे व्यक्ति किसी समूह में अपने लिंग, आयु, परिवार, धर्म, व्यवसाय, विवाह अथवा प्रयत्नों आदि के कारण प्राप्त करता है।''

सामाजिक–आर्थिक स्थिति किसी व्यक्ति या समूह का सामाजिक स्थान है यह शिक्षा आय तथा व्यवसाय के मेल का मापन करता है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति में न केवल आय बल्कि शैक्षिक प्राप्ति, वित्तीय सुरक्षा, सामाजिक स्थिति और सामाजिक वर्ग की व्यक्तिपरक धारणा शामिल है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति जीवन विशेषताओं की गुणवत्ता के साथ–साथ समाज के लोगों के लिए अवसरो और विशेषाधिकारों को शामिल कर सकती है, सामाजिक–आर्थिक स्थिति शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य सहित जीवनकाल में परिणामों की एक विशाल सारणी का एक सुसंगत और विश्वसनीय भविष्य वक्ता है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति अनुसंधान, अभ्यास, शिक्षा और वकालत सहित व्यवहार और सामाजिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों के लिए प्रासंगिक है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति, व्यक्ति के सामाजिक व आर्थिक स्थिति को प्रदर्शित करता है तथा सामाजिक–आर्थिक स्थिति व्यवसाय, आय तथा शिक्षा आदि प्रतीको के रूप में परिलक्षित होती है तथा ये प्रतीक ही विभिन्न समूहों के साथ सामाजिक तथा आर्थिक पद का मापन व तुलना करने में सहायता प्रदान करते हैं।

शैक्षिक उपलब्धि :

शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। यह मानव की एक विशेष उपलब्धि है। अतीतकाल से मनुष्य ने जागरुक रहकर अपनी वॉक शक्ति का और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, समुदाय और समुदाय के बीच, तथा संतति और संतति के बीच अपने व्यावहारिक अनुभव भंडार का संचार करने के लिए उपयोग किया है। इनमें प्राकृतिक घटनाओं, नियमों, विधि निषेध की संकेत भाषा का उपयोग है ताकि व्यक्तिक स्मृति के माध्यम से पूरी जाति जीवित रह सके। शिक्षा एक सामाजिक विकास की आवश्यकता है। समुदाय की स्वाभाविक विशेषता रही है। उसने सामाजिक विकास के हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप देने में सहायता की है। स्वयं शिक्षा का विकास काफी अवरुद्ध नहीं हुआ। मनुष्य के सर्वोच्य आदशों को इराने प्रवाहित किया है। मार्ग को भी शिक्षा ने काफी सच्चाई से अंकित किया है, जिसमें कुछ युग उत्थान के हैं, कुछ पतन के हैं, कुछ संघर्ष के हैं. और कुछ संतुलन और बिखराव के है। शिक्षा का प्रारंभ बेसिक विद्यालय से होता है इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे देश में शिक्षा की व्यवस्था करने वाली सरकारें बेशिक विद्यालय के उचित संगठन तथा संचार की ओर विशेष ध्यान दें। विद्यालय रामाज का लघु रूप है। जिस प्रकार समाज में विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले लोग तथा अलग–अलग धर्म मानने वाले लोग रहते हैं। उसी प्रकार विद्यालय में अध्ययन हेतु आने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक आर्थिक स्तर तथा जाति धर्म आदि विभिन्न होते हैं।

विद्यालय में अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र दिखने में स्मार्ट लगते हैं लेकिन गुणों के आधार पर परस्पर भिन्न होते हैं गुणों में भिन्नता के कारण उनकी विद्यालय में शैक्षणिक उपलब्धि में भी भिन्नता पाई जाती है। छात्र की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर निम्न होता है। जिसके आधार पर शिक्षक उसका आंकलन करते है शिक्षक आकलन के आधार पर ही योजनाएं बनाते हैं। नई योजनाओं के आधार पर शिक्षण कार्य करने पर छात्रों को उसकी सामग्री के अनुसार शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सफल होता है। छात्र की शैक्षिक उपलब्धि को उसकी सफलता रुचि अध्ययन की आदत, वातावरण आदि अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इसलिए एक शिक्षक के लिए यह परग आवश्यक है कि शिक्षण योजनाएं बनाते समय शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का ध्यान रखें। इस प्रकार से शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से शैक्षिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रगति को सुनिश्चित किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का संतुलित एवं सर्वाधिक विकास होता है। आधारशिला

शिक्षा ही है। किसी भी जाति समाज देश तथा देश की उन्नति उसकी शिक्षा पर ही निर्भर करती है। इस शिक्षा हर किसी के जीवन में सफल होने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है।

पूर्व शोध का अध्ययन :

कुमार, अनुप (2023) ने शैक्षणिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्थिति का प्रभाव पर शोध अध्ययन किया। यह अध्ययन विश्लेषण करता है कि सामाजिक–आर्थिक स्थिति (एसईएस) छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन को कैसे प्रभावित करती है। अध्ययन जांच करता है कि सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि शैक्षणिक प्रदर्शन को कैसे प्रभावित करती है। यह अध्ययन यह समझाने में मदद कर सकता है कि एसईएस शैक्षणिक उपलब्धि को कैसे प्रभावित करता है और उपलब्धि असमानताओं को कम करने के लिए शैक्षिक नीति और कार्यों का मार्गदर्शन करता है। 300 विभिन्न माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों का नमूना लिया गया। सामाजिक–आर्थिक स्थिति की गणना के लिए माता–पिता की आय, शिक्षा और व्यवसाय का उपयोग किया गया। मानकीकृत परीक्षण और जीपीए ने शैक्षणिक प्रदर्शन को मापा। डेटा विश्लेषण में सहसंबंध और प्रतिगमन विश्लेषण का उपयोग किया गया। प्रतिगमन अध्ययन ने पता लगाया कि कैसे एसईएस ने पारिवारिक जुड़ाव और स्कूल संसाधनों जैसे अन्य कारकों के लिए समायोजन करते हुए शैक्षणिक परिणामों की भविष्यवाणी की। सहसंबंध विश्लेषण ने एसईएस और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंधों की जांच की। नीति निर्माता और शिक्षक यह समझकर उपलब्धि अंतराल को कम कर सकते हैं और निष्पक्ष शिक्षा को बढ़ावा दे सकते हैं कि सामाजिक–आर्थिक स्थिति अकादमिक प्रदर्शन को कैसे प्रभावित करती है।

चंद्रा, रितु (2023) ने लखनऊ शहर के उच्चत्तर माध्यमिक शाला के विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं उनकी शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन पर शोध किया। शोध का मुख्य उद्देश्य (1) विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव एवं (2) विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य परस्पर संबंध का अध्ययन करना। शोध के लिए सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में उ.मा. शाला के 614 विद्यार्थियों को चयनित किया गया। जिसमें 358 छात्र व 256 छात्राएं थीं जो लखनऊ शहर के 14 विद्यालयों से थीं। इनकी आयु 13 से 17 वर्ष के बीच थी। सांख्यिकी गणना के लिए टी–परीक्षण, कार्ल पीर्यसन सह–संबंध गुणांक का उपयोग किया गया। परिणामों में पाया गया कि विद्यार्थियों का सामाजिक–आर्थिक स्तर उनके शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करता था एवं उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अंतर पाया गया।

अहमर एवं फरवंदा (2024) ने उ. मा. विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि एवं उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य संबंध का अध्ययन किया। शोध का मुख्य उद्देश्य (1) उ. मा. शाला के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन, (2) छात्र व छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य संबंध का अध्ययन, (3) उच्च निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य परस्पर संबंध का अध्ययन, एवं (4) छात्राओं की उच्च/निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना था। शोध में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में उ.प्र. के लखनऊ शहर के 200 विद्यार्थियों का चयन किया जिसमें 102 छात्र व 98 छात्राएँ शामिल थीं, जिनकी आयु 15 से 19 वर्ष की थी। परिणामस्वरूप पाया गया कि उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में

सार्थक अंतर था। विद्यार्थियों का सामाजिक–आर्थिक स्तर उनके शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करता पाया गया।

समस्या कथन :

'शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन'।

उद्देश्य :

अध्ययन के निम्न उद्देश्य है–

- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :

अध्ययन की निम्न परिकल्पनाएँ है –

- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध प्रविधि

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का चयन न्यादर्शन की यादृच्छिक विधि से किया गया। न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया।

उपकरण :

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा निम्न प्रश्नावली का प्रयोग किया गया–

- **सामाजिक आर्थिक स्तर :–** डॉ. बीना शाह द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण सामाजिक आर्थिक स्तर मापनी का प्रयोग किया गया।
- **शैक्षिक उपलब्धि :–** विद्यार्थियों की कक्षा 10वी के वार्षिक परिणामों का प्रयोग किया गया।

शोध विधि :

इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधि :

प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु संकलित प्रदत्तो का विश्लेषण **स्वतंत्र टेस्ट** द्वारा किया गया।

परिणाम एवं विवेचना :

- **शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

छात्र	N	M	SD	't'value	df	Inference
सामाजिक आर्थिक स्तर	100	69.36	6.91	9..62*	198	Significant
शैक्षिक उपलब्धि	100	77.79	8.47			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 69.36 एवं प्रमाणिक विचलन 6.91 है एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 77.79 एवं प्रमाणिक विचलन 8.47 है, तथा t का मान 9.62 है, जो r के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **'शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।''** निरस्त की जाती है। शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 69.36 हैं, जो छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 77.79 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान, छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

- **शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं की सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 02

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

छात्रायें	N	M	SD	't' value	df	Inference
सामाजिक आर्थिक स्तर	100	61.88	9.58	23.78*	198	Significant
शैक्षिक उपलब्धि	100	82.52	13.51			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 2 से पता चलता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की छात्राओं का सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 61.88 एवं प्रमाणिक विचलन 9.58 है एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 82.52 एवं प्रमाणिक विचलन 13.51 है, तथा का मान 23.78 है, जो t के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **'शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।'** निरस्त की जाती है। शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 82.52 हैं, जो छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 61.88 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान, छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

- **शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 03

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

विद्यार्थी	N	M	SD	't' value	df	Inference
सामाजिक आर्थिक स्तर	200	73.28	6.78	17.23*	198	Significant
शैक्षिक उपलब्धि	200	87.29	13.47			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों का सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 73.28 एवं प्रमाणिक विचलन 6.78 है एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 87.29 एवं प्रमाणिक विचलन 13.47 है, तथा का मान 17.23 है, जो t के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **'शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।'** निरस्त की जाती है। शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान 87.29 हैं, जो विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों का मान 73.28 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निश्कर्श स्वरूप यह कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के माध्य फलांकों का मान, विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

निष्कर्ष :

- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्राओं के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।
- शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. वर्मा, प्रीती एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (2010). बाल मनोविज्ञानः बाल विकास. आगरा–2: अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
2. ओबराय, डॉ. एस.सी. (1999). शिक्षण अधिगम के मूल तत्व. नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो।
3. कुप्पूस्वामी, बी. (1976). बाल व्यवहार और विकास. नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
4. अग्रवाल जेसी (1996), शैक्षिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. कुमार, अनुप (2023) ''शैक्षणिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्थिति का प्रभाव पर शोध अध्ययन'', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, जामनगर।
6. चंद्रा, रितु (2023) ''लखनऊ शहर के उच्चत्तर माध्यमिक शाला के विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर एवं उनकी शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन'', भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 01 अंक 01, नई दिल्ली।
7. अहमर एवं फरवंदा (2024) ''उ. मा. विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि एवं उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य संबंध का अध्ययन'', पीएचडी शिक्षा शास्त्र, गोरखपुर विश्वविद्यालय, थर्ड सर्वे इन एजुकेशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 173-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जोखिम लेने की क्षमता पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. संजीत कुमार तिवारी, शोध निर्देशक
विनीता वर्मा, शोधार्थी
मैटस विश्वविद्यालय, गुल्लू, आरंग, रायपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश :

प्रस्तुत शोध में ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जोखिम लेने की क्षमता पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन'' किया गया हैं। शोध के लिये प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा न्यादर्श के रूप उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया। प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा वी. सिन्हा एवं वी.पी.एन. अरोरा द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण जोखिम लेने की क्षमता मापनी का एवं प्रदीप कुमार मिश्रा एवं अजीत कुमार शंखधर द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण टेलीविजन कार्यक्रम मापनी का प्रयोग किया गया। इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। शोध परिणामों से प्राप्त हुआ कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं पर जोखिम लेने की क्षमता में सार्थक अंतर पाया गया। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द – विद्यार्थी, जोखिम लेने की क्षमता, टेलीविजन कार्यक्रम।

प्रस्तावना :

शिक्षा मानव जीवन का एक सुसंस्कृत एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके द्वारा मानव अपना आर्थिक विकास करता है और जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है। अपने रहन–सहन में परिवर्तन करता है। शिक्षा के द्वारा ही संसार की आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक प्रगति होती है। जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्त्व है, उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का महत्त्व है। शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करती है, उसे देवत्व का दर्शन कराती है, मानवीय मूल्यों की अनुभूति का उसे अवसर प्रदान करती है और स्वानुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा द्वारा ऐसे वातावरण की सर्जना अभीष्ट है जिससे व्यक्ति अपनी नैसर्गिक क्षमताओं के पूर्ण विकास की ओर अग्रसर हो सके।

किसी कार्य के किये जाने पर परिणाम के न आने तक किया गया कार्य जोखिम कहलाता है। अधिकांशतया जोखिम का अर्थ सम्भावित रूप से होने वाली मनचाही घटना से लगाया जाता हैं पर यहाँ जोखिम का अर्थ सम्भावित हानि से लिया जा रहा है यद्यपि निर्धारित जोखिम प्रत्यक्षीकरण की आवश्यक सत्यता पर

आधारित होती हैं। जोखिम स्थाई होते हैं। यह व्यक्ति के आस–पास के वातावरण के साथ होने वाली अन्योन्य क्रिया के साथ सम्बन्धित होता है लेकिन सभी जोखिम का परिणाम हमारे स्वयं के व्यवहार से सम्बन्धित नहीं होता है यह मूल्यों से भी सम्बन्धित होते है। जोखिम पूर्ण व्यवहार करना व्यक्ति के व्यवहार का एक ऐसा ऐच्छिक सहयोगपूर्ण व्यवहार है जिसमें जोखिम उठाने की प्रवृत्ति की कुछ मात्रा अवश्य होती है, किन्तु जोखिम भरे व्यवहार की कोई वस्तुनिष्ठ और निश्चित परिभाषा नही दी जा सकती है किन्हीं दो व्यक्तित्व के मापन में भी जोखिम लेने के व्यवहार के स्तर में अन्तर हो सकता है। कुछ व्यक्ति एक परिस्थिति में अधिक जोखिमपूर्ण व्यवहार करता है जबकि दूसरा व्यक्ति उसी परिस्थिति में कम जोखिम पूर्ण व्यवहार या शून्य जोखिम पूर्ण व्यवहार दर्शाता है। यह वैयक्तिकता अधिकांशता मृत्यु चोट, आर्थिक हानि आदि के सम्बन्ध में दृष्टिगत होती है।

विज्ञान एवम् तकनीकी के समुचित प्रयोग पर आधारित टेलीविजन शैक्षिक व सामाजिक विकास में एक महत्वपूर्ण सहयोगी है। शिक्षा में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए गर्ग (2005) स्वीकारते हैं ''आज सूचना एवं प्रोद्योगिकी के युग में शिक्षा को गुणवत्ता–पूर्ण, सहज एवम् सुलभ बनाने हेतु सूचना एवं प्रोद्योगिकी का बड़ी मात्रा में सफल प्रयोग हो रहा है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय तथा इसरो ने शिक्षा समप्रित उपग्रह एजुसेट चलाने के अभूतपूर्व निर्णय द्वारा शिक्षा प्रसार की व्यापक सम्भवनाएं व्यक्त कर सभी के लिए शिक्षा तथा सभी प्रकार के शिक्षण–प्रशिक्षण को साकार करने की आशा जतायी है।

जोखिम लेने की क्षमता :

एक आम आदमी की राय में 'जोखिम' शब्द से तात्पर्य एक ऐसे खतरनाक तत्व से है, जिसमें कोई व्यक्ति जाने–अनजाने ही पड़ जाता है। 21वीं शताब्दी के युग ने स्वयं को चिंता, संघर्ष, हताशा, दुश्मनी, घृणा आदि अनेक विषयों का युग सिद्ध कर दिया है। यह युग, यह समय मानसिक, सामाजिक, व्यक्तिगत विषमताओं का है। मनुष्य ने भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति में तेजी से उन्नति की है, उसने चन्द्रमा पर कदम रख दिये हैं तथा मंगल पर छुट्टियां बिताने की सोच रहा है लेकिन हम देखते हैं कि इन सब रचनाओं और आविष्कारों के पीछे भौतिक संसार की कुछ असाधारण चीजें छिपी हैं। अतः मनुष्य के लिए आवश्यक हो गया है कि वो अपनी समस्याओं को समझने, सुलझाने और भौतिकवादी संसार को दौड़ में जीतने के लिए, चाहे, अनचाहे जोखिम ले लें। साधारणतः जोखिम लेने की प्रवृत्ति एक वैयक्तिक कार्य है, जो व्यक्ति खतरा मोल लेता है वह अपनी सामाजिक प्रतिबल और आर्थिक स्थिति को दाब पर लगा देता है, अनेक पर्यावरणीय स्थितियों में जोखिम लेना मनुष्य जीवन के लिए एक रूचिपूर्ण कार्य है क्योंकि जोखिम लेने का व्यवहार उसकी जिदंगी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जोखिम लेने वाला व्यक्ति जहां एक तरफ खतरनाक स्थितियों से मुकाबला करता है वहीं दूसरी तरफ अनेक रचनात्मक तरीकों में पूरे शरीर को ताकत से लग जाना सिद्ध होता है।

टेलीविजन कार्यक्रम :

आज के समय में रेडियो एवं टेलीविजन प्रसारण देश के प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध हैं। चूँकि रेडियों द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों को केवल सुना जा सकता है जबकि टेलीविजन द्वारा शैक्षिक कार्यक्रम को एक साथ सुना व देखा जा सकता है। टेलीविजन में श्रव्य–दृश्य दोनों सुविधाएं होने के कारण शिक्षण में इसका प्रभाव रेडियो से कहीं अधिक है। शिक्षा में टेलीविजन के बढ़ते प्रभाव के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन में मणि (2000) स्वीकारते हैं कि ''टेलीविजन ने समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है क्योंकि यह एक नवीन

संभावनाओं से युक्त और आकर्षक माध्यम है जिसका उपयोग शिक्षा और मनोरंजन में समान रूप से किया जा सकता है।'' शैक्षिक टेलीविजन पर अपना मत व्यक्त करते हुये जोशी (1986) कहते हैं ''टेलीविजन बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए एक बहुत अच्छे माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

टेलीविजन एक श्रव्य–दृश्य साधन के रूप में बालकों को शिक्षा ग्रहण करने में सहायता करता है।'' शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले संचार माध्यमों में टेलीविजन का प्रमुख स्थान है। वास्तव में विश्व में संचार क्रान्ति लाने का पहला श्रेय टेलीविजन को ही दिया जाता है। टेलीविजन ने दो ग्रीक शब्दों 'tele' एवम् 'videre' से अपना अर्थ ग्रहण किया है, जिसमें 'tele' का अर्थ है 'दूर से' एवम् 'videre' का अभिप्राय है 'देखना'। इसके आधार पर टेलीविजन की जन प्रचलित परिभाषा है 'दूर से देखना' अर्थात् दूरदर्शन। 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका' में वर्ष 1920 से ही टेलीविजन कार्यक्रमों का प्रसारण प्रारम्भ हो गया था परन्तु भारत में इसका आगमन 15 सितम्बर 1959 में हुआ। भारत में टेलीविजन प्रसारण का प्रारम्भ विशिष्ट शैक्षिक सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया। जहाँ अन्य देशों में टेलीविजन प्रसारण का प्राथमिक उद्देश्य मनोरंजन था वहीं भारत में इसके प्रारम्भ के पीछे शैक्षिक उद्देश्य निहित थे।

पूर्व शोध का अध्ययन :–

सुब्रह्मम (2021) ने एक परीक्षण किया जिसमें दक्षिण कोरिया में रहने वाले हाईस्कूल के छात्र–छात्राओं के जोखिम भरे व्यवहार पर परिवार, समाज व स्कूल के वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि सियोल के स्कूल में जाने वाले छात्र–छात्रायें जो कि कुछ ही समय पूर्व घर से आये हैं उनमें जोखिम भरा व्यवहार ज्यादा होता है।

हेनरी एण्ड वि. (2021) ने अपने अध्ययन में अध्यापकों के व्यवसायिक तनाव और जीवन की गुणवत्ता के बीच सम्बन्ध जानने की कोशिश की इसमें उन्होंने 3238 शहरी अध्यापकों को लिया। उन्होंने यह अध्ययन दो भागों में किया। पहला जो अध्यापक व्यवसायिक तनाव से ग्रस्त है। दूसरे जो अपने व्यवसाय से सन्तुष्ट है और निष्कर्ष रूप से पाया कि कम आय और सुविधाओं से वांछित अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाने में रूचि नहीं लेते है जिसके कारण परिणाम निम्न स्तर का होता है और दूसरे भाग में व्यवसाय से सन्तुष्ट अध्यापकों का शिक्षा परिणाम अन्य की तुलना में उच्च स्तर का होता हैं।

शाह (2021) ने विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अभिभावकों की टेलीविजन देखने के बाद एक प्रतिक्रिया का अध्ययन किया। इस अध्ययन में शोधार्थी ने एक प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को टेलीविजन शो दिखाने के बाद उनसे कुछ पंक्तियाँ पढ़वायीं तथा उसके बाद उन्हें कक्षा की गतिविधियों में शामिल किया गया। अध्ययन में शामिल अभिभावकों, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों का मानना था कि टेलीविजन कार्यक्रम देखने से बच्चों की पढ़ायी में रूचि बढ़ गयी। विद्यार्थियों का यह भी मानना था कि टेलीविजन को देखने से उनमें कहानी को समझने तथा उसके पात्रों का मूल्यांकन करने की समझ विकसित हुई। वहीं अध्यापकों का मानना था कि टेलीविजन शो देखने से बच्चों की सभी अध्ययन आदतों में सुधार आता है।

समस्या कथन :

'उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जोखिम लेने की क्षमता पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन'।

उद्देश्य :

अध्ययन के निम्न उद्देश्य है –

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :

अध्ययन की निम्न परिकल्पनाएँ है –

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध प्रविधि

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा न्यादर्श के रूप उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया।

उपकरण :

प्रस्तुत अघ्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा निम्न प्रश्नावली का प्रयोग किया गया–

- **जोखिम लेने की क्षमता :–** वी. सिन्हा एवं वी.पी.एन. अरोरा द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण जोखिम लेने की क्षमता मापनी का प्रयोग किया गया।
- **टेलीविजन कार्यक्रम :–** प्रदीप कुमार मिश्रा एवं अजीत कुमार शंखधर द्वारा निर्मित प्रामाणिक उपकरण टेलीविजन कार्यक्रम मापनी का प्रयोग किया गया।

शोध विधि :

इस शोध कार्य में विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तो का संकलन –

शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों के संकलन हेतु विद्यालय के प्राचार्यो से अनुमति प्राप्त कर विद्यार्थियों से जोखिम लेने की क्षमता मापनी एवं टेलीविजन कार्यक्रम मापनी को सोहार्द्रपूर्ण वातावरण में भरवायी गई।

प्रदत्तो का विश्लेषण :

प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु संकलित प्रदत्तो का विश्लेषण स्वतंत्र टेस्ट द्वारा किया गया।

परिणाम एवं विवेचना :

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन का उददेश्य रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का सारांश

जोखिम लेने की क्षमता	N	M	SD	't'value	df	Inference
छात्र	100	52.42	7.72	17.54*	198	Significant
छात्रायें	100	36.73	8.74			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का मान 52.42 एवं प्रमाणिक विचलन 7.72 है एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का मान 36.73 एवं प्रमाणिक विचलन 8.74 है, तथा t का मान 17.54 है, जो r के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **''उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।''** निरस्त की जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का मान 52.42 हैं, जो छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का मान 36.73 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों का मान, छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं में जोखिम लेने की क्षमता में में सार्थक अंतर पाया गया।

- **उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।**

शोध अध्ययन का उददेश्य रायपुर जिले के उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना था। प्राप्त प्रदत्तो का विश्लेषण टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्रदत्त विश्लेषण का विवरण सारिणी 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

टेलीविजन कार्यक्रमों का प्रभाव	N	M	SD	't'value	df	Inference
छात्र	100	44.57	5.26	14.17*	198	Significant
छात्रायें	100	39.47	7.63			

*सार्थकता का स्तर .01

तालिका 1 से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के

माध्य फलांकों का मान 44.57 एवं प्रमाणिक विचलन 5.26 है एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों का मान 39.47 एवं प्रमाणिक विचलन 7.63 है, तथा t का मान 14.17 है, जो r के सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना **''उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में कोई सार्थक अंतर नहीं है।''** निरस्त की जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों का मान 44.57 हैं, जो छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों का मान 39.47 से सार्थक रूप से ज्यादा है। अर्थात् निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों का मान, छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के माध्य फलांकों के मान की तुलना में अधिक है। इसलिये कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

निष्कर्ष :

- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं पर जोखिम लेने की क्षमता में सार्थक अंतर पाया गया।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में सार्थक अंतर पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. भटनागर, सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ 1992।
2. अग्रवाल, जे. सी., एजुकेशन रिसर्च एन इन्ट्रोडक्शन, आर्य बुक डिपो, न्यू दिल्ली 1996।
3. एम. के. मंगल, शुभ्रा मंगल, व्यवहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियॉ।
4. अस्थाना एवं श्रीवास्तव, विपिन एवं विजया, शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीं।
5. पाण्डेय, के0 पी0 (2005) : शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
6. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड, सुनीता (2013) : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पाण्डा, अनिल कुमार (2018) : अनुसंधान विधियाँ एवं सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी, साहित्य रत्नालय, कानपुर।
8. सुब्रह्ममहॉन (2021), हाई स्कूल के छात्र–छात्राओं के जोखिम भरे व्यवहार पर परिवार, समाज व स्कूल के वातावरण के प्रभाव'', *इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी,* 37, pp. 21.
9. हेनरी एण्ड वि. (2021), ''अध्यापकों के व्यवसायिक तनाव और जीवन की गुणवत्ता के बीच सम्बन्ध'', *शिक्षा का जर्नल* 29 (2), pp. 125-137
10. शाह, एम. (2021), ''विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अभिभावकों की टेलीविजन देखने के बाद एक प्रतिक्रिया का अध्ययन'', *शिक्षा, संचार एवं सूचना* 4(2-3), pp. 293-310.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 179-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी – एक अध्ययन

डॉ. सीमा परवीन खान, पर्यवेक्षक
मीनाक्षी वर्मा, शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी – एक अध्ययन पर शोध कार्य किया है। वर्तमान समय में देश की बैकिंग प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था और देश के आर्थिक विकास का मूल आधार हैं। देश के वित्तीय क्षेत्र का 70 प्रतिशत से अधिक धनराशि के लेन–देन के लिये वित्तीय क्षेत्र को प्रमुख आधार माना जाता हैं। वर्तमान में बैंको के माध्यम से अपने सभी ग्राहकों को इन्टरनेट बैंकिंग, मोबाईल बैकिंग व अन्य सेवाओं के माध्यम से मोबाईल के द्वारा घर बैठे सेवाएँ व उनके खातों के सम्बन्ध में जानकारियॉ उपलब्ध कराई जा रही हैं। तकनीक के माध्यम से बैंक अपने ग्राहकों को अनेक सुविधाएँ ही नही दे रहे, अपितु वे अपनी परिचालन क्षमता का भी विस्तार कर रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी आज की आवश्यकता हैं जिसके बिना बैकिंग व्यवहार अधूरे हैं।

मुख्य शब्द :– बैकिंग प्रणाली, इन्टरनेट बैकिंग, मोबाईल बैकिंग परिचालन क्षमता, सूचना प्रौद्योगिकी।

प्रस्तावना :

आज के वैश्विक युग में सूचना प्रौद्योगिकी प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति ला रही है, विशेषतः बैंकिंग क्षेत्र में। बैंकिंग प्रणाली, जो कभी केवल खाता खोलने, लेन–देन और पासबुक तक सीमित थी, अब डिजिटल युग में पूरी तरह से सूचना आधारित, तकनीकी रूप से सशक्त और ग्राहक केंद्रित हो गई है।

भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं। भाषा के द्वारा ही कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने भाव अभिव्यक्त करता है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक कारणों से अलग–अलग मानव समूहों का आपस में सम्पर्क हो जाता हैं। पिछले कुछ समय में सूचना और सम्पर्क के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ हैं। बुद्धि एवम् भाषा के मिलाप से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे आर्थिक सम्पन्नता की ओर भारत लगातार अग्रसर होता जा रहा हैं। भारत में सूचना प्रोद्योगिकी का तेजी से विकास हो रहा हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयोगों का अनुसंधान करके विकास की गति को बढ़ाया जा रहा हैं। बैंक किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा होती है। अर्थव्यवस्था में सन्तुलन और विकास के लिए बैंकों की कार्यप्रणाली सुव्यवस्थित होनी आवश्यक है। विशेष रूप से उदारीकरण और वैश्वीकरण के सन्दर्भ में यह और भी आवश्यक है। बैंकिंग परिदृश्य बहुत तीव्र

गति से परिवर्तित हो रहा है। सम्पूर्ण विश्व में लगभग सभी देशों में बैंक बदलते वातावरण के अनुसार अपनी कार्य प्रणाली, अपने स्वरूप एवं अपने उत्पादों को परिवर्तित करने के लिए अग्रसर है। भारत में बैंकों ने अपने स्वरूप को वाणिज्य बैंक के साथ–साथ विकास बैंक के रूप में भी विकसित करने का प्रयास किया है ताकि बैंक देश के न केवल आर्थिक विकास में अपितु सामाजिक कल्याण एवं विकास में भी अपना सहयोग कर सकें। बैंकों के राष्ट्रीयकरण ने एवं नवीन आर्थिक–सामाजिक चुनौतियों ने विकास बैंकिंग की अवधारणा को जन्म दिया है।

झालावाड़ जिला, जो राजस्थान राज्य का एक प्रमुख जिला है, कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अग्रणी है। यहाँ की बैंकिंग व्यवस्था में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग कई वर्षों से हो रहा है, लेकिन इसके प्रभाव, चुनौतियाँ, जागरूकता और ग्राहक संतुष्टि का मूल्यांकन आवश्यक है। वर्तमान समय में बैकिंग क्षेत्र में ई–बैकिंग के माध्यम से ही बैंकों के सभी कार्य सम्पूर्ण हो रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का झालावाड़ जिले के शासकीय बैकिंग क्षेत्र में अति–महत्वपूर्ण स्थान हैं। इसी उद्देश्य को लेकर यह शोध ''झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी–एक अध्ययन'' किया गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ :

आधुनिक प्रौद्योगिकी के संदर्भ में सूचना तकनीकी और सूचना एवं संप्रेषण प्रोद्योगिकी का प्रयोग समानार्थी के रूप में किया जाता है। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी (आई.सी.टी.) वृहद् पद है जो सूचना तकनीकी और संप्रेशण तकनीकी को सम्मिलित करता है। इसमें रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलीकान्फ्रेंसिंग, आदि को रखते हैं। इन तकनीकियों को दो वर्गों में रखते हैं– उपग्रह (सैटेलाइट) आधारित संचार, भू–आधारित संचार। उपग्रह (सैटेलाइट) आधारित संचार में किसी संचार उपग्रह के माध्यम से संदेश भेजने वाले और प्राप्त करने वाले के बीच संवाद होता है। भू–आधारित संचार, किसी भौगोलिक क्षेत्र जैसे– देश या राज्य में फैले ट्रांसमीटर के जाल द्वारा संप्रेषण का माध्यम है। भारत में बैंकिग क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए सूचना एवं प्रोद्योगिक तकनीकी का प्रयोग करते हैं।

यूनेस्कों के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी की परिभाषा :– सूचना प्रोद्योगिकी, ''वैज्ञानिक, प्रोद्योगिकीय और इंजीनियरिंग विषय हैं और सूचना की प्रोसेसिंग, उनके अनुपयोगो की प्रबन्ध तकनीके हैं। कम्प्यूटर और उनकी मानव तथा मशीन के साथ अंतः क्रिया एवम् सम्बद्ध सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषय हैं।''

बैंक और प्रौद्योगिकी :

21वीं शताब्दी में जहॉ एक और हर क्षेत्र में तकनीकी का दिन प्रतिदिन प्रयोग बढ़ा है, क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा अब हर कार्य सरल हो चुका हैं। बैकिंग क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा है। नई तकनीकों ने बैकिंग में जो बदलाव किए हैं। इन्होने अधिकारियों/कर्मचारियों व बैकिंग ग्राहकों को प्रभावित किया हैं। प्रौद्योगिकी के कारण ही बैकिंग उत्पादों और सेवाओं को पहले से अधिक आसानी से और प्रभावी ढ़ंग से समझा जा सकता हैं। अत्यधिक महत्वपूर्ण सूचनाओं का आसानी से वितरण से तथा उनकी आसानी से हर वर्ग तक पहुंच के कारण बैकिंग और आसान हो चुकी हैं। भारत में बैकिंग का विकास 250 साल पहले पारंपरिक शुरूआत के साथ ही होने लग गया था। आज बैकिंग की सुविधा नई तकनीकों के आने से बहुत ज्यादा बदल चुकी हैं। बैंको मे अब लम्बी–लम्बी कतारे नही लगती हैं। अब हर बैकिंग उपभोक्ता की जेब में मोबाईल के रूप में अपना – अपना बैंक हैं। नेट–बैकिंग के द्वारा वह घर बैठे रकम को ईधर–उधर कर सकता हैं। बैकिंग क्षेत्र में तकनीक

के प्रयोग से हर आदमी आत्मनिर्भर हो गया हैं।

बैंकों में रूपयें निकालने के लिये लगने वाली लम्बी–लम्बी कतारों से छुटकारा दिलाने के लिए 1987 में निजी क्षेत्र के बैंक एच.एस.बी.सी. ने मुम्बई में पहला ए.टी.एम. लगाया था। विश्व में सबसे पहला ए.टी.एम 1969 में अमेरिका में खोला गया था। भारत मे पहला ए.टी.एम. आई.सी.आई.सी.आई. बैंक ने तथा पहला क्रेडिट कार्ड सैन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया ने दिया। इसके साथ ही ए.टी.एम., इन्टरनेट बैकिंग और क्रेडिट कार्ड के जरिये लोगो तक बैकिंग की पहुंच आसान हो गई। इससे पैसे का लेन–देन अत्यधिक सरल हो गया। सूचना प्रौद्योगिकी के आने से बैकिंग अब पेपरलेस हो गई हैं। इंस्टीट्युट फॉर डेवलपमेंट एंड रिसर्च इन बैकिंग टेक्नोलोजी की रिपोर्ट ''टेक्नोलोजी इन बैकिंग'' नाम से जारी रिपोर्ट में यह बात साबित हो जाती हैं।

इन्टरनेट बैकिंग :– इन्टरनेट बैकिंग सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण अंग हैं। इसके लिए मोबाईल या कम्प्यूटर पर इन्टरनेट के माध्यम से लेन–देन व सूचना का आदान–प्रदान होता हैं।

मोबाईल बैकिंग :– आजकल बैकिंग के कई एप मौजूद हैं, जो मोबाईल के जरिए मोबाईल बैकिंग को बढ़ावा दे रहे हैं। इनके माध्यम से हर किसी की जेब में बैंक पहुॅच गया हैं।

टेलिफोन बैकिंग :– यह बैकिंग एक पुराना रूप हैं जो वर्तमान में कम प्रचलन में हैं।

एस.एम.एस. बैकिंग :– इसमें बैंक द्वारा स्कीम, नयी योजनाए, स्टेटमेन्ट, व अन्य सुविधाएॅ सीधे मोबाईल पर मैसेज के द्वारा भेज दी जाती हैं।

क्रेडिट कार्ड :– क्रेडिट कार्ड का उपयोग ऑनलाईन शॉपिंग और POS टर्मिनल पर कर सकते हैं। क्रेडिट कार्ड का उपयोग करने के लिऐ बैंक खाते में बैलेस होना चाहिए।

डेबिट कार्ड :– डेबिट कार्ड से ए.टी.एम. से पैसे निकालने के साथ ऑनलाईन शॉपिंग भी कर सकते हैं। यह भी बैंक अकाउंट से लिंक होता हैं।

ए.टी.एम. :– ए.टी.एम. कार्ड का उपयोग करने के लिये हमे ए.टी.एम. मशीन में कार्ड डालने के पश्चात् ए.टी.एम मशीन से पैसे निकालने के लिए एक चार अंको का पिन डालना पड़ता हैं, इसके लिये ए.टी.एम. कार्ड को बैंक खाते से लिंक किया जाता है। यह एक सर्वश्रेष्ठ टेक्नोलोजी हैं।

संबधित साहित्य का पुनरावलोकन :

वेथीराजन सी, रामू सी (2019) ''चेन्नई जिले में चुनिन्दा बैंकों के सामाजिक उत्तरदायित्व पर उपभोक्ताओं का ज्ञान'' पर अपने लेख से पता चलता है कि ग्राहकों को शासकीय बैंकों को कानूनी, नैतिक और आर्थिक जिम्मेदारी पर पर्याप्त ज्ञान है और यह सामाजिक, आर्थिक और जनसांख्यिकीय विशेषताओं द्वारा श्रेणीयों में ज्ञान विभिन्न अन्तर के कारण संगत नहीं है, यह वरीयता को भी प्रभावित कर सकता है। यह कि बैंक कें उपभोक्ताओं का ज्ञान है कि वे इस वजह से अधिक वरीयता देते हैं।

अरोडा (2020) ने अपने शोध पत्र में बैकिंग क्षेत्र में तकनीकी प्रयोग को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया बताया। उन्होने नये बैकिंग उत्पादों व सेवाओं में तकनीक के प्रभाव को बताया। बैंको को वैकल्पिक रूप सें लाभ उठाने के लिए उन्हे अपनी क्षमता का विकास करना चाहिए।

शोध के उद्देश्य :

झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका को जानना।

झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा लोगो को मिल रहे लाभों की व्याख्या करना।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया।

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श के रूप में 100 ग्राहक एवं 50 बैंक कर्मचारियों का चयन किया गया।

सांख्यिकीय विधि :

प्रस्तुत शोध में प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं प्रत्यक्ष अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण

तालिका 01

बैंक कर्मचारियों की प्रतिक्रियाएँ (N = 50)

क्र.	प्रश्न	हाँ (%)	नहीं (%)
01	सूचना प्रौद्योगिकी से कार्य कुशलता में वृद्वि	94%	06%
02	कर्मचारियों को आई.टी. प्रशिक्षण	62%	38%
03	डिजिटल बैंकिंग को लेकर ग्राहकों में जागरूकता	56%	44%
04	साइबर सुरक्षा	72%	28%

उपरोक्त तालिका 01 से स्पष्ट है कि झालावाड़ जिले के शासकीय बैंक कर्मचारियों से प्राप्त जानकारी एवं उनके द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं से यह ज्ञात होता है कि सूचना प्रौद्योगिकी से कार्य कुशलता में 94 प्रतिशत वृद्वि हुई है, 62 प्रतिशत कर्मचारियों को आई.टी. प्रशिक्षण दिया गया है, 56 प्रतिशत डिजिटल बैंकिंग को लेकर ग्राहकों में जागरूकता देखी गई एवं बैंकों द्वारा ग्राहकों को 72 प्रतिशत साइबर सुरक्षा प्रदान की जाती है।

तालिका 02

ग्राहकों (खाता धारकों) की प्रतिक्रियाएँ (N = 100)

क्र.	सेवायें	संतुष्टि का स्तर	
		हाँ (%)	नहीं (%)
01	एटीएम सेवा	96%	04%
02	इंटरनेट बैंकिंग	63%	37%
03	मोबाइल बैंकिंग	58%	42%
04	UPI & QR Code सेवा	72%	28%
05	ग्राहक सेवा (Helpdesk)	55%	45%

उपरोक्त तालिका 02 से स्पष्ट है कि झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकों के ग्राहकों (खाता धारकों) से प्राप्त जानकारियों से यह ज्ञात होता है कि 96 प्रतिशत ग्राहक एटीएम सेवा से संतुष्ट पाये गये, 63 प्रतिशत

ग्राहक इंटरनेट बैंकिंग से संतुष्ट पाये गये, 58 प्रतिशत ग्राहक मोबाइल बैंकिंग से संतुष्ट पाये गये, 72 प्रतिशत ग्राहक UPI & QR Code सेवा से संतुष्ट पाये गये और 55 प्रतिशत ग्राहक, ग्राहक सेवा (Helpdesk) से संतुष्ट पाये गये।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकों में सूचना प्रौद्योगिकी ने सेवाओं की गुणवत्ता, पारदर्शिता और गति को बेहतर बनाया है। झालावाड़ जिले के शासकीय बैंक कर्मचारियों को सूचना प्रौद्योगिकी का प्रशिक्षण मिला है, लेकिन अपडेटेड ट्रेनिंग की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी डिजिटल बैंकिंग के प्रति भ्रम और डर की स्थिति है। युवा वर्ग UPI, नेट बैंकिंग आदि तकनीकों को तेजी से अपना रहा है। साइबर सुरक्षा से जुड़े खतरों के प्रति कर्मचारियों और ग्राहकों दोनों को जागरूक करना आवश्यक है। डिजिटल लेन–देन में वृद्धि, तकनीकी संसाधनों की स्थापना, तथा ग्राहक संतुष्टि के स्तर में वृद्धि इस ओर संकेत करते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव सकारात्मक है। फिर भी, कुछ चुनौतियाँ जैसे साइबर सुरक्षा, डिजिटल साक्षरता की कमी, एवं तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता निरंतर बनी हुई है। इसलिए, यह आवश्यक है कि सरकार, बैंक प्रबंधन, एवं समाज मिलकर सूचना प्रौद्योगिकी को अधिक प्रभावी, सर्वसुलभ और सुरक्षित बनाएं और झालावाड़ जिले के शासकीय बैंकिंग क्षेत्र में भी भविष्य में सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से बैंकिंग क्षेत्र में नए प्रयोग होगें। भविष्य में भी सूचना प्रौद्योगिकी आवश्यकता बनी रहेगी।

सुझाव :

- प्रत्येक शाखा में आई.टी. हेल्प डेस्क की स्थापना की जाए।
- ग्राहकों के लिए डिजिटल साक्षरता शिविर आयोजित किए जाएं।
- कर्मचारियों को हर 6 महीने में आई.टी. आधारित प्रशिक्षण दिया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में माइक्रो एटीएम और मोबाइल वैन द्वारा बैंकिंग सुविधाएं पहुँचाई जाएं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- Bank Quest
  www.wikipedia.in
  www.informationtechnologyinindia.com
- Hassan, G. (1998) Information Tech in the Banking Sector: Opportunities, Threats and Strategies. Graduate School of Business and Management, American University of Beirut, Beirut.
- Margaret Rouse (2005) ICT (Information and Communications Technology).
- http://searchcio.techtarget.com/definition/ICT-information-and-communications-technology-or-technologies
- RBI Report
- डॉ. सतीश तानाजी भौसले, डॉ. बी.एस. सावन्त "Technological Developments in Indian Banking Sector"

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 184-187

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झालावाड़ जिले की ग्रामीण महिलाओं पर शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. इनाम इलाही, पर्यवेक्षक
रविन्द्र कुमार रेगर, शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में झालावाड़ जिले की ग्रामीण महिलाओं पर शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन पर शोध कार्य किया है। एक नारी को शिक्षित करने का अर्थ एक परिवार को शिक्षित करना है। वर्तमान युग को वैचारिकता का युग कहा जा सकता है। अगर स्त्रियां माता अथवा गृहिणी के संस्कार, शिक्षा–दीक्षा आदि उत्तम नहीं होगी तो यह समाज और राष्ट्र को श्रेष्ठ सदस्य कैसे दे सकती है? समाज के लिए स्त्री का स्वस्थ, खुशहाल, शिक्षित, समझदार, व्यवहार कुशल, बुद्धिमान होना जरूरी है और यह सब शिक्षा से ही सम्भव हो सकता है। जब स्त्री की स्वयं की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि दृष्टिकोणों से उन्नत होगी तो वह परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे पायेंगी क्योंकि एकता स्त्रियाँ स्वयं राष्ट्र की आधी से कम जनसंख्या है तथा दूसरा बच्चे, युवा प्रौढ़ और वृद्धजन उन पर अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं। महिलाओं की बढ़ती शिक्षा और वैश्वीकरण का प्रभाव का अध्ययन करने पर पता चलता है महिलायें जितनी आंकड़ो में शिक्षित हुई है। दूसरी तरफ समाज उनके विकास में मानसिक रूप से समायोजन के लिए तैयार नही दिख रहा है। वही दूसरी और महिलाओं में शिक्षित होने के पश्चात् शिक्षा के उपयोग का संकट दिखायी देता है। महिलाओं के सर्वागीण विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है जो महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने में सकारात्मक योगदान देती है।

मुख्य शब्द :– ग्रामीण महिलायें, शिक्षा और वैश्वीकरण।

प्रस्तावना :

ग्रामीण विकास में महिलाओं का योगदान अमूल्य है महिलाएँ किसी भी समाज और परिवार की आधारशिला होती है जिन पर समाज की उन्नति की पूरी जिम्मेदारी होती है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि ''जब तक भारत की महिलाएँ सार्वजनिक जीवन में हिस्सा नहीं लेंगी, देश उन्नति नहीं कर सकता।'' राष्ट्रपिता का कथन बिल्कुल सत्य है। देश की आधी आबादी यदि अशिक्षा, गरीबी, शोषण और निष्क्रियता में जब तक रहेगी कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है।

शिक्षा ऐसा हथियार है, जो हर स्त्री को समाज में जीवन जीने का ढंग सिखाता है, जो समाज पहले औरतों का अपने सामने बैठने भी नहीं दिया करता था, आज वहीं समाज स्त्री को पहले अपनी बात रखने का हक देता है। महिलायें इस कदर जागरूक हुई हैं, कि उन्हें यह पता है कि वह अपने बच्चों का भी भविष्य किस तरह बेहतर कर सकती है। समय कितना ही पीछे क्यों न हो, या कितने ही आगे क्यों न निकल जायें, जब तक स्त्री अपने प्रति जागरूक नहीं हो पाती तब तक वह किसी का भी भला नहीं कर सकती। कोई भी महिला समाज का भी भला तभी कर सकती है, जब उसमें आत्मज्ञान या आत्मविश्वास जागता है। रूढ़िवादी सोच को पीछे छोड़ जब वह जीवन जीने का तरीका सीख लेती है, तो कोई भला कौन उसे पीछे कर सकता है। आज महिला अकेली ही नहीं है, जो अपना भला कर रही है, या सोच रही है, उसके पीछे समाज के कई लोगों का योगदान भी है, उसे आगे बढ़ाने में। समाज के सहयोग व योगदान से ही आज यह सब सम्भव हुआ है। आज के दौर में मायका पक्ष तो बेटी के साथ रहता ही है, परन्तु ससुराल पक्ष वाले भी अपनी बहुओं का साथ देते हैं, उनकी शिक्षा में, उनकी तरक्की के दौर में, उनके हर फैसले में, उनका साथ हमेशा रहता है। यदि किसी लड़की की पढ़ाई पूरी होने से पूर्व ही शादी हो जाती है, तो उसके ससुराल वाले उसकी पढ़ाई पूर्ण करवाने में उसका सहयोग देते हैं पर यह बात भी तभी लागू होती है, जब स्वयं वह लड़की पढ़ने की इच्छा जाहिर करें। यह भी लड़कियों के आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता के प्रति जागरूकता को दर्शाता है।

भारतीय समाज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। वैश्विक बदलाव देश में दिखाई पड़ने लगे है। स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही पश्चिमीकरण की प्रक्रिया और तेज हो गयी है और परिवर्तन हो रहे है। नयी प्रौद्योगिकी और नये आविष्कारों ने परिवर्तन को और बढ़ाया है। भारत में बढ़ता हुआ औद्योगीकरण लोगों के जीवनशैली में परिवर्तन लाया है और भारत की सामाजिक व्यवस्था भी कुछ हद तक परिवर्तित हुई है। भारत में होने वाले आधुनिक परिवर्तन ने स्त्री जगत को भी प्रभावित किया है। समाज में महिलाओं की भूमिका अब बदलने लगी है। अतः भारतीय समाज में ग्रामीण महिलाओं पर शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन आज के परिवेश में एक अध्ययन की आवश्यकता हो गयी है।

शोध के उद्देश्य :

– झालावाड़ जिले ग्रामीण महिलाओं पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन।

– झालावाड़ जिले ग्रामीण महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन।

संबधित साहित्य का पुनरावलोकन :

डॉ0 श्यामाचरण दूबे (2014) ने महिलाओं के सामाजिक स्थिति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''महिलाओं की परम्परागत विचारधाराएँ बदल रही है। अब लोग अनुभव कर रहे हैं कि उनके सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होना चाहिए। शिक्षा के अवसर बढती हुई औद्योगिक व्यावसायिक गतिशीलता, उभरती हुयी सामाजिक व्यवस्था महिलाओं की स्थिति में क्रमिक परिवर्तन ला रही है।

पी. बारबल (2014) ने अपनी कृति सोशल स्टडी फिकेशन में लिखा है कि व्यावसायिक भूमिकाएँ प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से समाज में अधिक महत्वपूर्ण होती है और व्यक्ति के सामाजिक मूल्यांकन का आधार होता है। महिलाओं के लिए व्यवसाय का बड़ा होना और समाज के मुख्य धाराओं में उनकी मुख्य भूमिका होना ही उनके सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाना है।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध–पत्र के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इसमें द्वितीयक आकडों का उपयोग किया गया हैं।

संमकों का संग्रहण :

शोधपत्रों, पत्र–पत्रिकाओं एवम् प्रकाशनों के आधार पर किया गया हैं।

शिक्षा :

यह सार्वभौम स्वीकार्य तथ्य है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा और विकास के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। महिलाओं को शिक्षा और अधिकार दिये बिना कोई समाज खुशहाल नहीं हो सकता। व्यक्ति, परिवार, समुदाय और राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास में महिलाओं की शिक्षा एवं साक्षरता का महतव सभी जगह स्वीकार किया गया है। पिछले एक दशक में एक बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि महिलाओं के लिए समानता हासिल करने के लिये जारी संघर्ष के केन्द्र में महिलाओं की शिक्षा को मान्यता प्रदान की गयी। सन् 2000 तक सबको साक्षर बनाने अर्थात सार्वभौमिक साक्षरता का लक्ष्य हासिल करने का नारा दिया गया है। आजादी के बाद भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में जो तरक्की की है, वह अभूतपूर्व है। भारत के इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति अपनायी है। उसमें इन वर्गो खासकर महिलाओं को समान अवसर देने पर बल दिया गया है, जिन्हें अभी तक समानता नहीं मिल पायी थी।

शिक्षा सम्बन्धी कार्य योजना (1992) में महिलाओं को समानता भागीदारी, और आधिकार देने का सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी और इसमें शिक्षा के विभिन्न स्वरों से सम्बद्ध लगभग सभी क्षेत्रों और पहलुओं को शामिल किया गया। शिक्षा से कोई भी महिला अधिक जागरूक, अधिक श्रेष्ठ और अधिक आत्म विश्वासी बन सकती है, इससे परिवार और समुदाय में उसका महतव बढ़ जाता है।

1981 से 1991 के दशक में पुरूष साक्षरता की बजाए महिला साक्षरता की दर अधिक तेजी से बढी है। 60 प्रतिशत से अधिक महिलाएं अभी निरक्षर है। महिला साक्षरता में ग्रामीण–शहरी का अत्तराल बढ़ा है। अगर साक्षरता के आंकडों पर नजर डालें तो पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 80 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं और केवल 2 प्रतिशत ऐसी हैं जो मैट्रिक से अधिक पढ़ी हैं। ग्रामीण लड़कियां देर से स्कूल शिक्षा प्रारम्भ करती हैं और बीच में ही छोड़ देती हैं यह बड़ी महतवपूर्ण बात है कि भारत के सर्वाधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और बिहार सर्वाधिक पिछड़े राज्यों के वर्ग में आते हैं।

वर्तमान में झालावाड़ जिले की ग्रामीण महिला शिक्षा का भी एक अच्छा प्रतिशत सामने आया है। परिवार के सदस्यों का सामाजिक स्तर उन्नत करने में स्त्री शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है, अनुसंधान अध्ययनों से पता चलता है कि महिलाएँ चाहे वह शहरी हो अथवा ग्रामीण उनकी शिक्षा का समूचे परिवार के सामाजिक स्तर के सुधार पर रचनात्मक असर पड़ता है। ग्रामीण महिलाओं के विषय में यू तो कई सर्वे रिसर्च किये गये हैं, परन्तु शिक्षा झालावाड़ जिले की ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक आर्थिक जीवन के विभिन्न आयामों पर किस प्रकार प्रभाव डालती है, प्रस्तुत लेख में इसका अध्ययन किया गया है।

वैश्वीकरण :

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के विस्तार से समाज में संस्थागत एवं संरचनात्मक विकास को बढ़ावा मिला है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत न सिर्फ द्रुत गति से औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की बात की जाती हैं, बल्कि समस्त समाज के कायाकल्प की बात भी इसमें शामिल है। यह महसूस किया गया है कि वैश्वीकरण के ढ़ाँचे के अंतर्गत समाज के उस वर्ग को अधिक फायदा हुआ है, जो अधिक योग्य, शिक्षित तथा सक्षम था। इससे समाज के वंचित, शोषित एवं हाशिये पर रहे लोगों को फायदा नहीं हुआ, किंतु नुकसान अवश्य हुआ है। वैश्वीकरण के दौर में महिलाओं की मुश्किलें बढ़ी है। बढ़ते मशीनीकरण से नौकरियों में असुरक्षा, कम वेतन, परंपरागत हुनर की अनदेखी, विदेशी कंपनियों की मनमानी शर्तें और उनके समक्ष कानून की असमर्थता आदि परिस्थितियाँ औरतों को न्याय दिलाने में असफल रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अंतर्गत महिलाओं का वस्तुकरण हो गया है। बड़ी कंपनियाँ अपनी सेवाओं तथा वस्तुओं को बेचने के लिये महिलाओं की योग्यता, क्षमता तथा व्यक्तित्व का प्रयोग करती हैं। वैश्वीकरण के इस युग में महिलाओं के वस्तुकरण एवं व्यावसायीकरण को भारतीय समाज पर पड़े इसके नकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के कारण विकसित देशों में महिलाएँ निर्धनता एवं भेदभाव का शिकार हो रही हैं। एक ही तरह के काम में पुरुष तथा महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। आज महिलाओं के श्रम को उत्पादन से सीधे नहीं जोड़ा जाता इसी कारण पुरूष विशिष्ट हो गए और महिलाएँ महत्त्वहीन रह गई। महिलाएँ ज्यादातर असंगठित संस्थाओं में काम करती हैं और नियमहीनता के चलते वे शोषण का शिकार हो जाती हैं। आज भी महिला श्रमिकों को कम मज़दूरी के साथ वांछित अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। उपभोक्तावाद, हिंसा तथा स्वच्छंद यौन व्यवहार आदि का समाज व महिलाओं पर घातक प्रभाव पड़ा है। वैश्वीकरण जहाँ विकासशील देशों के विकास को सुनिश्चित करता है, वहीं यह समाज की आर्थिक रूप से गरीब महिलाओं को अधिक उत्पीड़ित करने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष :

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सबसे बड़ा हथियार है। इसके माध्यम से ही महिलाओं का आर्थिक, सामाजिक सशक्तिकरण सम्भव है, महिला आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। परिवार एवं समाज की प्रगति का एक बहुत बड़ा आधार महिलाएं ही है। मलिाओं के शिक्षित होने पर ही एक प्रगतिशील समाज का, देश का निर्माण संभव है। ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा के विषय में पूर्व में भी कई अध्ययन कार्य हुए हैं, ग्रामीण महिलाओं में विशेषकर युवतियों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की लगन स्पष्टतः दिखायी देती है, परंतु फिर भी समय–समय पर देखने को मिलता है कि भले ही ग्रामीण महिलाएं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हो, लेकिन समाज के नियमों का दबाव निरन्तर इन पर बना रहता है, तथा उच्च शिक्षा हासिल कर लेने के बाद भी उन पर समाज के नियमों का परमपरागत रूप से पालन करना अनिवार्य समझा जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डा0 अम्बेडकर, बी0आर0 (1936) – एनहिलेशन ऑफ कास्ट, नई दिल्ली।
2. आहूजा राम (2005) – भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. सिंह जे.पी. (2011) – समाजशास्त्र – अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पी0एच0एल0. लर्निंग प्रा0लि0, नई दिल्ली।
4. वर्मा सवालिया बिहारी (2011) – ग्रामीण महिलाओं की स्थिति, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. देसाई नीरा (1997) वूमेन इन मॉडन इण्डियन, वोरा एण्ड कम्पनी, बाम्बे।
6. एम. कृष्ण राज (1987) वूमेन एण्ड सोसायटी एन इण्डिया, अजन्ता बुक इंटरनेशनल दिल्ली।
7. देवीराम इन्दिरा वूमेन एजूकेशन इम्पलाइमेंट : फैमिली लिविंग, ज्ञान पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 188-194

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

रिंकू कुमारी, शोधार्थी,
डॉ० जयप्रकाश सिंह, सह आचार्य
नेताजी सुभाष विश्वविद्यालय जमशेदपुर।

सार :–

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के उनके नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना है। माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान कैसे आत्मविश्वास को प्रभावित करती है, यह जानने के लिए प्रस्तुत शोध कार्य को झारखंड राज्य के अंतर्गत के पूर्वी सिंहभूम जिला में संचालित माध्यमिक विद्यालय के कक्षा 9 के 608 विद्यार्थियों पर संपन्न किया गया है। इस अध्ययन में न्यायदर्श हेतु झारखंड राज्य के अंतर्गत पूर्वी सिंह जिले के झारखंड माध्यमिक बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालय में अध्यनरत कक्षा 9 के विद्यार्थियों को यादृच्छिक विधि से चुना गया है। तथा आत्मविश्वास आंकड़ों के संकलन के लिए "डॉ मधु गुप्ता और श्रीमती बिंदिया लखानी" तथा नियंत्रण अवस्थान मापन के लिए "डॉ० माधुरी हुड्डा" और "डॉ० रजनी दहिया" के द्वारा निर्मित मापनी का उपयोग किया गया है। निष्कर्ष के रूप में कि नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास में सार्थक सहसंबंध पाया गया।

मुख्य बिंदु :– नियंत्रण अवस्थान, आत्मविश्वास, माध्यमिक स्तर।

प्रस्तावना :–

शिक्षा किसी भी व्यक्ति के जीवन में निरंतर चलने वाली वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में निहित क्षमताओं का उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में किया जाता है शिक्षा के द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल तथा व्यवहारों में परिवर्तन किया जाता है। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है, सोचना मनुष्य का विशिष्ट गुण है, शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपना सोच को परिष्कृत कर अपने को पशुओं से भिन्न बनता है। शिक्षा द्वारा किसी मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा का उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है इसके आधार पर ही ज्ञानी और अज्ञानी के बीच विचारों का लेन–देन होता है। आधुनिक काल में शिक्षा का अर्थ लेन–देन नहीं, बल्कि किसी बालक का चहूँमुखी विकास कर उसकी निहित क्षमताओं का विकास करना है। सर्वांगीण विकास से तात्पर्य है, व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, नैतिक सामाजिक, आध्यात्मिक विकास जो निरंतर बिना किसी रूकावट के होते रहे।

"गांधी जी" के अनुसार– "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक में निहित शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक श्रेष्ठ शक्तियों का सर्वांगीण विकास है।"

शिक्षा मानवीय संपदा को विकसित करती है, और मानव जीवन के हर क्षेत्र में विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा के द्वारा हम नई विचारधाराओं का विकास करते हैं। यह हमारे सोच विचार और ज्ञान की दृष्टि को और विस्तृत बनती है, और के जीवन में आने वाली हर समस्या का समाधान करती है।

शिक्षा के प्रक्रिया में विद्यार्थी विद्यालय और शिक्षक यह तीन आधारभूत तत्व है। माध्यमिक स्तर की शिक्षा शैक्षिक दृष्टि से बहुत महत्व है। माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था एक कड़ी की काम करती है, जो प्राथमिक और उच्च शिक्षा को जोड़ती है। कक्षा 9 से 12 तक को माध्यमिक स्तर कहा जाता है। शैक्षिक संरचना में माध्यमिक स्तर, पर पढने वाले छात्र ना तो छोटे होते हैं, ना ही प्रौढ़। इस समय छात्र किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं। किशोरावस्था में विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, भावात्मक सामाजिक और नैतिक अवस्था में परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं। इस समय विद्यार्थियों के मानसिक विकास तेजी से होता है जिससे वह अलग–अलग क्षेत्र में अभिरूची दिखाना और उसी प्रकार अपनी लक्ष्य को निर्धारण करने लगता है। इस समय बालक के व्यक्तित्व को सही दिशा में विकसित करने में विद्यालय, शिक्षक और माता–पिता का का प्रमुखता से स्थान रहता है।

बालक के विकास मे व्यक्तित्व का विकास एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, लेकिन व्यक्तित्व का संतुलित विकास तभी संभव है जब इस बात की जानकारी हो कि व्यक्तित्व कैसे विकसित होता है। इसके विकास के कौन–कौन से कारक हैं। यह कितने प्रकार का होता है, तथा इसकी मापन कैसे किया जाता है, कोई भी बालक किसी विशेष घटना के प्रति अलग–अलग सोचने का नजरिया रखता है किसी भी घटना को कोई भी बालक स्वयं जिम्मेदारी लेता है तो कोई और दूसरा कोई दोषारोपण करता है। अर्थात् एक ही घटना विशेष के लिए दो बालकों का अलग–अलग नजरिया होना ही नियंत्रण अवस्थान कहलाता है। बालक क्या करेगा, कैसे करेगा, उनका, आत्मविश्वास और नियंत्रण अवस्थान द्वारा ही तय हो पाता है। आत्मविश्वास का अर्थ है– 'स्वयं पर विश्वास' अपनी क्षमताओं निर्णय और योग्यताओं पर भरोसा रखना। यह एक मनोवैज्ञानिक गुण है, यह वह शक्ति है जो विद्यार्थी को अपने लक्ष्य के प्रति के लिए प्रेरित करती है चाहे परिस्थितियों कैसी भी हो यह गुण विद्यार्थी के कठिनाइयों में भी लक्ष्य निर्धारण करने और सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। यह विद्यार्थियों को यह अनुभव करती है कि मैं 'कर सकता हूं' जबकि नियंत्रण अवस्थान सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है। दोनों गुण विद्यार्थियों के आत्म अवधारणा और व्यावहारिक नियंत्रण को प्रभावित करता हैं आत्मविश्वास विद्यार्थियों को अपनी क्षमता योग्यता निर्णय पर विश्वास करने की भावना है तो नियंत्रण अवस्थान सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है दोनों के बीच घनिष्ठ मनोवैज्ञानिक संबंध है।

किसी भी छात्र के लिए यह एक अर्जित अभिप्रेरणा है, जो उनके जीवन कौशल और शैक्षिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

आत्मविश्वास को सुदृढ़ करने में नियंत्रण अवस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नियंत्रण अवस्थान सिद्धांत को 1950 के दशक में "जूलियन बी. रोटर" के द्वारा विकसित किया गया था। यह सिद्धांत यह बताता है कि व्यक्ति का उनके जीवन में नियंत्रण करने वाले कारकों प्रभाव पर कितना नियंत्रण है। यह एक मनोवैज्ञानिक

अवधारणा है। जो यह दर्शाती है, कि विद्यार्थी अपने जीवन को प्रभावित करने वाली स्थितियों, कारकों और अनुभव पर कितना नियंत्रण रख सकते हैं। तथा सफलता और विफलताओं को कारण को कैसे समझते हैं।

इसका स्कूल में शैक्षणिक प्रेरणा, दृढ़ता और उपलब्धि पर एक शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। नियंत्रण अवस्थान किसी भी विद्यार्थी के आत्म विकास, जवाबदेही, आत्म–नियंत्रण, अध्ययन आदत को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक सफलता में नियंत्रण अवस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका है। नियंत्रण अवस्थान दो तरह का होता है।

आंतरिक नियंत्रण अवस्थान :–

ऐसे छात्र हमेशा अपने कर्म और अपने ऊपर विश्वास करते हैं। सफलता और असफलता का श्रेय खुद को देते हैं ना की कोई बाहरी शक्ति को और ऐसे छात्र अपने मजबूत इच्छा शक्ति द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

बाह्य नियंत्रण अवस्थान :–

ऐसे छात्र मानते हैं कि जीवन की घटनाएं उनके नियंत्रण में नहीं है। ऐसे छात्र हमेशा अपने भाग्य पर भरोसा करते हैं और सोचते हैं, कि जो भी हो रहा है, सब भगवान के भरोसे भी हो रहा है।

किसी भी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का मुख्य गुण नियंत्रण अवस्थान तथा उनके आत्मविश्वास का एक–दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है। नियंत्रण अवस्थान किस प्रकार से विद्यार्थी को प्रभावित करता है और विद्यार्थी के आत्मविश्वास से कैसे संबंधित है। इसके लिए शोधकर्ता के द्वारा इन चरों का अपने शोध समस्या के रूप में लिया गया है।

संबंधित शोध साहित्य का अध्ययन :–

वनेजा और गीत्था (2017) ने भारत के कोयंबटूर जिले के हाई स्कूल विद्यार्थियों पर एक शोध किया, जिसका शीर्षक था "अ स्टडी ऑफ लोकस ऑफ कंट्रोल एंड सेल्फ कॉन्फिडेंस ऑफ हाई स्कूल स्टूडेंट" इस अध्ययन में पाया गया कि जिन विद्यार्थियों में आंतरिक नियंत्रण अवस्थान (Internal Locus of Control) अधिक था, उनका आत्मविश्वास स्तर भी अधिक था। शोध में यह निष्कर्ष निकला कि नियंत्रण की आंतरिक भावना विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर, सकारात्मक और जिम्मेदार बनाती है।

कुमारी. बी. (2023) "हाई स्कूल विद्यार्थियों में नियंत्रण–अवस्थान, स्वचालित विचार, आत्म–सम्मान और शैक्षणिक चिंता" जिन विद्यार्थियों का नियंत्रण–अवस्थान बाह्य था, उनमें शैक्षणिक चिंता अधिक पाई गई, जबकि आंतरिक नियंत्रण–अवस्थान आत्मविश्वास को मजबूत बनाता है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता :–

इस शोध के अध्ययन के आधार पर पूर्वी सिंहभूम के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनके आत्मविश्वास पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त होगी, जिससे विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाने हेतु प्रयास किया जा सकेगा।

शोध समस्या कथन :–

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।

शोध उद्देश्य :-

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सह संबंध का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना :-

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान एवं आत्मविश्वास के मध्य अंतर सार्थक नहीं है।

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण शोध विधि की का प्रयोग किया गया है तथा शोध में न्यायदर्श हेतु झारखंड राज्य के अंतर्गत पूर्वी सिंहभूम जिलेके माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित माध्यमिक विद्यालयों में अध्यनरत कक्षा 9 के 610 विद्यार्थियों को लिया गया है।

इस शोध पत्र अध्ययन के लिए यादृच्छिक न्याय दर्शन विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य अध्ययन हेतु उपकरण के रूप में आत्मविश्वास आंकड़ों के संकलन के लिए "डॉ मधु गुप्ता और "श्रीमती बिंदिया लखानी" तथा मापनी का उपयोग किया गया है और नियंत्रण अवस्थान (Locus of Control) के मापन के लिए "डॉ० माधुरी हुड्डा" और "डॉ० रजनी दहिया" के द्वारा निर्मितमापनी का प्रयोग किया गया है।

शोध परिसीमन :-

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध कार्य को सीमित समय, श्रम एवं पूंजी को दृष्टिगत रखते हुए, झारखंड राज्य के अंतर्गत पूर्वी सिंहभूम जिला के माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित विद्यालय के कक्षा 9 के विद्यार्थियों तक परीसीमित किया गया है।

सांख्यिकी विधियां और विश्लेषण :-

सांख्यिकीय विधियां प्रस्तुत शोध कार्य में आंकड़ों के विशेषण के लिए काल पियर्सन (r) सह संबंध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का सांख्यिकी विश्लेषण एवं व्याख्या :-

नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध की व्याख्या

तालिका :-

pj	L[;k	सह lc/k(r)	p eku
fu;=.k voLFkku	608	0.2067	2.715e-7
vkRefo'okl	608		

(r (608) .206, p < - 001)

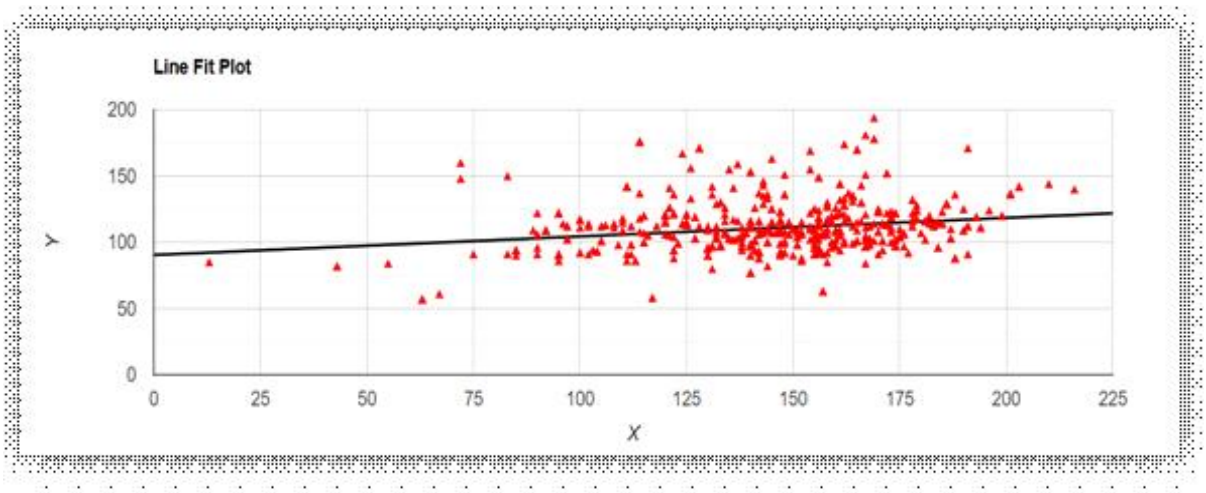

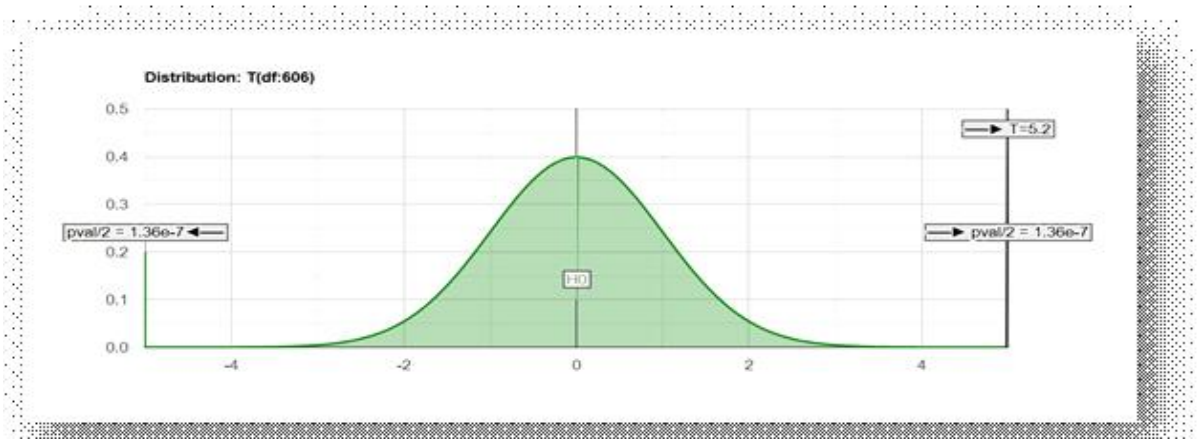

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास और नियंत्रण अवस्थान के मध्य गुणांक (r) द्वारा की गई परिगणित गुणांक का सहसंबंध 0.2067 प्राप्त हुआ। शोधार्थी ने विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान ज्ञात करने के लिए "डॉ० माधुरी हुड्डा" और "डॉ० रजनी दहिया" द्वारा निर्मित उपकरण का उपयोग किया तथा आत्मविश्वास के लिए डॉ. मधु गुप्ता और बिंदिया लखानी द्वारा निर्मित उपकरण का उपयोग किया जो कि सहसंबंध गुणांक (r) तालिका के अनुसार सकारात्मक सहसंबंध है। दोनों चरों के मध्य सह संबंध की सार्थकता की जांच करने पर पाया गया कि नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य 608 स्वतंत्रता के अंश के 0.5 सार्थकता स्तर पर सार्थक सह संबंध प्राप्त हुआ।

अतः इस आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सकारात्मक सहसंबंध है। अर्थात विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान बढ़ने पर उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा नियंत्रण अवस्थान घटने पर उनके आत्मविश्वास घटती है। प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सार्थक सहसंबंध पाया गया। अतः शून्य परिकल्पना "माध्यमिक विद्यालय की विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध नहीं होगा" अस्वीकृत होती है।

विवेचना :-

प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर पूर्वी सिंहभूम के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की आत्मविश्वास और

नियंत्रण अवस्थान में धनात्मक सहसंबंध पाया गया दोनों चरों में सहसंबंध यह हो सकता है कि पूर्वीसिंह जिला एक मिश्रित क्षेत्र है जिसमें शहरी क्षेत्र (जमशेदपुर, औद्योगिक नगर) ग्रामीण और आदिवासी, जनजातीय क्षेत्र है जहां पर सामाजिक आर्थिक विविधता, भाषाई विविधता, पारिवारिक पृष्ठभूमि सामाजिक आर्थिक परिवेश विद्यालय संसाधन लैंगिक मान्यताएं आदि मनोवैज्ञानिक रूप से विद्यार्थियों को प्रभावित करती है जिन विद्यार्थियों को उचित संसाधन सही पारिवारिक और शैक्षिक वातावरण अच्छा मिलता है उनका मनोबल उच्च होता है और नियंत्रण अवस्थान भी सुदृढ़ होता है जिससे आत्मविश्वास भी मजबूत बनता है। लेकिन जिन विद्यार्थियों को यह सब सुविधा नहीं मिलती उनका नियंत्रण अवस्थान मजबूत नहीं होता है और आत्मविश्वास भी कमजोर होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन से संबंधित शोध से संबंधित शोधकर्ता (2017) भट्टी असद और जिया (2022) ज्योति खजुरिया (2022) के शोध अध्ययन में भी विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास में अंतर पाया गया। इनका शोध परिणाम प्रस्तुत शोध के समर्थन करता है लेकिन शोधकर्ता डी. गीता (2017) विक्रांत बापू (2021) का अध्ययन इस शोध परिणामों का समर्थन नहीं करते क्योंकि इनके शोध में विद्यार्थियों का आत्मविश्वास नियंत्रण स्थान में सहहसंबंध नहीं पाए गया।

निष्कर्ष :–

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास का संबंध गुणांक 0.0206 पाया गया। अर्थात विद्यार्थियों की आंतरिक नियंत्रण अवस्थान उनकी उच्च आत्मविश्वास सकारात्मक सह संबंध रखता है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों के आंतरिक नियंत्रण अवस्थान उच्च होने से उनके अध्ययन आदत भी अच्छी बनती है।

शैक्षिक निहतार्थ :–

अभिभावक अपने बच्चों के उचित नियंत्रण अवस्थान और आत्मविश्वास के विकास हेतु उन्हें उचित सौहार्दपूर्ण सकारात्मक और स्वतंत्र पारिवारिक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है इसके साथ ही संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण के लिए नैतिक शिक्षा उचित मार्गदर्शन संतुलित आहार आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। जिससे उनके नियंत्रण स्थान मजबूत हो होने से आत्म विश्वास में स्वतः ही सुधार हो सकता है।

विद्यार्थियों की सीखने की आवश्यकता (Need to Learn) उत्पन्न की जानी चाहिए शिक्षक अपनी विशेष शिक्षण कौशल का उपयोग कर छात्रों को विषय या पाठ को सीखने की उत्पन्न कर सकते हैं। शिक्षक विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर क्षमता एवं पूर्व उपलब्धियां के आलोक में उचित विधि शिक्षण विधि अपना कर विकसित कर सकते हैं। छात्रों के कुंठा और तनाव का शिकार होने से बचाने के लिए भी पाठ विषय को मनोरंजन तथा छात्रों की अभिक्षमता एवं व्यक्तिगत अभिरुचि और मनोवृति के अनुकूल शिक्षण विधि अपनाकर शिक्षण का भरसक प्रयास करें। शिक्षक गण को विद्यार्थियों के अभिरुचि के अनुसार उनका पठन–पाठन और कार्यक्रम को व्यवस्था करना चाहिए। जो विद्यार्थी अनावश्यक कुठां तनाव के शिकार होकर शिक्षा में अभिरुचि खो देते हैं। ऐसे छात्रों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए शिक्षकों को विद्यार्थियों के साथ सुरक्षा की भावना, विश्वास, प्रतियोगिता की भावना और स्वतंत्र वातावरण भाव उत्पन्न करना चाहिए ताकि विषयों को सीखने में उनकी अभिरुचि उत्पन्न की जा सके। जिससे विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान सुदृढ़ होगा और और उच्च आत्मविश्वास का विकास हो सकेगा। विद्यार्थी अपने लिए एक ऐसा लक्ष्य निर्धारित करें जो उनकी उपलब्धि क्षमता के भीतर हो इस तरह के लक्ष्य निर्धारण से

विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर को प्रोत्साहन मिलता है। उनका आत्मविश्वास बढ़ता है अध्ययन के विभिन्न आदतों को अपनाकर एकाग्रता, अववोध अंतःक्रिया, अभ्यास एवं योजना आदि में सकारात्मक परिवर्तन करके अपने नियंत्रण अवस्थान को मजबूत बना सकते हैं। अंततः यह कहा जा सकता है कि आत्मविश्वास और नियंत्रण अवस्थान दोनों ही माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के समग्र विकास की आधारशिला हैं। जहाँ आत्मविश्वास सफलता की प्रेरणा देता है, वहीं नियंत्रण अवस्थान मानसिक स्थिति को स्थिरता प्रदान करता है। इन दोनों का संतुलन विद्यार्थियों को जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति की ओर अग्रसर करता है। शिक्षकों और अभिभावकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों में इन दोनों गुणों का विकास प्रोत्साहन, प्रशंसा, संवाद और सहयोग के माध्यम से करें।

संदर्भ :–

1. Jurnal of emerging technologies and innovative research (JETIR)
2. https:// jurnals.sage pub com.
3. https ://www. rearch gate.net
4. https ://www.egyankosh.ac.in
5. http://frontiersin.org/artical
6. https://shodhganga@INFBNET.ac.in
7. www.https://shodhsanchayan@gmail.com.
8. https://scholar.googl.come
9. https://academia.edu
10. इंटरनेशनल जनरल का मल्टीडिसीप्लिनरी रिसर्च (IJFMR)
11. इंडियन कौंसिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च https:// icssr.org.
12. इंटरनेशनल आफ एकेडमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट।
13. 7जी सर्वे ऑफ एज्युकेशनल 2022 रिसर्च एनसीईआरटी, नई दिल्ली, वॉल्यूम–1
14. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) की शोध पत्र एवं पत्रिकाएं।
15. कौर, निकहत (2017) "किशोर के अकेलेपन पर उपलब्धि प्रेरणा आत्मसम्मान और नियंत्रण अवस्थान का प्रभाव।"
16. कुमारी, बी. (2023)" हाई स्कूल विद्यार्थियों में नियंत्रण–अवस्थान, स्वचालित विचार, आत्म–सम्मान और शैक्षणिक चिंता।"

Contact :-

Rinku Kumari

PHONE NO :- 8986817666, EMAIL:-rinkushukla819@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 195-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

USE OF ICT IN PROMOTING THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM (IKS)

Dr Meeta Parikh

Assistant Professor, Department of Education, Mandsaur University.

Abstract :

The Indian Knowledge System (IKS) reflects the deep philosophical, scientific, and cultural traditions of India, encompassing disciplines such as philosophy, literature, medicine, mathematics, arts, architecture, and education. However, the transition to a globalized digital society poses both challenges and opportunities for preserving and transmitting this knowledge. Information and Communication Technology (ICT) offers innovative tools for revitalizing and disseminating IKS, ensuring that traditional wisdom meets contemporary educational and research needs. This paper explores how ICT enables digitization, online learning, multimedia integration, linguistic preservation, and international outreach of IKS. It also highlights strategies for embedding IKS within higher education institutions, aligning with the vision of the National Education Policy (NEP) 2020, which seeks to integrate cultural heritage with modern pedagogy.

Keywords : Indian Knowledge System (IKS), Information and Communication Technology (ICT), Digitization, NEP 2020, Heritage Preservation, Online Learning

1. Introduction :

India has long been recognized as a cradle of knowledge and civilization, where learning was not confined to classrooms but interwoven with life, community, and spirituality. The Indian Knowledge System (IKS) embodies centuries of intellectual evolution, representing holistic ways of knowing that connect science, ethics, and metaphysics. It includes classical disciplines such as Ayurveda, Yoga, Astronomy (Jyotish), Linguistics, Mathematics, Architecture (Vastu Shastra), and Philosophy, among others.

In the 21st century, the digital revolution has transformed how knowledge is created, shared, and consumed. ICT—through computers, internet networks, data analytics, and artificial intelligence—has become an indispensable medium for education and research. Leveraging ICT to preserve and

promote IKS ensures that this ancient wisdom does not fade into obscurity but evolves dynamically in dialogue with modern science and technology.

The National Education Policy (NEP) 2020 underscores this vision by emphasizing the inclusion of IKS in mainstream education and encouraging interdisciplinary research (Mandavkar, 2025). The policy calls for "rootedness in India" while maintaining "global outlook," reflecting a balanced synthesis between tradition and modernity.

Thus, the integration of ICT and IKS represents not only a technological advancement but also a cultural renaissance—reconnecting learners to India's intellectual roots while empowering them with digital competencies suited for a global knowledge economy.

2. Digitization and Preservation of Heritage :

Preservation of ancient manuscripts, artefacts, and oral traditions is the cornerstone of safeguarding India's knowledge legacy. ICT enables systematic digitization, archiving, and accessibility of traditional materials that were previously vulnerable to decay or loss.

2.1 Digital Libraries and Archives :

Initiatives such as the Bharatavani Portal and the National Digital Library of India (NDLI) exemplify how technology can conserve and democratize access to traditional knowledge. The Bharatavani project, launched by the Ministry of Education, provides digital content in over 120 Indian languages, including dictionaries, textbooks, and multimedia learning materials (Ministry of Human Resource Development, 2016). Similarly, NDLI serves as a centralized digital repository with millions of resources accessible to students, teachers, and researchers (Sutradhar, n.d.).

These platforms allow ancient texts like the Vedas , Upanishads , Arthashastra , and Ayurveda Samhitas to reach global audiences. Users can read, search, and cite ancient materials that were once limited to specialized archives. This digital democratization ensures both preservation and relevance.

2.2 3D Scanning and Virtual Exhibits :

Museums and cultural institutions increasingly use 3D scanning and virtual reality (VR) technologies to digitize artefacts. The National Digital Repository for Museums of India —a Ministry of Culture initiative—creates digital replicas of artefacts that can be studied virtually. This not only prevents deterioration but also enhances accessibility for global scholars and learners (Saxena et al., 2025).

2.3 AI-driven Text Recognition :

Modern artificial intelligence (AI) tools such as Optical Character Recognition (OCR) for Sanskrit and regional scripts make it possible to convert scanned manuscripts into searchable digital text (Choudhary et al., 2023). This accelerates research, linguistic comparison, and automated

translation. AI is also used to reconstruct fragmented manuscripts and predict missing text patterns. Collectively, digitization initiatives make IKS a living resource rather than a static heritage, blending traditional preservation with future-ready technology.

3. Online Learning and E-Courses :

ICT has revolutionized education by making knowledge accessible anytime and anywhere. For IKS, online learning platforms have become vital in reaching students beyond geographical and institutional boundaries.

3.1 MOOCs and Open Courses :

Platforms like SWAYAM and NPTEL now host courses on Indian philosophy, yoga, Ayurveda, Vedic mathematics, and ancient sciences. The SWAYAM course titled "Introduction to Indian Knowledge System" by IGNOU is designed for educators and learners to understand the interdisciplinary nature of IKS and its integration into the NEP 2020 framework ("Introduction to Indian Knowledge System," 2024).

3.2 Virtual Classrooms and Webinars :

ICT enables synchronous and asynchronous learning through live lectures, recorded sessions, and interactive webinars. Indian and international scholars can collaborate, discuss manuscripts, or demonstrate classical arts and sciences through platforms such as Google Meet, Zoom, and SWAYAM-Prabha.

3.3 Gamified and Interactive Learning :

Gamification—integrating learning with play—enhances student engagement, especially for younger audiences. Educational apps and quizzes on Sanskrit, Indian history, and traditional sciences encourage self-paced learning while making complex ideas enjoyable (Mandavkar, 2025). Such ICT-driven innovations humanize ancient content by translating it into modern learning styles.

4. Multimedia for Cultural Transmission :

Storytelling and performance have always been central to India's pedagogical tradition. ICT enhances this narrative approach through multimedia tools that merge sound, visuals, and interactivity.

4.1 Podcasts and Audiobooks :

Digital audio formats allow oral traditions to reach new audiences. Podcasts on epics like the Ramayana , Mahabharata , or Jataka Tales make cultural learning mobile and accessible. Audiobooks in regional languages help learners connect emotionally with India's oral storytelling heritage.

4.2 Documentaries and Animation :

Visual storytelling through documentaries and animated videos simplifies abstract philosophical or scientific concepts. For instance, animations explaining Ayurvedic healing or moral

tales from Panchatantra translate classical wisdom into contemporary visual formats ("Synergising Ancient Indian Wisdom," 2025).

4.3 Augmented and Virtual Reality (AR/VR) :

AR/VR allows immersive exploration of heritage sites such as Nalanda University , Ajanta-Ellora Caves , and Hampi . Learners can virtually "walk through" ancient universities, observe architectural principles, and visualize lost civilizations. These experiences not only transmit knowledge but evoke cultural pride and curiosity.

By merging art, history, and technology, multimedia ensures that IKS continues to inspire learners in experiential and emotionally resonant ways.

5. Research and Collaboration Tools :

ICT enhances not just teaching but also research and collaboration. The Indian Knowledge Systems Division under the Ministry of Education provides digital infrastructure for interdisciplinary research, documentation, and innovation (Ministry of Education).

5.1 Digital Research Repositories :

Researchers can upload theses, field data, and publications to open repositories like NDLI and Shodhganga. These archives facilitate transparent, peer-supported academic collaboration.

5.2 AI and Data Analytics in IKS Research :

AI enables pattern recognition in ancient astronomical charts, linguistic studies of Vedic hymns, and computational modelling of traditional healing systems (Saxena et al., 2025). Data analytics also helps trace knowledge diffusion patterns across Indian civilizations.

5.3 Crowd sourcing Knowledge :

ICT-driven platforms encourage citizen participation—scholars, artisans, and local experts contribute oral histories, translations, and ethnographic data (Choudhary et al., 2023). This inclusive model decentralizes knowledge creation, echoing India's traditional gurukula spirit of community-based learning.

6. Language Preservation and Promotion :

Language is the vessel of thought. Preserving India's linguistic heritage is therefore central to sustaining IKS.

6.1 Translation and Unicode Technology :

Software applications and translation tools help convert ancient texts into English and other global languages, widening readership. Unicode standards ensure accurate digital representation of Indian scripts (Devanagari, Tamil, Telugu, etc.) across all devices (Ministry of Human Resource Development, 2016).

6.2 E-Learning Platforms for Languages %

Apps and MOOCs now teach Sanskrit and regional languages through storytelling and gamified exercises. These digital approaches make learning inclusive, flexible, and aligned with youth preferences (Saxena et al., 2025).

6.3 Digital Archives for Linguistic Diversity :

Projects like Bharatavani and Bhashini document endangered languages, digitize dictionaries, and provide open-access repositories for linguistic research (Choudhary et al., 2023). Such tools also support NEP 2020's multilingualism policy.

Thus, ICT ensures that India's polyphonic linguistic culture remains vibrant and accessible in the global digital space.

7. Global Outreach and Cultural Exchange :

The fusion of ICT and IKS has globalized Indian wisdom, promoting cross-cultural understanding.

7.1 Social Media and Digital Campaigns :

Platforms like YouTube, Instagram, and Twitter are now powerful tools for sharing yoga tutorials, Ayurveda awareness, and Indian astronomy concepts ("Synergising Ancient Indian Wisdom," 2025). Influencers, educators, and cultural organizations use reels and short videos to make ancient ideas viral.

7.2 Blogs, Websites, and MOOCs :

Dedicated portals curate research papers, articles, and community forums on IKS. They act as bridges connecting traditional scholars and modern learners worldwide (Ministry of Education).

7.3 Virtual Conferences and International Collaborations :

ICT has enabled international symposiums and webinars that bring together experts from India and abroad to discuss traditional medicine, art forms, and philosophies. These global academic dialogues affirm IKS as a living and evolving knowledge system.

8. Integration and Implementation in Higher Education :

Integrating IKS into higher education is the next crucial step in ensuring that traditional knowledge informs future innovation. NEP 2020 explicitly calls for such inclusion.

8.1 Curriculum Integration :

Colleges can introduce foundation courses on IKS across disciplines, such as Philosophy of Indian Education, Environmental Ethics in Ancient Texts, Traditional Mathematics, or Indian Aesthetics. These can be integrated into liberal education or as electives in science and humanities programs (Mandavkar, 2025).

8.2 Teacher Preparation and Faculty Development :

Universities should organize workshops, MOOCs, and refresher courses through SWAYAM and the IKS Division to familiarize faculty with indigenous pedagogies and digital tools ("Introduction to Indian Knowledge System," 2024).

8.3 Digital Resource Centers :

Establishing IKS Digital Resource Hubs in colleges can provide access to digitized manuscripts, multimedia archives, and AI-assisted research tools. These centers can function as interdisciplinary labs linking tradition and technology.

8.4 Research and Innovation Projects :

Students can be encouraged to undertake research projects that reinterpret traditional knowledge in contemporary contexts—such as sustainable agriculture, herbal medicine, or ethical management practices derived from the Bhagavad Gita .

8.5 Community Engagement and Fieldwork :

Colleges can collaborate with local artisans, healers, and cultural practitioners to document living traditions. Using mobile documentation and digital storytelling, students can connect classroom learning with real-world knowledge.

8.6 Evaluation and Certification :

Digital assessment tools, including e-quizzes, reflective journals, and project portfolios, can be used to evaluate IKS courses. SWAYAM and the IKS Division may issue digital certificates, enhancing academic and employment recognition.

8.7 Challenges and Way Forward :

Despite growing interest, challenges remain—limited trained faculty, insufficient digital resources in regional languages, and lack of funding for translation or digitization. Collaboration between universities, ICT professionals, and government bodies can overcome these barriers. Public–private partnerships may accelerate the creation of multilingual IKS databases and interactive learning platforms.

9. Discussion :

The convergence of ICT and IKS represents a paradigm shift in education. Technology acts as an equalizer, bridging rural and urban learning divides and making indigenous wisdom accessible globally. However, successful integration demands contextual sensitivity—IKS must not be reduced to data but respected as a living cultural process.

Pedagogically, digital IKS integration promotes critical thinking, ethics, and interdisciplinary inquiry. When students study sustainability through Arthashastra or leadership through Bhagavad

Gita, they cultivate both technical and moral intelligence. ICT, therefore, becomes a medium for holistic education.

The NEP 2020 framework envisions universities as hubs of innovation rooted in cultural heritage. With digital infrastructure, India can create an educational ecosystem where technology does not replace tradition but amplifies it—making ancient wisdom relevant for future challenges.

10. Conclusion :

ICT has emerged as a powerful catalyst for the preservation and promotion of the Indian Knowledge System. Through digitization, online learning, multimedia storytelling, AI research, and global outreach, ancient wisdom finds renewed expression in the digital age. The integration of IKS into college education—supported by digital platforms, research networks, and teacher training—By merging traditional insights with technological tools, India can create an education model that is both globally competitive and deeply rooted in its civilizational ethos. This synthesis fulfills the NEP 2020 vision of nurturing learners who are not only skilled but also culturally grounded, ethically aware, and intellectually versatile.

References :

1. Choudhary, N., Premkumar, L. R., Singh, C., & Mondal, S. (2023). Bharatavani Project – Reviving Linguistic Diversity and Cultural Heritage in India: A Case Study. In Proceedings of the 2nd International Workshop on Digital Language Archives (LangArc 2023). ACM/IEEE.
2. Mandavkar, P. (2025). Indian Knowledge System (IKS) and National Education Policy (NEP-2020). Research Gate. [https://www.researchgate.net/publication/390478286_Indian_Knowledge_System_IKS_and_National_Education_Policy_NEP-2020] (https://www.researchgate.net/publication/390478286_Indian_Knowledge_System_IKS_and_National_Education_Policy_NEP-2020)
3. Ministry of Education, Government of India. (n.d.). Indian Knowledge Systems (IKS) Division. https://iksindia.org
4. Ministry of Human Resource Development, Government of India. (2016, May 25). Union HRD Minister launches Bharatavani Portal. Press Information Bureau. https://www.pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=145676
5. "Introduction to Indian Knowledge System." (2024). MOOC. Indira Gandhi National Open University via SWAYAM. https://onlinecourses.swayam2.ac.in/ntr24_ed78/preview

6. Saxena, R., Sharma, P., & Mishra, D. (2025). Preservation and revitalisation of Indian languages through digital archiving. DESIDOC Journal of Library and Information Technology, 45 (3), 210–219. https://publications.drdo.gov.in/ojs/index.php/djlit/article/download/20138/8496/88553
7. Sutradhar, B. (Project PI). (n.d.). National Digital Library of India (NDLI). Indian Institute of Technology Kharagpur. https://ndl.gov.in
8. "Synergising Ancient Indian Wisdom and Modern Technologies." (2025). Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 12 (7), 112–118. https://www.jetir.org/papers/JETIR2507265.pdf

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 203-207

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हनुमानगढ़ जिले में भूमि उपयोग का बदलता स्वरूप और कृषि पर इसके प्रभाव

धनराज, शोधार्थी
डॉ. रेनु, शोध पर्यवेक्षक
Reasarch Department of Geography, Dr. K. N. Modi University

1. सारांश ¼Abstract½

हनुमानगढ़ जिला राजस्थान के उन प्रमुख कृषि प्रधान जिलों में से है जहाँ भूमि संसाधनों का महत्व अत्यधिक है। वर्ष 2001 से 2021 तक के दो दशकों में भूमि उपयोग की संरचना में उल्लेखनीय बदलाव सामने आए हैं। प्रस्तुत आंकड़े बताते हैं कि जिले की शुद्ध बुआई गई भूमि 2001 में 8,36,788 हेक्टेयर थी, जो 2021 में बढ़कर 8,49,921 हेक्टेयर हो गई। इस प्रकार बीस वर्षों में इसमें 13,133 हेक्टेयर की वृद्धि दर्ज हुई है। यह परिवर्तन सिंचाई सुविधाओं, उन्नत कृषि तकनीकों और कृषि क्षेत्र पर बढ़ती निर्भरता को दर्शाता है।

दूसरी ओर, चारागाह/परती भूमि 2001 में 58,265 हेक्टेयर थी, जो 2021 में घटकर केवल 35,644 हेक्टेयर रह गई। इसमें कुल 22,621 हेक्टेयर की कमी आई है। यह स्थिति पशुपालन जैसे सहायक कृषि कार्यों के लिए चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि पशुधन हेतु चारागाह भूमि का सिकुड़ना उनके चारे की उपलब्धता पर प्रतिकूल असर डालता है।

वन क्षेत्र की दृष्टि से 2001 में कुल 19,100 हेक्टेयर क्षेत्र दर्ज था, जो 2021 में 19,099 हेक्टेयर रह गया। मात्र 1 हेक्टेयर की कमी के साथ यह लगभग स्थिर रहा। वहीं, गैर–कृषि उपयोग की भूमि 2001 में 50,260 हेक्टेयर से बढ़कर 2021 में 58,487 हेक्टेयर हो गई। इसमें 8,227 हेक्टेयर की वृद्धि शहरीकरण, औद्योगिक विस्तार और अवसंरचना विकास को इंगित करती है। कुल मिलाकर, यह परिवर्तन दर्शाता है कि जहाँ एक ओर कृषि योग्य भूमि का विस्तार हुआ है, वहीं दूसरी ओर चारागाह भूमि में आई भारी कमी और गैर–कृषि भूमि का विस्तार भविष्य में कृषि–पशुपालन प्रणाली और प्राकृतिक संसाधनों की स्थिरता के लिए गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत कर सकता है।

2. परिचय ¼Introduction½

भूमि किसी भी क्षेत्र के सामाजिक–आर्थिक विकास की आधारशिला है। राजस्थान में शुष्क जलवायु के कारण भूमि उपयोग में निरंतर परिवर्तन देखा जाता है। हनुमानगढ़ जिला (निर्मित 1994) गंग नहर और इंदिरा गांधी नहर परियोजना के कारण कृषि प्रधान क्षेत्र बन गया है। परंतु बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण तथा भूमि के

अति–दोहन से कृषि योग्य भूमि का स्वरूप तेजी से बदल रहा है।

प्रस्तुत आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2001 से 2021 के बीच भूमि उपयोग में कई महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए हैं।

- **शुद्ध बुआई गई भूमि :–** 2001 में 8,36,788 हे. थी, जो 2011 में थोड़ी गिरावट के बाद (83,429 हे. की कमी) 2021 में 8,49,921 हे. तक पहुँच गई। इस वृद्धि से संकेत मिलता है कि किसानों ने परती और अन्य भूमि को खेती योग्य बनाकर कृषि उत्पादन को बढ़ाया।
- **वन क्षेत्र :–** 2001 में 19,100 हे. था, जो 2011 में 18,473 हे. रह गया और पुनः 2021 में 19,099 हे. हो गया। यहाँ परिवर्तन बहुत नगण्य (मात्र 1 हे. की कमी) है, जिससे स्पष्ट है कि जिले में वन क्षेत्र अपेक्षाकृत स्थिर रहा।
- **गैर–कृषि भूमि :–** 2001 में 50,260 हे. से बढ़कर 2011 में 56,933 हे. और 2021 में 58,487 हे. हो गई। कुल 8,227 हे. की इस वृद्धि ने जिले में शहरीकरण और अवसंरचना विस्तार की ओर संकेत दिया।
- **चारागाह/परती भूमि :–** यह सबसे चिंताजनक रहा। 2001 में 58,265 हे. थी, जो 2011 में घटकर 53,103 हे. और 2021 में केवल 35,644 हे. रह गई। कुल 22,621 हे. की कमी से यह स्पष्ट होता है कि पशुपालन के लिए उपलब्ध भूमि तेजी से घट रही है।

भूमि उपयोग वर्ग तुलना (2001–2021)

भूमि उपयोग वर्ग	2001 (हे.)	2011 (हे.)	2021 (हे.)	2001–2011परिवर्तन	2011–2021 परिवर्तन	कुल परिवर्तन (2001–2021)
शुद्ध बोई गई भूमि	836788	832429	849921	–4359	17492	13133
वन क्षेत्र	19100	18473	19099	–627	626	–1
गैर–कृषि उपयोग भूमि	50260	56933	58487	6673	1554	8227
चारागाह/परती भूमि	58265	53103	35644	–5162	–17459	–22621

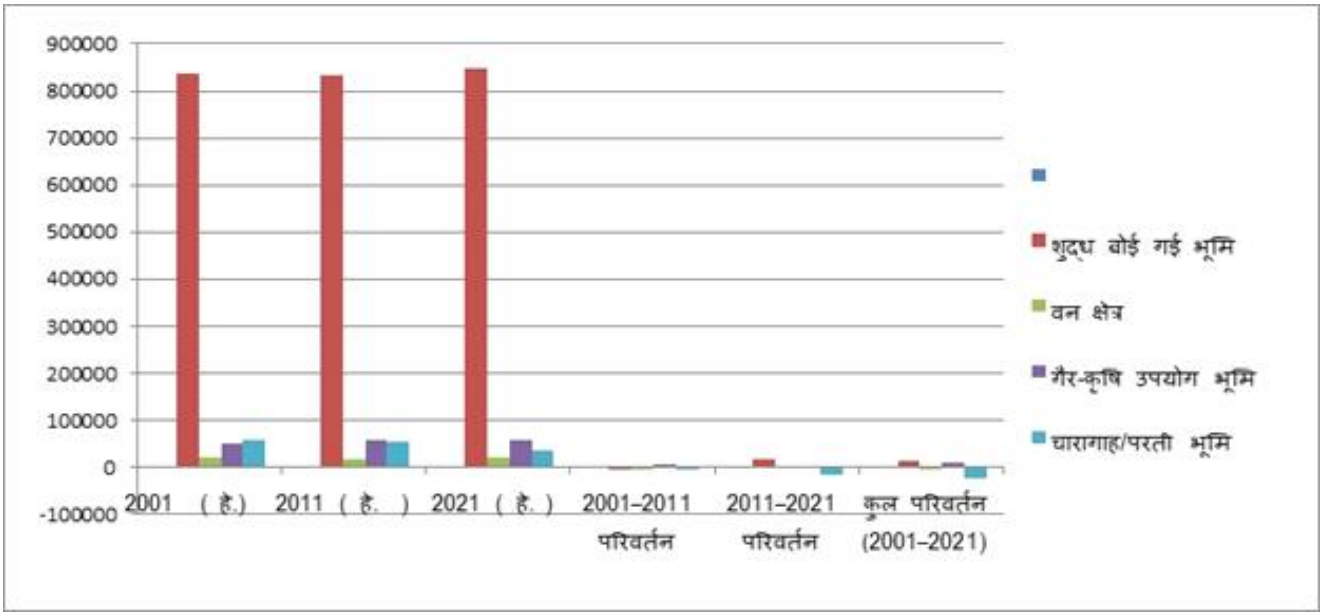

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि हनुमानगढ़ जिले में कृषि भूमि का दायरा बढ़ने के बावजूद पशुपालन के लिए आवश्यक चारागाह भूमि में आई कमी कृषि प्रणाली पर दबाव डाल रही है। शुद्ध बुआई गई भूमि में वृद्धि जहाँ खाद्यान्न उत्पादन को प्रोत्साहित करती है, वहीं गैर–कृषि भूमि का बढ़ना भूमि संसाधनों के संतुलन के लिए चुनौती है।

कृषि पर इन परिवर्तनों का प्रभाव बहुआयामी है। एक ओर उत्पादन बढ़ने की संभावना है, वहीं दूसरी ओर पशुधन और पारंपरिक कृषि–पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर दिखाई देता है। यही कारण है कि भूमि उपयोग के इस बदलते स्वरूप को समझना और इसके प्रभावों का विश्लेषण करना आज की आवश्यकता है।

शोध की आवश्यकता :–

- भूमि उपयोग परिवर्तन का कृषि उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव।
- खाद्य सुरक्षा व आजीविका पर संकट।
- टिकाऊ भूमि प्रबंधन नीतियों की आवश्यकता।

मुख्य उद्देश्य :

- हनुमानगढ़ जिले में भूमि उपयोग के बदलते स्वरूप का विश्लेषण।
- कृषि उत्पादन व फसली संरचना पर इन परिवर्तनों का अध्ययन।
- भूमि व जल संसाधनों पर बढ़ते दबाव के प्रभावों का मूल्यांकन।
- भविष्य के लिए उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन क्षेत्र (Study Area)

- **भौगोलिक स्थिति :**

  29°5′ से 30°6′ उत्तरी अक्षांश और 74°6′ से 75°3′ पूर्वी देशांतर।

- **जनसंख्या**

जनसंख्या वितरण

वर्ष	कुल जनसंख्या	पुरूष	महिला
1991	1220333	645205	575128
2001	1518005	801486	716519
2011	1774692	931184	843508

- **जलवायु :**

  अर्ध–शुष्क, औसत वार्षिक वर्षा लगभग 300 मिमी।

  मृदा :– रेतीली, हल्की दोमट, नहर क्षेत्र में उपजाऊ।

  मुख्य फसलें :– गेहूँ, कपास, चना, सरसों, बाजरा।

  सिंचाई :– गंग नहर व इंदिरा गांधी नहर पर आधारित।

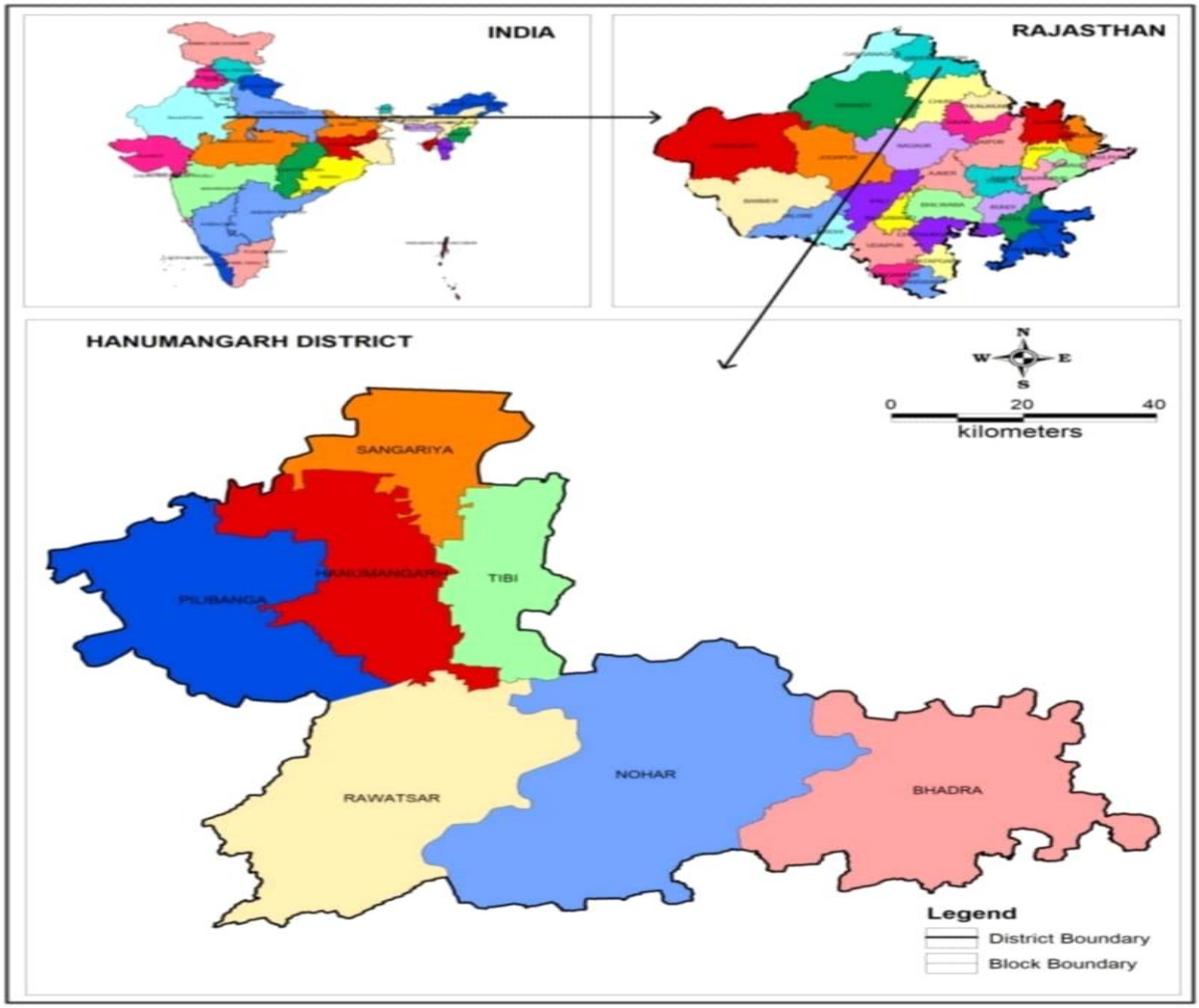

शोध पद्धति (Research Methodology) :

- द्वितीयक :– राजस्थान कृषि विभाग, जनगणना 2001 एवं 2011, भूमि उपयोग सांख्यिकी (2001-2021)।

विश्लेषण तकनीक :

- भूमि उपयोग वर्गीकरण (कृषि भूमि, वन, गैर–कृषि, चारागाह, परती)।
- परिवर्तन दर (Percent Change) की गणना।
- परिणाम एवं चर्चा (Results and Discussion)

कृषि पर प्रभाव :–

- बुआई क्षेत्र में वृद्धि से फसलों का उत्पादन बढ़ने की संभावना है।
- चारागाह भूमि में कमी से पशुपालन प्रभावित हुआ है, जिससे कृषि आधारित सहायक आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- गैर–कृषि भूमि का विस्तार कृषि योग्य भूमि पर दबाव बढ़ाता है और भविष्य में भूमि संसाधनों की उपलब्धता को चुनौतीपूर्ण बना सकता है।
- वन क्षेत्र स्थिर रहने से पर्यावरणीय दृष्टि से आंशिक संतुलन बना हुआ है।

फसली विविधता में बदलाव :–

- 2001 में गेहूँ, चना व बाजरा प्रमुख थे।
- 2021 में गेहूँ व कपास का प्रभुत्व, बाजरे में गिरावट।

सिंचाई :–

- नहर प्रणाली से 70% भूमि सिंचित।
- परंतु भूमिगत जलस्तर 15-20 मीटर तक नीचे गया।

उत्पादन :–

- गेहूँ उत्पादन 2001 में 9.8 लाख टन से बढ़कर 2021 में 11.2 लाख टन।
- कपास उत्पादन 2001 में 2.1 लाख गांठ से बढ़कर 2021 में 3.4 लाख गांठ।

समस्याएँ :–

- मृदा क्षारीकरण (खासकर रावतसर, नोहर में)।
- भूमि का खंड–खंड होकर छोटा होना।
- परती भूमि में वृद्धि।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

हनुमानगढ़ जिले में भूमि उपयोग में तेजी से बदलाव हो रहा है। कृषि योग्य भूमि में कमी और गैर–कृषि उपयोग भूमि में वृद्धि से ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही है। नहर आधारित सिंचाई से गेहूँ और कपास की खेती बढ़ी है, लेकिन जल संसाधनों पर दबाव और मृदा क्षरण गंभीर चुनौती बन गए हैं। भविष्य में टिकाऊ भूमि प्रबंधन, फसल विविधीकरण और जल संरक्षण रणनीतियाँ अपनाना आवश्यक है।

संदर्भ सूची (References)

1. Census of India, 2001 – 2011.
2. राजस्थान कृषि सांख्यिकी, 2021.
3. जिला सांख्यिकी विभाग, हनुमानगढ़।
4. Joshi, R.K. (2018), Land Use Change and Agricultural Development in Rajasthan.
5. Government of Rajasthan (2020), Statistical Abstract of Rajasthan.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 208-216

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सूर्यप्रकाश, सहायक आचार्य,
डॉ. पूनम रावत, सहायक आचार्य
शिक्षा संकाय, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय (झाँसी)

भारतवर्ष में आज भी पूरा समाज स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित है। प्रथम सामान्य वर्ग तथा दूसरा निम्न वर्ग। सामान्य वर्ग के व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार की सुविधायें आर्थिक पक्ष मजबूत होने के कारण उपलब्ध है, जबकि निम्न वर्ग को कदम–कदम पर आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसी कारण इस समाज के विद्यार्थियों को समाज से लेकर शिक्षण कक्षा तक अपने आर्थिक कारण, सामाजिक कारण और जातिगत कारणों की वजह से हीन भावना से देख जाता है। शिक्षा आयोग (1964) ने अपने प्रतिवेदन में इस बात को प्रमुखता से दर्शाते हुए कहा है कि 'भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में होता है। इन कक्षाओं के विद्यार्थी कल के हमारे राष्ट्र के कर्णधार है। इनमें से ही प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, संसद, विधायक, विद्वान, राजनेता, प्रशासक, अध्यापक, इन्जीनियर डॉक्टर.....इत्यादि होगें और समूचे देश की बागडोर इनके हाथों में होगी। इसीलिये यह आवश्यक है कि ऐसे शिक्षण माहौल तैयार किया जाए जो अध्यापन में रूचि एवं जिसकी अभिवृत्ति शिक्षण के प्रति सकारात्मक हो। सरकार द्वारा समय समय पर वंचित वर्ग के लोगों के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाऐं लागू कि गई और इस वर्ग को समानता का अधिकार देने की बात तो कही गई लेकिन सरकार द्वारा घोषित समानता का अधिकार केवल सब्जबाग दिखाई पड़ता है। सबसे बड़ी खाई जो स्वतन्त्र भारत में सामान्य जाति (अनारक्षित वर्ग) और अनुसूचित जाति के बीच हजारों साल से अनुभव की जा रही थी और आज भी उपलब्ध है। जिसे हम शिक्षा, समाज और आपसी सहयोग के बगैर नहीं भर सकते हैं।

अगर ये कहा जाये की बिना इस खाई को भरे हम पूर्व प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिहं के 'भारत निर्माण' और वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी 'डिजिटल इण्डिया' के सपने को साकार नहीं कर सकते है तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। भारत सरकार तथा विभिन्न प्रदेशों की सरकारों द्वारा इनके जीवन स्तर तथा शैक्षिक स्तर सुधारनें हेतु हरसम्भव प्रयास किये गये है और आज इस वर्ग के लोग डाक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, शिक्षक तथा वकील... इत्यादि स्थानों पर आसीन है। इसके बाद भी सरकार द्वारा इस वर्ग की शिक्षा पर खर्च की जाने वाली धनराशि का समुचित तथा सही उपयोग हुआ ही नहीं है या हो नहीं पा रहा है। यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज देश में पढ़ने की सुविधायें सामान्य जाति और अनुसूचित जाति को समान रूप से प्राप्त है या नहीं प्राप्त

है। एक ही कक्षा में एक ही अध्यापक द्वारा एक ही परिसर में दोनों वर्गो के विद्यार्थियों को कक्षा शिक्षण कराया जा रहें है परन्तु फिर भी 'अनुसूचित जाति' के विद्यार्थी आज भी अपने को सामान्य जाति से पिछड़ा हुआ समझते है और इस वजह से ही इस समाज के लोग का विभिन्न क्षेत्र में प्रतिनिधित्व नाममात्र का ही है। अतः शोध कर्ता द्वारा अपने इस शोध अध्ययन में इनके कारणों को जानने की कोशिश की गई है। जिससे इस वर्गो के लोगों की शैक्षिक सामाजिक और आर्थिक विकास किया जा सके।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :-

(वर्मा, 1995) ने सिरसा जिले (हरियाणा) के अनुसूचित जातियों व सामान्य जातियों के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का उनके वैयक्तिक मूल्यों के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन किया और अपने अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर पाया कि सामान्य जाति के छात्र अनुसूचित जाति के छात्र की तुलना में आर्थिक स्तर, बौद्धिक स्तर, सत्तावादी दृश्टि से उच्च पाये गये। जबकि सामान्य जाति की छात्राएं, अनुसूचित जाति की छात्राओं से आर्थिक स्तर, सौन्दर्यत्मक, ज्ञानात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से उच्च पायी गई। इसी प्रकार **(सती, 1991)** ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति के छात्र–छात्राओं की तुलना में सामान्य जाति (अन्य जाति) के छात्र–छात्राओं को अधिक सुरक्षा आवश्यकता के समय दी गई। **(अग्रवाल, 1997)** ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति के छात्र–छात्राओं का सामाजिक आर्थिक स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि सामान्य जाति के छात्र–छात्राओं की अपेक्षा निम्न है। **(शुक्ला, 1997)** ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की बुद्धि, शैक्षिक आकांक्षा स्व प्रत्यय एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि अनुसूचित जाति के छात्रों का आकांक्षा स्तर अनुसूचित जनजाति के छात्रों की अपेक्षा कम है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में छात्रों की तुलना में छात्राओं का आकांक्षा स्तर निम्न था जबकि अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक थी। **(प्रिन्स, 1990)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर, शैक्षिक उपलब्धि तथा आकांक्षा सतर में घनिष्ठ सहसम्बन्ध प्रदर्शित हुआ इसी प्रकार **(सीमा, 2004)** ने माध्यमिक स्तर के गैर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों पर अध्ययन किया और पाया कि सरकार द्वारा अपनी ओर से हरसम्भव प्रयास इनको मुख्य धारा से जोड़ने के लिए किये गये किन्तु लाल फीताशाही और कुछ उनकी सामाजिक कुप्रथाओं के कारण वे समुचित रीति से लाभान्वित नहीं हो पाते है।

अध्ययन की आवश्यकता :

मानवीय प्रवृत्ति की विशेषता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये अनेक साधनों को अपनाता है, और संतुष्टि प्राप्त करने के पश्चात् ही दम लेता है। यदि वह इसके बाद भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति उपलब्ध साधनों से करने में असमर्थ रहता है या नहीं कर पाता है, तब वह एक समस्या का रूप ले लेती है। आज हमारे सम्मुख अनके समस्यायें है, परन्तु अशिक्षा की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसके समाधान के बिना दिन–प्रतिदिन नयी समस्यायें जन्म लेती रहती है। अतः वर्तमान में यह ज्वलन्त समस्या है कि विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि को किस प्रकार उन्नत किया जाए, क्योंकि शैक्षिक उपलब्धि पर बुद्धिलब्धि का प्रभाव पड़ता है इसलिए वर्तमान समय में शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को खोजना अत्यन्त आवश्यक है जिससे शैक्षिक उपलब्धि को उन्नत किया जा सके। विद्यार्थियों में शैक्षिक परिणामों में अन्तर के लिए

अभिप्रेरणा, आकांक्षा, आर्थिक, मानसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि तथ्य हो सकते हैं जो इन्हें समय–समय पर उपलब्ध नहीं हो पाते हैं और इससे ही बालकों का सर्वागींण विकास का सपना साकार नहीं हो पा रहा हैं और इस कारण से ही हमारे देश का पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है, क्योंकि आज का बालक ही कल का नागरिक है, जिसे कल अर्थात् आने वाले समय में राष्ट्र की बागडोर संभलना एवं राष्ट्र के विकास के लिए दिशा का निर्धारण करना हैं। अतः देश और समाज के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि देश के भावी कर्णधार विद्यार्थियों के समुचित विकास को सुनिश्चित करने के लिए अत्यधिक अध्ययन किये जाये। किसी भी विद्यार्थी की स्कूल विषयों में सफलता उसके आन्तरिक गुणों पर निर्भर करती है। उसकी शैक्षिक उपलब्धि (Academic Achievement) का सीधा सम्बन्ध बुद्धिलब्धि तथा इससे सम्बन्धित कई तथ्यों से होता है। जिनमें कार्य के प्रति अभिवृत्ति (Aptitude), बुद्धिलब्धि (Intelligence Qutient), सीखने में रूचि (Interest पद Learning), स्मृति (Memory), आकांक्षा स्तर (Aspiration Level), अभिव्यक्ति (Attitude) सीखने की आदत (Habit of learning) तथा पास पड़ोस का वातावरण मुख्य है।

अनुसूचित जाति एसं अन्य जातियों के जातिगत भेदभाव को कम करने एवं इसकी समीक्षा करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका हैं साथ ही शिक्षण कक्ष के बाहर समाज में जातिगत भेदभाव एवं सामाजिक असमानता से सम्बन्धित धारणाओं को पहचानने एवं उसका समाप्त करने में भी शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्राचीनकाल से लेकर स्वतन्त्र से कुछ समय पहले तक निम्न जाति (अनुसूचित जाति) एवं अन्य जातियों को समाज में अलग–अलग कार्य या भूमिकायें सौपी गई थी। जिसमें निम्न वर्ग को सेवा व श्रमिक कार्यो में ही रखा गया था और इस वर्ग के लोगों को शिक्षा से दूर रखा गया और समाज की अन्य जातियों द्वारा इनको केवल सेवा एवं श्रम में लगाने और आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण भी शिक्षा से दूर रहना पड़ा। ऐसी स्थिति में इस समाज के लोगों का शिक्षा से जोड़ने का क्रम भी बहुत पुराना नही है। इसी कारण से इस समाज के लोगों अभी भी उच्च पद में प्रतिनिधि नाममात्र का ही है। परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार के अन्य सदस्यों का अशिक्षित होना या कम पढ़े लिखें होने के कारण इनकी शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा भी कम है।

(डिमेजी, 2008) के अनुसार छात्र व छात्राओं की शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाओं के सम्बन्ध में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया इनके अनुसार छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं व्यावसायिक आकांक्षाओं के निर्धारण में बहुत कारक है जिसमें अभिभावकों के सामाजिक आर्थिक चार आसपास का वातावरण इत्यादि से शिक्षा व्यवसाय और आय बहुत अधिक प्रभाव डालते है।

(बाकर, 2004) ने तकनीकी माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाओं का अध्ययन पर शोध कार्य में पाया कि विद्यार्थियों द्वारा आगे शैक्षिक अध्ययन के लिये चयनित क्षेत्रों की जानकारी नहीं है। शैक्षिक उपलब्धियों और शैक्षिक व व्यावसायिक आकांक्षाओं के मध्य कम सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। विद्यार्थियों को कुछ हद तक ही शैक्षिक व व्यावसायिक क्षेत्र की जानकारी होती है। इन कल्पनाओं के आधार पर ही वे उन व्यवसाय से जुड़ना चाहते है जो कि वास्तविकता से परे होते है।

अध्ययन का शोध प्रश्न :–

क्या पिछड़ी जाति और सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के भौक्षिक उपलब्धि में अन्तर है?

शोध समस्या अभिकथन :-

औपचारिक रूप से शोध समस्या को निम्नलिखित कथन के रूप व्यक्त किया गया है– ''पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन''।

अध्ययन के उद्देश्य :-

पिछड़ी जाति और सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित चरों के सन्दर्भ में– (अ) लिंग (छात्र एवं छात्रा)

परिकल्पनाएं :-

शोध परिकल्पना :-

$\mathbf{H_{R1}}$**:** पिछड़ी जाति और सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के भौक्षिक उपलब्धि में निम्नलिखित के सन्दर्भ में अन्तर है – (अ) लिंग (छात्र एवं छात्रा)

शोध परिकल्पना :-

$\mathbf{H_{01.1}}$ **:** पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

$\mathbf{H_{01.2}}$ **:** पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

$\mathbf{H_{01.3}}$ **:** पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग की छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अभिकल्प :

शोध समग्र :

प्रस्तावित शोध के समग्र के रूप में झाँसी जनपद में स्थित उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के कक्षा 11 के यू. पी. बोर्ड के विद्यार्थियों को शामिल किया गया है।

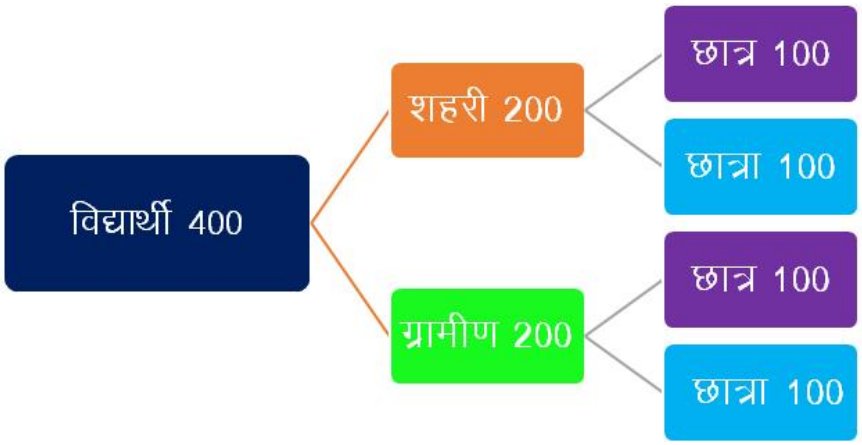

न्यादर्श :

प्रस्तावित शोध अध्ययन में प्रतिदर्श का चयन समानुपाती स्तरित यादृच्छिक न्यादर्श (Proportionate Stratified Random Sampling) द्वारा अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार विभिन्न उच्चतर माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11 के 400 विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिनमें 200 सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों और 200 पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। इन विद्यार्थियों को छात्र एवं छात्राएं के अनुसार बॉटा गया है। जिनको 100 सामान्य वर्ग के छात्र एवं 100 सामान्य वर्ग की छात्राएं है और इस क्रम के अनुसार 100 पिछड़ी जाति के छात्र एवं 100 पिछड़ी जाति की छात्राएं हैं।

उपकरण :

शैक्षिक उपलब्धि (Academic Achievement) के मापन हेतु :

प्रस्तुत शोध कार्य में शैक्षिक उपलब्धि ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों द्वारा उनके हाई स्कूल प्राप्तांकों को शैक्षिक उपलब्धि के रूप में लिया गया है।

शोध विधि :

प्रस्तावित शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descretive Servey Method) को अपनाया गया है।

प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण :

प्रस्तावित शोध के उद्देश्यों को प्राप्ति करने हेतु विभिन्न उपकरणों के माध्यम से प्राप्त आंकडो के यथोचित विश्लेषण में वर्णात्मक सांख्यिकी जैसे –माध्य या मध्यमान (Mean), मानक विचलन (Standard Deviation) और क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio-CR) का अनुप्रयोग करते हुए सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु SPSS, VERSION -23 का प्रयोग किया गयाए प्रासंगिक परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु जांच 0.05 सार्थकता स्तर पर की गयी है।

परिकल्पना परीक्षण –

उद्देश्य : 1. पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना H_{01}.: पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका. 1. : पिछड़ी जाति एवं सामान्यवर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर t-परीक्षण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों में अन्तर	मानक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
अनुसूचित जाति	400	67.53	8.061	3.93	0.58	6.73*	सार्थक
सामान्य जाति	400	71.46	8.451				

* 0.05 सार्थकता स्तर पर।

आरेख संख्या 1. – पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि

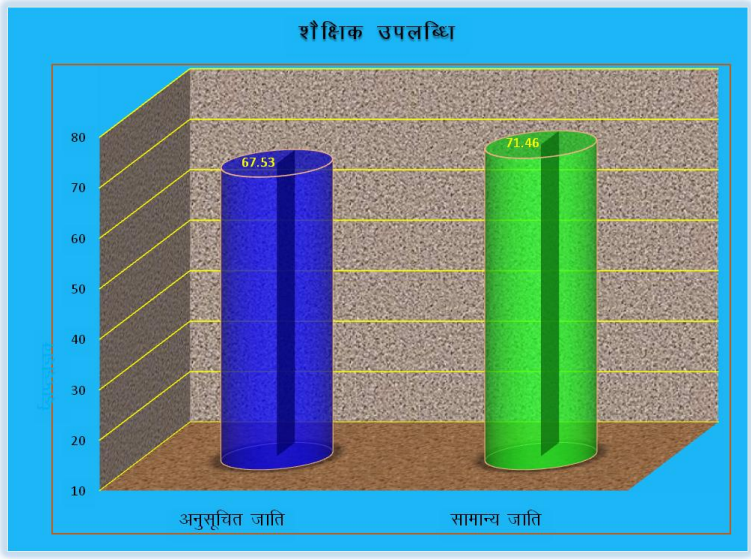

व्याख्या – तालिका 1. आरेख 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का मध्यमान 67.53 तथा मानक विचलन 8.061 तथा सामान्य जाति के विद्यार्थियों का मध्यमान 71.46 एवं मानक विचलन 8.451 है। अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों के मध्य t-परीक्षण का मान 6.73 है, जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान 1.96 से अधिक है। इस आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है। अतः शून्य परिकल्पना ($H_{01.}$) अस्वीकृत की जाती है।

उद्देश्य 1.1 :– पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना $H_{01.1}$: पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 1.1 : पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर t- परीक्षण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों में अन्तर	मानक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
अनुसूचित जाति	200	68.03	8.913	3.73	0.85	4.55*	सार्थक
सामान्य जाति	200	71.76	8.048				

* 0.05 सार्थकता स्तर पर।

व्याख्या – तालिका 1.1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के छात्रों का मध्यमान 68.03 तथा मानक विचलन 8.913 तथा सामान्य जाति के छात्रों का मध्यमान 71.76 एवं मानक विचलन 8.048 है। अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के छात्रों के मध्य **t-**परीक्षण का मान 4.55 हैश जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान 1.97 से अधिक है। इस आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है। अतः शून्य परिकल्पना ($H_{01.1}$) अस्वीकृत की जाती है।

उद्देश्य 1.2 :– पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना $H_{01.2}$: पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 1.2 : पिछड़ी जाति एवं सामान्य वर्ग की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर t- परीक्षण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों में अन्तर	मानक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
अनुसूचित जाति	200	69.00	9.994	2.73	0.97	2.90*	सार्थक
सामान्य जाति	200	71.73	9.481				

* 0.05 सार्थकता स्तर पर।

व्याख्या – तालिका 1.2के अवलोकन से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति की छात्राओं का मध्यमान 69.00 तथा मानक विचलन 9.994 तथा सामान्य जाति की छात्राओं का मध्यमान 71.73 एवं मानक विचलन 9.481 है। अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति की छात्राओं के मध्य t-परीक्षण का मान 2.90 है, जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान 1.97 से अधिक है। इस आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है। अतः शून्य परिकल्पना ($H_{01.2}$) अस्वीकृत की जाती है।

शोध अध्ययन के परिणाम :-

परिणाम 1. :- उद्देश्य - 1 तथा शून्य परिकल्पना $H_{01.}$ के आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया गया है। {(क्रान्तिक अनुपात CR0.05=6.73) (अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का मध्यमान = 67.53, सामान्य जाति के विद्यार्थियों का मध्यमान= 71.46)}

परिणाम 1.1 :- उद्देश्य - 1.1 तथा शून्य परिकल्पना $H_{01.1}$ के आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया गया है। {(क्रान्तिक अनुपात CR 0.05= 4.55) (अनुसूचित जाति के छात्रों का मध्यमान = 68.03, सामान्य जाति के छात्रों का मध्यमान= 71.76)}

परिणाम 1.2 :- उद्देश्य- 1.2 तथा शून्य परिकल्पना $H_{01.2}$ के आधार पर अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया गया है। {(क्रान्तिक अनुपात CR 0.05=2.90) (अनुसूचित जाति की छात्राओं का मध्यमान =69.00, सामान्य जाति की छात्राओं का मध्यमान = 71.73)}

शोध अध्ययन के निष्कर्ष :-

1. पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, सामान्य जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से कम पायी गई।

1.1. पिछड़ी जाति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि, सामान्य जाति के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से कम पायी गई।

1.2. पिछड़ी जाति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि, सामान्य जाति की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से कम पायी गई।

उद्देश्य संख्या 1 से 1.2 के आधार पर विवेचना -

पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों में जनांकीय चरों के आधार पर सार्थक अन्तर दर्शाता है कि पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों के बीच शैक्षिक उपलब्धि में जनांकीय चरों के आधार पर अन्तर अनुभव किया जा सकता है अर्थात् पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य जाति के विद्यार्थियों से लगभग सभी जनांकीय चरों पर कम पाई गई। मध्यमान और क्रान्तिक अनुपात की सारणी के अवलोकन के आधार पर पिछड़ी जाति के छात्र की अपेक्षा पिछड़ी जाति की छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर कम पाया गया

शोध अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ :

उपर्युक्त परिणामों एवं उन पर आधारित निष्कर्षो की विवेचना के आधार पर निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थो की संस्तुति की जाती है –

- वर्तमान शोध पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्याथियों में शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर व्याप्त अन्तर की पहचान करने में सहायक है। अतः इन अन्तरों को समाप्त करने या निम्न करने हेतु उत्तम शिक्षण–विधियों एवं उचित नीतियों के निर्माण किया जाये, जो पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि में सुधार करके उनके शैक्षिक विकास में सहायक हों।
- प्रस्तुत शोध से ज्ञात हुआ कि पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों में आर्थिक स्तर के आधार पर अन्तर है। अतः इस अन्तर को समाप्त करने या निम्न करने हेतु उचित नीतियों का निर्माण जाये जो पिछड़ी

जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों के आर्थिक स्थिति के सुधार करने में सहायक हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. जाससवाल, ए0 (1994). उच्च माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों के आत्म संप्रत्यय सामाजिक–आर्थिक स्तर शैक्षिक उपलब्धि तथा मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन. अप्रकाशित पी0–एच0 डी0 थीसिस शिक्षा संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, पृ0 45।
2. कुमार, आर0 (2006). विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर, सृजनात्मकता, शैक्षिक उपलब्धि एवं मूल्यों का अध्यापक–छात्र सम्बन्धों के सन्दर्भ में अध्ययन। अप्रकाशित शोध थिसिसि चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।
3. पल्लवी और शुक्ल, एस0 (2006). उत्तर प्रदेश के हाई स्कूल विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर वातावरण में भिन्नता तथा लिंग के प्रभाव का अध्ययन। अप्रकाशित पीएच0डी0 शोध. शिक्षा–चिंतन, कानपुर. वर्ष–5, अंक–19, पृष्ठ सं0–33 से 36।
4. पाण्डेय, एस0 (2010). कानपुर नगर के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक सुरक्षा स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि व सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में अध्ययन। अप्रकाशित पीएच0डी0 शोध। छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर., पृष्ठ सं0–88 से 90.
5. श्रीवास्तव, एम0 के0 (2010). सामाजिक आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका–लखनऊ, वर्ष–29, अंक–1, पृष्ठ सं0–33 से 46।
6. Azad, J. L. (2007). Education of Scheduled Castes/Scheduled Tribes and Minorities.Sixth Survey of Educational Research. Vol. 2, New Delhi: NCERT.
7. Chugh, M. and Audichya (2004).Academic achievement of the orphan boys of 6 to 12 years. Indian psychological review, 63, 233-235.
8. Giri, M. D. (1985). Effect of anxiety, Intelligence and Social Economic Stutas on academic achievement of Primary School children umpublished Ph.D thesis faculty of education Banaras Hindu University, Varanasi.

9. Gogate S.B. (1985). A critical study of the Availability of Scholarships and other Financial Facilities to Scheduled Castes students in Marathwara.In M. B. Buch (Ed). Fourth Survey of Educational Research. New Delhi: NCERT p.1431.
10. Gupta, M. (1987). A study of the relationship between locus of contral, anxiety, level of aspiration and academic achievement of secondary students unpulished Ph.D. Thesis(edu) Allahabad.
11. Malti, (2007). A Comparative Study of Values, Intelligence and academic achievement of students of UP, CBSE and ICSE Board Schools. Unpublished Doctoral Dissertation.M.Gandhi Kashi Vidyapith,Varanasi.
12. Panda, A. (2010) Emotional Intelligence of visually Impaired adolescent Girl In relation to their Level of Aspration and Educational Achievement. Retrieved from www.old.jmi.ac.in/ 2000/research ab education.htm on dt. 01/07/2012.
13. Shah, B. and Sharma, A. (1984) A study of the effect of family climate on students' academic achievement. Journal of the institute of educational research, 8 (3), 11-15.
14. Shukla, A. N. (2000). Education of Scheduled Castes/Scheduled Tribes and Minorities.In M. B. Buch (Ed). Fifth Survey of Educational Research. New Delhi: NCERT
15. Sati, B. D. (1991). A Compartive study of needs Values Aspiration and Adjustments in relation to Academaic achievements of Scheduled Castes and other students of Secondary Schools of Kumaun. In M. B. Buch (Ed). Fifth Survey of Educational Research. New Delhi: NCERT. p.789
16. Shukla, A. N. (2000). Education of Scheduled Castes/Scheduled Tribes and Minorities.In M. B. Buch (Ed). Fifth Survey of Educational Research. New Delhi : NCERT

suryaprakasheducator@gmail.com
Mob.8707457353

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 217-221

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं के मानवाधिकारों का अध्ययन (झालावाड़ जिले के संदर्भ में)

डॉ. विरमा राम देवासी, निर्देशक
धीरज कुमार शर्मा, शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

सारांश :

वर्तमान शोध पत्र में झालावाड़ जिले की निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं के मानवाधिकारों की स्थिति का अध्ययन किया गया है। भारत में संविधान ने महिलाओं को समानता, गरिमा और सुरक्षा के मूलभूत अधिकार प्रदान किए हैं, किंतु व्यवहारिक स्तर पर महिलाओं को अब भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, असमान वेतन, यौन उत्पीड़न, और सुरक्षा की कमी जैसी चुनौतियाँ उनके जीवन की वास्तविकता बन चुकी हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य झालावाड़ जिले की निजी संस्थाओं में कार्यरत महिलाओं के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता, उनके संरक्षण, और उल्लंघन की स्थिति का विश्लेषण करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि अधिकांश महिलाएँ अपने अधिकारों से परिचित तो हैं, किंतु उनका पूर्ण रूप से पालन अभी भी नहीं हो पा रहा है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, कानूनी जागरूकता और सामाजिक दृष्टिकोण में सुधार आवश्यक है।

मुख्य शब्द – निजी क्षेत्र, कामकाजी महिलायें, मानवाधिकार।

प्रस्तावना –

मानवाधिकार वे सार्वभौमिक अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को पारित 'मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) के अनुसार– जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सुरक्षा का अधिकार हर मानव को है। भारत के संविधान ने भी समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), भेदभाव निषेध (अनुच्छेद 15), समान अवसर (अनुच्छेद 16), और जीवन व स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21) प्रदान किया है। किन्तु भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार मिलना अभी भी एक चुनौती है। समाज में पितृसत्तात्मक सोच, घरेलू दायित्व, और सांस्कृतिक रूढ़ियाँ महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। आधुनिक युग में शिक्षा और रोजगार ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया है, फिर भी कार्यस्थलों पर उन्हें अनेक प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

राजस्थान जैसे राज्य में, विशेषतः झालावाड़ जिला, जहाँ सामाजिक परंपराएँ और रूढ़िवादी सोच अब भी विद्यमान है, वहाँ की कामकाजी महिलाओं की स्थिति अध्ययन का विषय बनती है। यहाँ शिक्षिका, नर्स, बैंक अधिकारी, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, और औद्योगिक क्षेत्र की महिलाएँ कार्यरत हैं, परंतु अधिकारों की जानकारी और उनके संरक्षण के उपायों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। यही इस शोध पत्र का केंद्र बिंदु है।

अध्ययन का औचित्य :

महिलाओं को उनके मानवाधिकारों की जानकारी देना और उन्हें व्यावहारिक जीवन में सुरक्षित करना किसी भी लोकतांत्रिक समाज की प्राथमिक जिम्मेदारी है। संविधान, श्रम कानून, और महिला सुरक्षा से संबंधित अधिनियम जैसे :

- समान वेतन अधिनियम 1976,
- मातृत्व लाभ अधिनियम 1961,
- कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम 2013,महिलाओं को उनके अधिकारों की रक्षा हेतु बनाए गए हैं।

फिर भी, ग्रामीण एवं अर्ध–शहरी क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं में इन अधिकारों की जानकारी सीमित है। झालावाड़ जैसे जिले में, जहाँ महिलाओं की साक्षरता दर अपेक्षाकृत कम है, वहाँ मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता और उनके उल्लंघन का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. झालावाड़ जिले की निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता के स्तर का अध्ययन करना।
2. कार्यस्थल पर निजी क्षेत्र की महिलाओं को मिलने वाले अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन करना।
3. निजी क्षेत्र की महिलाओं के मानवाधिकार उल्लंघन से संबंधित प्रमुख कारणों की पहचान करना।
4. महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक उपायों का सुझाव देना।

परिकल्पनाएँ :

1. झालावाड़ जिले की निजी क्षेत्र की अधिकांश कामकाजी महिलाएँ अपने मानवाधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक नहीं हैं।
2. निजी संस्थाओं में कार्यरत महिलाओं की अधिकार–सुरक्षा निजी संस्थाओं की तुलना में अधिक है।
3. कार्यस्थलों पर महिलाओं के मानवाधिकार उल्लंघन के प्रमुख कारण सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण हैं।

शोध विधि :

यह अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

शोध क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध का क्षेत्र झालावाड़ जिला (राजस्थान) चयन किया गया।

न्यादर्श :

तथ्य संकलन के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति का चयन कर समस्त में से 100 निजी क्षेत्र की

कामकाजी महिलाओं का चयन किया गया है।

संरचित प्रश्नावली :

शोध कार्य में निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं के मानवाधिकारों का अध्ययन (झालावाड़ जिले के संदर्भ में) से सम्बन्धित वास्तविक एवं विश्वसनीय आकड़ो को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आकड़ों को एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक आकड़े स्वयं कार्य स्थल पर जाकर मूल स्त्रोतो एवं साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक आंकड़े बालश्रम से संबंधित विभिन्न प्रकाशित–अप्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, शासकीय प्रतिवेदनों आदि से एकत्र कर प्रयोग किये गये हैं।

सांख्यिकीय तकनीकें :

शोध कार्य में प्रतिशत सांख्यिकीय तकनीक का प्रयोग किया गया।

अध्ययन का क्षेत्र :

अध्ययन में झालावाड़ जिले की पाँच प्रमुख तहसीलों –झालावाड़, झिरनिया, पचपहाड़, अकलेरा और गंगधार को सम्मिलित किया गया। यहाँ शिक्षा, बैंकिंग, स्वास्थ्य, औद्योगिक एवं निजी संस्थानों में कार्यरत महिलाओं को अध्ययन का हिस्सा बनाया गया।

विश्लेषण :

शोधार्थी द्वारा किया गया कोई भी शोघ कार्य सही अर्थो में तभी प्रभावी होते है, जब शोधार्थी द्वारा उस समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया जाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन में उपयोग किये गये समस्त शोध उपकरण द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया गया।

प्रमुख निष्कर्ष :

- **मानवाधिकार जागरूकता** – लगभग 65% महिलाएँ मानवाधिकार की सामान्य अवधारणा से परिचित थीं, परंतु 35% को इसके कानूनी स्वरूप की जानकारी नहीं थी।
- **कार्यस्थल सुरक्षा** – सरकारी कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं ने अपेक्षाकृत सुरक्षित वातावरण की पुष्टि की, जबकि निजी संस्थाओं में कार्यरत 42% महिलाओं ने असुरक्षा की शिकायत की।
- **यौन उत्पीड़न की स्थिति** – 18% महिलाओं ने अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से कार्यस्थल पर अनुचित व्यवहार का अनुभव किया, किंतु केवल 5% ने इसकी शिकायत दर्ज कराई।
- **समान वेतन** – 27% महिलाओं ने बताया कि समान कार्य के लिए उन्हें पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है।
- **निर्णय में भागीदारी** – केवल 32% महिलाओं को संस्थागत निर्णय प्रक्रियाओं में भाग लेने का अवसर मिलता है।
- **कानूनी जानकारी** – मातृत्व लाभ, वेतन समानता या यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम की जानकारी अधिकांश महिलाओं को नहीं थी।
- **सामाजिक दृष्टिकोण** – ग्रामीण पृष्ठभूमि की महिलाओं में सामाजिक और पारिवारिक दबाव के कारण वे

अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर पातीं।

चर्चा :

उपरोक्त निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि झालावाड़ जिले की निजी क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं की स्थिति में सुधार के बावजूद मानवाधिकारों की वास्तविक सुरक्षा अभी भी सीमित है। महिलाओं में शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी है, लेकिन पितृसत्तात्मक सोच और सामाजिक पूर्वाग्रह उनके अधिकारों के पालन में बाधक हैं। कई महिलाएँ अधिकारों के उल्लंघन को "सामान्य व्यवहार" मानकर चुप रह जाती हैं।

- निजी संस्थानों में कार्यरत महिलाओं को अक्सर अनुबंध की अस्थिरता, असमान वेतन, और कार्यस्थल पर अनुचित व्यवहार जैसी समस्याओं से जूझना पड़ता है।
- निजी संस्थानों में अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति है, परंतु वहाँ भी पदोन्नति और नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी सीमित पाई गई।
- शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि महिला कर्मचारियों में मानवाधिकार शिक्षा और कानूनी सहायता केंद्रों की जानकारी बहुत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कमी और अधिक स्पष्ट दिखाई दी।

महिला सशक्तिकरण एवं मानवाधिकार :

महिला सशक्तिकरण तभी संभव है जब उन्हें अपने अधिकारों की जानकारी हो, वे आत्मनिर्भर हों और सामाजिक समर्थन प्राप्त करें। शिक्षा, आर्थिक अवसर, और कानूनी सुरक्षा कृ ये तीनों महिला अधिकारों के प्रमुख स्तंभ हैं।

सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ जैसे "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ", "महिला हेल्पलाइन 181", "सखी वन स्टॉप सेंटर", तथा "राष्ट्रीय महिला आयोग" जैसे संस्थान महिलाओं के अधिकार संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, किंतु इन योजनाओं की पहुंच ग्रामीण महिलाओं तक सीमित है।

मानवाधिकारों की दृष्टि से देखा जाए तो महिलाओं के लिए सम्मानजनक कार्य वातावरण, समान वेतन, प्रमोशन में समान अवसर, यौन उत्पीड़न से सुरक्षा, और सामाजिक गरिमा कृ इन सभी का सुनिश्चित होना आवश्यक है।

सुझाव :

- **मानवाधिकार शिक्षा का प्रसार** – विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर मानवाधिकार शिक्षा को अनिवार्य किया जाए।
- **संवेदनशीलता प्रशिक्षण** – कार्यस्थलों पर पुरुष कर्मचारियों के लिए "जेंडर सेंसिटाइजेशन" प्रशिक्षण नियमित रूप से आयोजित किए जाएँ।
- **आंतरिक शिकायत समिति** – प्रत्येक सरकारी और निजी संस्था में महिला सुरक्षा समिति को सक्रिय रखा जाए।
- **कानूनी जागरूकता शिविर** – श्रम विभाग और महिला आयोग द्वारा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में नियमित कानूनी शिविर आयोजित हों।
- **समान वेतन नीति का पालन** – सभी संस्थाओं में वेतन असमानता पर निगरानी रखी जाए।
- **महिला सहायता केंद्रों की स्थापना** – प्रत्येक तहसील स्तर पर महिला हेल्प डेस्क और परामर्श केंद्र बनाए

जाएँ।

- **समाज में दृष्टिकोण परिवर्तन** – परिवार और समाज में महिलाओं के कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाए।

निहितार्थ :

- झालावाड़ जिले की कामकाजी महिलाएँ आधुनिक समाज की प्रगतिशील धारा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, परंतु उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा अभी भी अधूरी है।
- मानवाधिकार केवल कानूनी अधिकार नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में समानता और गरिमा का प्रतीक हैं।
- शोध से स्पष्ट होता है कि शिक्षा, कानूनी जानकारी, और सामाजिक जागरूकता बढ़ाकर महिलाओं के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।
- यदि प्रशासन, संस्थाएँ, और समाज मिलकर समान अवसर और सुरक्षित वातावरण प्रदान करें, तो महिलाएँ न केवल अपने अधिकारों की रक्षा कर सकेंगी बल्कि राष्ट्र के विकास में भी सक्रिय भूमिका निभाएँगी।

सन्दर्भ सूची :

1. भारत का संविधान (1950), भारत सरकार।
2. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, संयुक्त राष्ट्र महासभा (1948)।
3. समान वेतन अधिनियम, 1976।
4. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961।
5. कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013।
6. नंदा, प्रमिला (2019). भारतीय समाज में महिला अधिकारों की स्थिति. नई दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिकेशन।
7. शर्मा, एस.एल. (2021). राजस्थान में महिला सशक्तिकरण की चुनौतियाँ. जयपुर : राजस्थानी पब्लिशिंग।
8. National Human Rights Commission (NHRC) Reports, Government of India. National Commission for Women (NCW), Annual Report 2023-24.
9. Census of India (2021). District Data Handbook : Jhalawar District.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2025 Page No. : 222-228

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जसिंता केरकेट्टा के काव्य में आदिवासी जीवन–मूल्य

सुनीता कच्छप

शोधार्थी, झारखण्ड केंद्रीय विवि, राँची।

शोध सार –

जसिंता केरकेट्टा के अभी तक प्रकाशित चार कविता संग्रहों के माध्यम से उनके काव्य में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन–मूल्य को इस शोध आलेख में समझने का प्रयास किया गया है। जसिंता ने अपने काव्य में आदिवासी जीवन–मूल्य को बखूबी से उतारा है, आदिवासी जीवन–मूल्य को इस आधुनिक समाज में स्वाभाविकता के साथ उपस्थित किया है। आदिवासियों की सहज प्रवृत्ति, प्रकृति के साथ उनका सान्निध्य, प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध जसिंता के काव्यों का मूल आधार है। समानता, सहजीविता और सहध्अस्तित्व आदिवासी जीवन –मूल्य के तत्व है। आदिवासी जीवन दर्शन प्रकृति जीवन है। आदिवासियों का जल, जंगल, जमीन और जमीर ही एक मात्र पुंजी है। 21वीं सदी यानी की अभी का आधुनिक समाज विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आपदाओं से झूझ रहा है। कभी बाढ़, कहीं सूखा, भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन, कई प्रकार की महामारी प्राकृतिक आपदा के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। इन सभी प्राकृतिक आपदाओं का होना हमें यही बता रहा है कि प्रकृ ति का विनाश कितना ज्यादा किया जा चुका है। यही कारण है कि 21वीं सदी की सबसे बड़ी चिंता पृथ्वी को बचाए रखना है। यदि हम जसिंता केरकेट्टा के काव्यों के मूल्य स्वर की चांज करते है, तो पायेंगे कि जसिंता की कविता आदिवासी मूल्यों को लिए आधुनिक कविता है। जसिंता के काव्यों में आदिवासी जीवन–मूल्य है जो पूरे 'यूनिवर्सल मूल्यों' को अपने भीतर समेटे हुए है जिसकी आवश्यकता आज पूरे मानव समाज को बचाए रखने के लिए अति आवश्यक है।

बीज शब्द – आदिवासी, दर्शन, प्रकृति, आपदा, सहजीवी।

मूल आलेख –

जसिंता केरकेट्टा कहती है – 'कविताओं ने मुझे जमीन और प्रकृति से गहरे जोड़ा है। ये हमेशा बोलती हैं कि कभी मत कहना ये सिर्फ तुम्हारी हैं। ये सिर्फ तुम्हारी कभी नहीं हो सकती है क्योंकि ये सबकी हैं। जिन लोगों की चुप आँखों ने कुछ कहा है, जिनकी चुप्पी ने कुछ सुनाया है, जिन जंगल, पहाड़ों, नदियों ने तुमसे बतियाया है उन सबका कविता पर अधिकार है।"[1]

कविता पर की गई यह टिप्पणी बताती है कि आदिवासी कविता जमीन और प्रकृति को जोड़े रखने वाली कविता है। आदिवासी कविता के संदर्भ में पुनीता जैन लिखती है–

'समकालीन हिन्दी कविता जहाँ उत्तर आधुनिकता से प्रभावित निषेध, अनास्था, मूल्यहीनता, नकारात्मकता

की कविता है, वहीं समकालीन आदिवासी कविता प्रकृति के प्रति आस्था, अपनी संस्कृति और मूल्यों को बचाने की छटपटाहट तथा संगठित सामाजिक ताने बाने के बल पर सम्मानपूर्वक जीने की लालसा के साथ आदिवासी समाज की यथार्थ स्थिति को व्यक्त करने वाली कविता है।"[2]

प्रकृति के प्रति आस्था, प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध ही आदिवासी दर्शन है। आदिवासी दर्शन का मत है कि प्रकृति में सभी सजीव–निर्जीव सब बराबर है, कोई छोटा या बड़ा नहीं है। इसी बात की पुष्टि करते हुए वंदना टेटे कहती है–

"उसका दृढ विश्वास है कि सृष्टि में जो कुछ भी सजीव और निर्जीव है, सब समान है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा है। न कोई दलित है न कोई ब्राहमण। सब अर्थवान है एवं सबका अस्तित्व एक समान है। चाहे वह एक पौधा हो, पत्थर हो या कि मनुष्य हो। वह ज्ञान, तर्क, अनुभव और भौतिकता को प्रकृति के अनुशासन की सीमा के भीतर ही स्वीकार करता है, उसके विरुद्ध नहीं।–––वह उन सबका उपयोग वहीं तक करता है, जहाँ तक समष्टि के किसी भी वस्तु अथवा जीव को, प्रकृघति और धरती को कोई गंभीर क्षति नहीं पहुंचती हो। जीवन का क्षरण अथवा क्षय नहीं होता हो। आदिवासी साहित्य इसी दर्शन को लेकर चलता है।'[3]

इसी आदिवासी दर्शन को लेकर जसिंता केरकेट्टा की कविता आधुनिक समाज में पृथ्वी को बचाए रखने का दावा करती है। दावा करती है कि आदिवासी दर्शन ही जंगल, फूल, नदी, पहाड़, मानव, गांव, शहर, जीव–जंतु सभों की भावनाओं, संवेदनाओं को समेटकर एक समतामूलक विश्व की कामना करती है जहां सभों के साथ सहजीवी संबंध हो।

'जंगल कहता है
वह समुद्र हो नहीं सकता,
क्योंकि समुद्र छीन लेता है
नदियों की पहचान,
जंगल ही जिंदा रखता है
हर चीज, उसकी पहचान के साथ।"[4]

मानव जाति को अपना अस्तित्व इस पृथ्वी पर बनाए रखना है तो उसे जंगल का ही सहारा लेना होगा। जंगल ही अपने अंदर सब को उसके मूल पहचान के साथ समेटे रख सकती है। जसिंता केरकेट्टा की कविताएं इस पृथ्वी से गायब हो रहे गांवो और जंगलों को समर्पित करके लिखी गई है। जसिंता केरकेट्टा की और एक कविता जो आदिवासी जीवन मूल्य को इस प्रकार व्यक्त करती है –

'माँ तुम सारी रात
क्यों महुए के गिरने का इंतजार करती हो?
क्यों नहीं पेड़ से ही
सारा महुआ तोड़ लेती हो?

————————————————

माँ कहती है–

पेड़ जब गुजर रहा हो

सारी रात प्रसव पीड़ा से
बताओ, कैसे डाल हिला दें जोर से?
बोलों, कैसे तोड़ लें हम
जबरन महुआ किसी पेड़ से?
हम सिर्फ इंतजार करते हैं
इसलिए कि उनसे प्यार करते हैं।'[5]

प्रकृति से प्रेम ही आदिवासियत है। प्रकृति से उतना ही लेना जितनी की आवश्यकता है। गौर करें तो आदिवासी समाज में कल की चिंता न के बराबर लोग करते है। इसी कारण प्रकृति का नुकसान आदिवासी समाज न के ही बराबर करता है। प्रकृति ही आदिवासियत है, इसी प्रकृति प्रेम को जसिंता व्यक्त करते हुए लिखती है–

'पहाड़ी पर चढ़ा धरतीपुत्र
देखता रहा दोनों ओर
उसने देखा उस पार
युद्ध हो रहे थे
विकास के नाम पर
जल रही थी धरती
और इस पार
खेतों में बीज विकसित हो रहे थे
पूरी धरती को पालने के लिए
संभालने के लिए
इधर धरती पल रही थी
उधर धरती जल रही थी।''[6]

आदिवासी जीवन मूल्य का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण जसिंता ने अपनी इस कविता में पेश किया है, वे कहती है 'इधर धरती पल रही थी, उधर धरती जल रही थी' धरती को जलने से बचाने के लिए आदिवासी जीवन मूल्य को अपनाना होगा। तथाकथित सभ्य समाज के दर्शन से आज धरती जल रही है, धरती में शीतलता का अमृत जल आदिवासी जीवन मूल्य के द्वारा ही छिड़का जा सकता है।

'जंगल से गुजरते हुए उसने
ओक की पत्तियों को चूमा
जैसे अपनी माँ की हथेलियों को चूमा
————————————————————
वे नहीं हैं पर यह आज भी वहीं खड़ा है
इसने मेरे पुरखों की स्मृतियों
और स्पर्शों को बचाकर रखा है

उन्हें महसूस करने के लिए
मैं इन्हें छूता हूँ, चूमता हूँ
इनसे प्यार करता हूँ।"[7]

प्रेम हमेशा आशावादी होता है। आदिवासी जीवन मूल्य जो प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम, जीव–जंतु प्रेम पर आधारित है अर्थात् सहजीविता का दर्शन आदिवासी दर्शन है। पृथ्वी पर सभी प्राणी एक–दूसरे के सहयोग से ही इस पृथ्वी पर बचे रह सकते है। आदिवासी जीवन मूल्य यही सीख देती है कि सहजीविता और सामूहिकता के सहज भाव के साथ जीवन जीना कितना आनंद देती है। सामूहिकता आदिवासी जीवन का एक विशेष स्तंभ है, जिस पर आदिवासी जीवन मूल्य की नींव खड़ी है, मानी जा सकती है। जसिंता केरकेट्टा इसी सामूहिकता की समर्थ भाव की व्यंजना को सहजता के साथ चिन्हित करती हुई लिखती है –

'शहर का अंगार
जलता है जलाता है
फिर राख हो जाता है
गाँव के अंगोर
एक चूल्हे से
जाते हैं दूसरे चूल्हे तक
और सभी चूल्हे सुलग उठते हैं।'[8]

देखा जाए तो जसिंता केरकेट्टा के काव्यों मे आदिवासी जीवन मूल्यों को बहुत ही सहज तरीके से रेखांकित किया गया है। आदिवासी जीवन मूल्य जो की वास्तव में सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति अपना उदार दृष्टि रखता है। गैर आदिवासियों के लिए आदिवासी शब्द महज नाचना, गाना और उनका मस्त रहना तक ही सीमित हैं पर जसिंता केरकेट्टा आदिवासी शब्द को अर्थ विस्तार देती हुई, आदिवासी शब्द को परिभाषित करते हुई लिखती है –

"धरती के करीब रहना ही आदिवासी होना है
प्रकृति के साथ चलना ही आदिवासी होना है
नदी की तरह बहना
और सहज रहना ही आदिवासी होना है
भीतर और बाहर हर बंधन के खिलाफ
लड़ना ही आदिवासी होना है
और अपने सुंदर होने के सारे चिन्हों के साथ
ज्यादा मनुष्य होना ही आदिवासी होना है।'[9]

मनुष्य होने की परिभाषा आदिवासी समाज से सीखी जा सकती है कि कैसे मैं–मैं से निकलकर सामूहिकता में रहकर जीवन को सहज बनाया जा सकता है। जसिंता केरकेट्टा अपनी काव्य अनुभूति को इसी सामूहिकता के भाव से जोड़कर, सहज–सरल बनाकर आदिवासी जीवन मूल्य में पिरोती है और आदिवासी जीवन मूल्य को व्यापक रूप देती हैं। आदिवासियों का सामाजिक ताना–बाना, उनके सामूहिक एकता और आपसी

सहयोग आदिवासी जीवन मूल्य को और भी उदार बना देती है। जसिंता केरकेट्टा का मानना है कि कविता आदमी को मशीन से मनुष्य बनाने में सक्षम हैं। कविता एक मनुष्य को 'मैं' से निकालकर 'हम' तक पहुँचा सकती है। वे स्वयं कहती है –

"कविताएं लिखते हुए मैंने महसूस किया है कि कैसे ये आदमी को मशीन से मनुष्य बनाती हैं। एक ऐसी जगह ले जाती हैं जहां मेरा 'मैं' कहीं गुम हो जाता है। और वह बहुतों के 'मैं' के भीतर समाकर 'हम' सा कुछ महसूस करता है।"[10]

आदिवासी जीवन जंगल सभ्यता पर आधारित हैं। आदिवासियों की जीवन शैली, उनकी संस्कृति और सामाजिक संरचना प्रकृति से ही जुड़ी हुई है। प्रकृति को विवशता वश क्षति पहुंचाने पर उससे क्षमा मांगने वाली संस्कृति ही आदिवासी संस्कृति हैं। इसी संस्कृति का दामन थामें जसिंता केरकेट्टा अपने काव्यों में इसे स्थान देते हुई कहती है –

'जंगल से जुड़े लोग किसी भी फूल को जंगली नहीं कहते। शहर ऐसा अकसर कहता है। असल में वह इनके बारे में कुछ नहीं जानता। जिनका उसे नाम नहीं मालूम, जो अजनबी है, उसे जंगली कह देते है। बहुत से लोगों, समुदायों को भी यही तो कहता है। पर हमारे बहुत कुछ नहीं जानने से आगे भी प्रकृति में बहुत–सी चीजें मौजूद हैं। वे सब सुंदर हैं। जैसे, बहुत सारे फूल।"[11]

आदिवासी समाज से जुड़ी फूलों का वर्णन करते हुए भी जसिंता केरकेट्टा नजर आती है। 2024 में जंगली फूलों से संबंधित उनकी एक काव्य पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस काव्य पुस्तक के माध्यम से जसिंता केरकेट्घ्टा यहीं बताना चाहती है कि आदिवासी समाज अपने जंगल में उगने वाले सभी प्रकार के पेड़ पौधों के प्रति उतने ही संवेदना और स्नेह के साथ जुड़े हैं, जिस प्रकार धरती में मौजूद सभी प्राणियों से। आदिवासियत का पहला शर्त ही है कि इस धरती में मौजूद सभी जीव–जन्तु, निर्जीव–सजीव सभी एक समान है, यहाँ कोई छोटा–बड़ा नहीं हैं, सभी का अस्तित्व एक समान है। जंगल में उगने वाला हर एक पेड़ पौधा आदिवासियों के लिए अनमोल हैं। इन पेड़ पौधों में उगने वाले फल–फूल इनके रोजमर्रा के धरेलू कामों में प्रयोग किए जाते है। एक जंगली फूल महुआ का वर्णन करते हुए जसिंता केरकेट्टा लिखती है कि –

"नानी कहती थी
वे अकाल के दिन थे
लोग भूख से मर रहे थे
पर जंगल में महुआ के पेड़ थे
महुआ ने बहुतों को भूख से बचाया।"[12]

जंगली फूल महुआ आदिवासी समाज में अपना प्रमुख स्थान रखता है। जंगली फूल महुआ के ही तरह आदिवासी समाज में सृष्टि में मौजूद सभी प्रकार के निर्जीव–सजीव, जीव जन्तु, नदी, पहाड़, वृक्ष–लताओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। जसिंता केरकेट्टा इसे ही आदिवासी जीवन मूल्य कहकर संबोधित करती हैं। जसिंता एक सुंदर स्वप्न देखती है कि जो प्रकृति अपने गोद में सम्पूर्ण सृष्टि को बिना किसी भेदभाव के पूरे स्नेह के साथ समेटे हुए है वह भी मनुष्यों से उसी स्नेहरूपी प्रेम की कामना करती है और लिखती है –

'एक ऐसे शहर की तलाश में

भटकना चाहती हूँ मैं पृथ्वी पर
जिसने घास और फूलों को
बचाने के लिए
झोंक दी हो अपनी पूरी ताकत,
जिसने जतन से बढ़ाया हो कोई पेड़
लोरी गाकर सुलाया हो चिड़ियों को
नदी को दे दिए हो सारे दरवाजे
और हवाओं के लिए
खोल दी हो बंद खिड़कियां।'[13]

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि जसिंता केरकेट्टा के काव्यों में आदिवासी जीवन–मूल्य अपने मूल रूप में विद्यमान है। आदिवासी कवियों ने जिस प्रकार अपने कविताओं के माध्यम से आदिवासी जीवन–मूल्य को पूरे समाज में लाने का सफल प्रयास किया है। उसी प्रकार जसिंता केरकेट्टा भी अपनी कविताओं के माध्यम से यही आदिवासी जीवन–मूल्य पूरे विश्व में फैला रही है कि आदिवासियों के अस्मिता और अस्तित्व के बचे रहने पर ही विश्व में मानव समाज बचा रह सकता है। सहजीविता का दर्शन यही कहता है कि जीओं और जीने दो। प्रकृति से उतना ही लेना की आगामी पीढ़ी के लोगों के लिए भी प्राकृतिक संसाधन बची रह सके। जसिंता केरकेट्टा की कविताओं का यही स्वर है कि आदिवासी जीवन–मूल्य से ही बेहतर भविष्य की कामना की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. केरकेट्टा जसिंता–ईश्वर और बाजार, (भूमिका से) दूसरा संस्करण–2023, राजकमल प्रकाश, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ– 7
2. जैन पुनीता – आदिवासी कविता : चिंतन और सृजन, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2023, पृष्ठ : 61
3. टेटे वंदना (सं)–आदिवासी दर्शन और साहित्य, पेपरबैक संस्करण– फरवरी 2021, पृष्ठ : 37
4. केरकेट्टा जसिंता– जड़ों की जमीन, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018, भारतीय जननपीठ–पृष्ठ –76
5. केरकेट्टा जसिंता –ईश्वर और बाजार, दूसरा संस्करण 2023, राजकमल प्रकाश, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ –141
6. केरकेट्टा जसिंता– अंगोर, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2016 आदिवानी, कोलकाता, पृष्ठ –100
7. केरकेट्टा जसिंता– प्रेम में पेड़ होना, राजकमल प्रकाश, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2024, पृष्ठ–37

8. केरकेट्टा जसिंता– अंगोर, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, आदिवानी, कोलकाता, पृष्ठ : 148
9. केरकेट्टा जसिंता – ईश्वर और बाजार, दूसरा संस्करण 2023, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ–167
10. केरकेट्टा जसिंता – ईश्वर और बाजार, दूसरा संस्करण 2023, (भूमिका से) राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ– 7
11. केरकेट्टा जसिंता– जिरहुल (दो बातें), जुगनू प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2024
12. केरकेट्टा जसिंता– जिरहुल, जुगनू प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2024, पृष्ठ–08
13. केरकेट्टा जसिंता –जड़ों की जमीन, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2018 भारतीय जननपीठ, पृष्ठ–114,

संपर्क– 6299451795,
Sunitakachhap1311@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

लेखक परिचय :
डॉ. योगिता सोमानी

डॉ. योगिता सोमानी शिक्षा जगत की प्रतिष्ठित शिक्षाविद्, समाजसेविका एवं प्रखर शोधकर्ता हैं। आपने एम. ए. (राजनीति विज्ञान एवं अंग्रेजी), एम.कॉम., एम.एस.डब्ल्यू., एम.एड. तथा पी.एच.डी. (शिक्षा शास्त्र) जैसी उच्च उपाधियाँ अर्जित की हैं। वर्तमान में आप सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय में प्राचार्य के पद पर सेवारत हैं तथा विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में शोध निर्देशिका के रूप में भी अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही हैं।

आपका शिक्षण एवं शोध के क्षेत्र में अनुभव समृद्ध एवं प्रेरणादायक है। आपने अब तक लगभग 50 राष्ट्रीय सेमिनारों और 6 अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में सक्रिय सहभागिता की है। सत्र 2019 में आपने दुबई में आयोजित एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया, जो अत्यंत सराहनीय रहा। आपके 10 से अधिक शोध-पत्र प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ. सोमानी न केवल एक उत्कृष्ट शिक्षाविद् हैं, बल्कि एक संवेदनशील समाजसेविका भी हैं, जो समाज में शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, नैतिक मूल्यों के संवर्धन और सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए निरंतर कार्यरत हैं। आप विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी रही हैं तथा ग्रामीण एवं पिछड़े वर्गों में शिक्षा के प्रसार हेतु अनेक पहलें कर चुकी हैं।

आपकी अनुसंधान रुचियाँ शैक्षिक उपलब्धि, मानवीय मूल्य, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन, सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी (ICT) का प्रभाव तथा नैतिक एवं भावनात्मक विकास जैसे विविध विषयों पर केंद्रित हैं। आपने अपने शैक्षणिक एवं सामाजिक योगदान से शिक्षा के क्षेत्र में नई दृष्टि और दिशा प्रदान की है।

डॉ. योगिता सोमानी का व्यक्तित्व विद्वता, सरलता एवं सेवा भाव का अद्भुत संगम है। आपकी अकादमिक उपलब्धियाँ एवं सामाजिक समर्पण भावी शिक्षकों एवं शोधार्थियों के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115